श्रीमद् आचार्य अमितगति विरचित

भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)

सामायिक देशना

आचार्य विशुद्धसागरजी

श्रीमद् आचार्य अमितगति विरचित
भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)
पर

सामायिक देशना

प्रकाशक

अखिलभारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति
पूज्यश्री के साहित्य प्रकाशन हेतु कटिबद्ध संस्था
संपर्क : 92453-21151, 98930-63710, 98262-10189

सामायिक देशना

मूलकृति - पूर्वाचार्य अमितगति स्वामी विरचित
भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)

प्रस्तुत कृति - **सामायिक देशना**
(भावना द्वात्रिंशतिका पर किये गये प्रवचनों का संग्रह)

देशनाकार - अध्यात्मयोगी दिगम्बर जैनाचार्य
108 श्री विशुद्धसागर मुनिराज

संकलन - **डॉ. शशिकिरण जैन,** पन्ना (म.प्र.)

संपादन - **पं. शिवचरणलाल जैन**
श्याम भवन, बजाजा, मैनपुरी (उ.प्र.)
दूरभाष : 09219160350

संपादन सहयोग एवं प्रस्तुति - **इंजी. जिनेन्द्र जैन,** पद्मनाभ नगर, भोपाल
इंजी. दिनेश जैन, रिसाली, भिलाई

आवृत्ति - तृतीय (संशोधित एवं परिमार्जित)/ वर्ष-2014 / 1500 प्रतियाँ

प्रकाशक - **प्रमोद जैन 'हिमांशु' एवं परिवार**
श्री पार्श्वनाथ बिल्डर एण्ड डेवलपर्स इंडिया (प्रा.लि.) भोपाल
हिमांशु फ्लोर मिल, भोपाल

प्राप्ति स्थान - **प्रमोद जैन 'हिमांशु'**
दूरभाष : 9425005740

मुद्रक - **विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स**
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

प्रस्तावना

जैनाचार्यों द्वारा रचित वाङ्मय बहुत विशाल एवं व्यापक है। इस वाङ्मय को सर्वप्रथम श्रुतधराचार्यों ने लिखा, जो युग-संस्थापक और युगान्तकारी आचार्यों की श्रेणी में आते हैं, जैसे आचार्य गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबली आदि आचार्य। इसके बाद सारस्वताचार्यों ने श्रुतधराचार्यों की लेखन-परम्परा को आगे बढ़ाया और उन आचार्यों में अमितगति आचार्य (द्वितीय) जो बहुश्रुतज्ञ थे, उन्होंने अनेक कृतियों का प्रणयन किया। आप काव्य, न्याय, व्याकरण, आचार, प्रभृति अनेक विषयों के विद्वान थे। आपने राजा मुंज के राज्यकाल एवं राजभोज के समय लगभग नौ ग्रन्थों की रचना की। आपका समय वि.सं. 11वीं शताब्दी माना गया है।

'भावना द्वात्रिंशतिका' की रचना राजा भोज के समय में की गई है। इस कृति का दूसरा नाम 'सामायिक पाठ' भी है। इस कृति की प्रसिद्धि विद्वानों में पर्याप्त मात्रा में हुई। यही कारण है कि इस कृति का प्रथम श्लोक वैदिक संस्कृति के विद्वान भी नीतिवाक्यों में बोलते हैं। हृदय को पवित्र बनाने के लिए यह एक ऐसा महान काव्य है जिसे प्रत्येक श्रावक और पूज्य मुनिराजों को कण्ठस्थ होना चाहिए। इसके पढ़ने से पवित्र और उच्च भावनाओं का संचार होता है। यद्यपि यह ग्रन्थ मात्र 32 श्लोकों में ही लिखा गया, फिर भी पाठक को यह अत्यंत सरस और हृदय को प्रमुदित करने वाला है। इसका प्रथम श्लोक प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव प्रकट करता है। कवि ने लिखा है कि- सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्, माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।

कवि ने इस ग्रन्थ में भेदविज्ञान, समताभाव की भावना करते हुए भगवान के चरण मेरे हृदय में विराजमान रहें और मेरे चारित्र में कोई दोष लगे हों तो मिथ्या हों और स्वयं की आलोचना एवं निन्दा करते हुए पाप नष्ट करने की भावना की है। इसके बाद माँ जिनवाणी की आराधना करते हुए भगवान के अनेक गुणों को व्याख्यायित कर उनकी शरण में जाने की उत्कृष्ट भावना प्रकट की है। अन्त में आत्मा ही ध्यान का आसन है ऐसी अपूर्व बात करके स्वयं को देखो कर्मों को नहीं और आत्मा में लीन होकर परमात्म पद को प्राप्त करने की भावना व्यक्त की है। इस प्रकार की विषयवस्तु को प्रतिपादन करनेवाला यह लघुकाय ग्रन्थ साधारण श्रावकों के हृदय का हार तो बना हुआ है। इसके प्रत्येक श्लोक में कितना रहस्य भरा हुआ है, इस रहस्य को उद्घाटित किया है अध्यात्मयोगी गुरुवर परमपूज्य आचार्य विशुद्धसागरजी महाराज ने अपनी 'सामायिक देशना' कृति में, जिसमें देशना का एक-एक शब्द विद्वानों के हृदय को गद्गद् कर देता है।

देशनाकार मूलकृति 'भावना द्वात्रिंशतिका' पर देशना करते हुए कहते हैं कि भावना का अर्थ है कि जो भाव न आवे, उसका नाम है भावना। जो भाव कभी नहीं आये हों, उन भावों के आने का नाम है भावना। अनादि से क्या किया? वही राग, वही द्वेष, वही मान, वही माया इसके अलावा किया क्या है? किसी दूसरे को मत निहारना क्योंकि सामायिक पाठ पढ़ रहे हो, सामायिक में लीन होकर सुनना, जो भव-भव में भाव किये हों, उन भावों का न होना, उसका नाम है भावना।

भावना शब्द को इस प्रकार व्याख्यायित करना यह आचार्यश्री का अपना स्वयं का चिन्तन है। अन्य ग्रन्थों में भावना का अर्थ इस प्रकार प्राप्त नहीं है, परन्तु यह भी सत्य है कि भावना का यह तथ्यात्मक अर्थ है।

सामायिक पाठ का महत्व बतलाते हुए आचार्यश्री जो कहते हैं वह बहुत मार्मिक है। पाठकों को अवश्य ध्यातव्य है। भावना द्वात्रिंशतिका के पाठ का बहुत प्रचलन है। पाठ की परम्परा मत बन्द कर देना। पाठ करने की परम्परा त्रैकालिक है। गणधर परमेष्ठी एक अन्तर्मुहूर्त में द्वादशांग का पाठ कर लेते हैं। कोई पाठ करने का नियम अवश्य लेना, पाठ करते-करते कण्ठ रुकेगा तो अर्हन्त बनेगा।

आचार्यश्री ने सामायिक को तार्किक शैली में समझाने का प्रयास किया है जिससे श्रावक/साधक को निर्वाण की प्राप्ति में सामायिक हेतु है, यह समझ में आ जाये। देशना में कहते हैं कि सामायिक करना है तो साम्य, शान्त होना होगा। साम्य हुए बिना सामायिक नहीं होती। सामायिक हुए बिना समाधि नहीं होती और समाधि होते हुए बिना निर्वाण होता नहीं.

सामायिक पाठ के प्रथम छन्द के प्रथम पद की देशना में कहते हैं कि 'सत्त्वेषु मैत्रीं', इस पद का अर्थ है कि जगत में कोई मेरा शत्रु नजर नहीं आ रहा है। यदि शत्रु नजर आ रहा है, तो सामायिक नहीं और सामायिक है, तो कोई शत्रु नहीं। आगे चेतावनी देते हुए कहते हैं कि यदि अपने जीवन में एक भी जीव को तू जीवनभर शत्रु मानता है तो मुनि ही नहीं महान आचार्य भी बन जाये तो तेरी सामायिक 'सामायिक' नहीं होगी, क्योंकि साम्यभाव का अभाव है। आचार्य विशुद्धसागरजी महाराज आध्यात्मिक सन्त तो हैं ही, परन्तु उनकी देशना में न्यायदर्शन और तर्क-युक्ति का सर्वत्र प्रयोग किया गया है। जैसे तेरी सामायिक 'सामायिक' नहीं है, हेतु दिया गया कि साम्यभाव का अभाव है। वस्तुतः देखा जाए तो साम्यभाव सामायिक का अविनाभावी है। इस प्रकार तर्कपूर्वक विवेचना इस युग में विरले सन्त ही कर सकते हैं।

वर्तमान में आचार्य विशुद्धसागरजी महाराज द्वारा प्रणीत जितने भी ग्रन्थ हैं उन सभी ग्रन्थों

में आध्यात्मिक और दार्शनिकता भरी पड़ी है, जो विद्वानों को और मुमुक्षुओं को मोक्षमार्ग के लिए पाथेय है। आचार्य अमितगति की यह कृति बेजोड़ है। प्रत्येक श्लोक में भेदविज्ञान झलकता है और उस भेदविज्ञान के रहस्य को व्यावहारिक दृष्टि से स्पष्ट करने की शैली अपनायी है देशनाकार आचार्य विशुद्धसागरजी महाराज ने। वे तीसरे श्लोक में कहते हैं कि भैया! विश्वास रखना जिस भवन में आप रह रहे हों, उस भवन से तो आपको जाना पड़ेगा...। बेटे से पूछना, मेरे लाल! तू इतना तो बता दे, मैंने तेरे लिए मकान पर मकान बना दिये, इसमें कौन सा कोना होगा जिसमें तू मेरे शरीर का अन्तिम संस्कार करा देगा? बेटा कहेगा, मुझे इसमें रहना है, इसको मरघट मत बनाओ। जितनी जल्दी से जल्दी बने इसे ले जाओ। उस भवन में तेरा बेटा तेरे संस्कार के लिए एक फुट जगह भी नहीं देगा। इस प्रकार आचार्यश्री ने देशना के माध्यम से सामायिक पाठ के प्रत्येक श्लोक के हृदय को खोलकर रख दिया।

आचार्यश्री ने इस कृति में अनेक शब्दों की अपनी भाषा में व्याख्यायें कीं, जो नवीन तो हैं ही, परन्तु आगमानुकूल भी हैं और हृदय को स्पर्श करती हैं। जैसे सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो चित्त की शुद्धि है। इसी प्रकार अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार आदि शब्दों को व्याख्यापित करने का ढंग अनोखा ही है।

आचार्यश्री का मौलिक चिन्तन है, इसलिए प्रत्येक वाक्य नीतिवाक्य की तरह प्रतीत होता है। उदाहरण के रूप में कुछ वाक्य दृष्टव्य हैं–

(1) पापों को करना तो पाप है ही, परन्तु पाप का चिन्तन करना महापाप है। (श्लो. 9)

(2) वही ज्ञान 'ज्ञान' है जिससे निर्वाण की सिद्धि होती हो।

(3) साधु के पास कौड़ी है तो वह कौड़ी का नहीं है। और श्रावक के पास यदि कौड़ी नहीं है, तो वह कौड़ी(कोई कीमत) का नहीं है।

(4) धर्म 'धन' से नहीं होता, धर्म 'ध्यान' से होता है।

(5) मन्दिर आदि का निर्माण कोई भी करा सकता है, परन्तु समाधि का निर्माण करने वाला निर्ग्रन्थ योगी होता है।

(6) संबंध ही दु:ख का कारण है।

(7) श्रद्धा हृदय की दीवार पर चिपकना चाहिये।

(8) परवस्तु में हर्ष आना, परवस्तु में विषाद आना, दोनों ही कषाय है।

(9) चारित्रवान के साथ दुनियाँ चलती है।

(10) जब तक साधु न बन पाओ, साधु की भक्ति करना मत छोड़ना।

जितना भगवान पर विश्वास है, उतना विश्वास जिसदिन स्वयं पर हो जाएगा, उस दिन तू ही भगवान बन जाएगा। परमात्मा पर विश्वास करने से स्वर्ग मिलता है, लेकिन स्वयं पर विश्वास करने से 'शिव' मिलता हैं।

इस प्रकार देशनाकार ने इस 'सामायिक देशना' के माध्यम से सामायिक का यथार्थ स्वरूप तो स्पष्ट किया ही है, इसमें साथ-साथ अन्य सैद्धान्तिक विषयों का निरूपण भी विभिन्न उदाहरणों से किया है। आपने इस कृति में निश्चय-व्यवहार, उपादान, निमित्त का समन्वय करते हुए निश्चयाभासी एवं व्यावहराभासियों को यथार्थ मार्ग पर लाने का पूर्ण प्रयास किया है। यह कृति श्रावकों एवं मुनिराजों के लिए समान उपयोगी है। इसको पढ़कर जो हृदयंगम कर लेगा, निश्चित रूप से परिणामों में विशुद्धि अवश्य आयेगी।

मैं प्रस्तावना विस्तार से लिखना चाहता था, परन्तु प्रशासनिक कार्यों के कारण नहीं लिख सका। मैं अपने लिए भाग्यशाली मानता हूँ कि पूज्य आचार्यश्री के चरणों में भावों का अर्ध्य समर्पण करने का अवसर मिला और देह-समर्पण करने का अवसर भी आचार्यश्री के चरणों में मिले, यही मेरी सामायिक भावना है।

चरण सेवक

डॉ. शीतलचन्द जैन

पूर्व अध्यक्ष, अ.भा.दि. जैन विद्वत्परिषद

निदेशक- श्रमण संस्कृति संस्थान,

सांगानेर (जयपुर)

सम्पादकीय

प्रस्तुत ग्रंथ ''सामायिक देशना'' परमपूज्य अध्यात्मयोगी आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज द्वारा 'ग्रीष्मकालीन' वाचना सन्-2011 शिवनगर जबलपुर में 'भावना द्वात्रिंशतिका' (सामायिक पाठ) पर दिये गये प्रवचनों का संकलन रूप है। अध्यात्म एवं न्याय-संगत विधि को गर्भित किए हुए ये प्रवचन वर्त्तमान समय में द्रव्य-क्षेत्र-भाव के अनुरूप समाज को रत्नत्रय और विशेषकर आचरण के यथोक्त प्रेरक हैं, अतः इसका नाम 'सामायिक-देशना' सार्थक है।

सामायिक देशना के रूप में तथा साम्यभावदेशना के उभय रूप में पाठक इसे ग्रहणकर लाभान्वित होंगे। आचार्यभगवन् श्री समन्तभद्रस्वामी ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में सामायिक के स्थान पर 'सामयिक' शब्द का प्रयोग किया है।

मूलग्रंथकर्त्ता निस्संग योगिराज श्री अमितगति स्वामी :

आचार्यश्री अमितगति स्वामी दशवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल के उद्भट आचार्य थे। इनकी रचनाएँ, उनके जैन वाङ्मय के बहुआयामी मेधा के धनी व्यक्तित्व की परिचायक हैं। आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं - पञ्च संग्रह, मरण कण्डिका (भगवती आराधना का श्लोकानुवाद), श्रावकाचार, योगसार प्राभृत, धर्म परीक्षा, सुभाषित रत्नसन्दोह आदि। लगभग 2000 श्लोकों में विस्तृत उनका श्रावकाचार मेरी दृष्टि में अद्वितीय श्रावकाचार है। कतिपय विद्वान् योगसार प्राभृत को दूसरे किन्हीं अमितगति आचार्य की रचना मानते हैं।

भावना द्वात्रिंशतिका :

प्रकृत 'सामायिक देशना' की आधारभूत एवं आचार्य श्री अमितगति स्वामी की संक्षिप्तसार रूप यह 32 श्लोक प्रमाण रचना श्रमण एवं श्रावक दोनों के लिए अति उपयोगी है। इसके महत्त्व को अवगत कर ही शताब्दियों से, सम्भवतः रचना के प्रारम्भकाल से इसे त्रिवार सामायिक पाठ के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। इसमें प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, समता, स्तुति, वंदना एवं कायोत्सर्ग इन छहों आवश्यकों के दर्शन होते हैं।

सामायिक-विधि भावनारूप ही होती है, अतः इसकी 'भावना द्वात्रिंशतिका' संज्ञा सार्थक है। यह अनुकूल विषयरूप होने से 'सामायिक पाठ' नाम से विख्यात है। श्रावक के योग्य इन भावनाओं का पल्लवन अमितगति श्रावकाचार में भी अवगम्य है। इस कृति का प्रारम्भिक श्लोक है -

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेष कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ-भावं विपरीत-वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।(1,)

यही श्लोक प्रकारांतर से श्रावकाचार में दृष्टिगत होता है, दृष्टव्य है।

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं।
माध्यस्थ भावो विपरीत वृत्तौ, सदा विधेयो पुरुषा शिवार।। परिच्छेद-13/श्लोक-11।।

वस्तुतः यह 'सामायिक पाठ' समता अर्थात् राग-द्वेष-मोह निवृत्ति परिणाम हेतु श्रेष्ठ-औषधि ही है, इसी हेतु यह सदैव रत्नत्रयमार्गी अथवा सामान्य श्रद्धालुओं दोनों के लिए अति उपयोगी है। यह तो जन-जन का कण्ठहार ही बना हुआ है। इस कृति पर आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज की जो देशना प्रकाशित की जा रही है, इससे धर्म-प्रभावना का महत्कार्य अध्यात्म के प्रकटीकरण के रूप में सिद्ध होगा।

परमपूज्य आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज

ज्ञान-वैराग्य के क्षेत्र में यह एक ऐसा नाम है, जिसकी विशुद्धचर्या एवं प्रकृष्ट वचनों से जैनसमाज में नवचेतना जागृत हुई है। दिनांक 18-12-1971 को मध्यप्रदेश के भिण्ड जिले के चंबल बीहड़ों में स्थित इंटीरियर 'रूर' ग्राम में जन्में, पिताश्री रामनारायण एवं मातुश्री रत्तीबाई की पावन संतान राजेन्द्र ने परमपूज्य आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज के करकमलों से 21-11-1991 को जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की एवं 31-03-2007 को श्री महावीर जयन्ती के पावन पर्व पर आचार्यपद से विभूषित हुए। आपने त्याग-तपस्या एवं उत्कृष्ट आराधना एवं साधना के बल से अध्यात्म-अमृत-वारिधि में गहरी पैठ बनाकर दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति के अग्रिम पुरोधा एवं व्याख्याता का यश अर्जित किया है। उनकी देशना नाम से व अन्य सैद्धांतिक अनेकान्त-स्याद्वाद की प्रकाशक लगभग अर्द्ध-शतक प्रकाशित कृतियाँ जैन वाङ्मय की धरोहर बन गई हैं, 'सामायिक देशना' भी उनमें सुशोभित रहेगी।

आपने तपोपुनीत व्यक्तित्व में सिद्धहस्त प्रवचनकार, अध्यात्म-न्याय तरंगिणी के सफल अमृत-अनुभवी, आत्म-रस के रसिक, समाज के उत्कृष्ट रत्नत्रयी शेखरता से अलंकृत नेता, पंथ-पक्ष व्यामोह से रहित श्रमणराज, सिंह वृत्तिमय कुशल संघाचार्य, देशकालज्ञ और अहिंसा की प्रधानतामय निर्दोष विशुद्ध चारित्रधर निर्यापकाचार्य के दर्शन होते हैं। अपने दिव्य-गुणों से वे सर्वत्र व सर्वकाल पूज्यता को प्राप्त हैं। उनके आदर्शरूप में दर्शन-वंदन करके भव्य श्रावक एवं साधक अपना अहोभाग्य मानता है।

सामायिक देशना का स्वरूप :

भावना द्वात्रिंशतिका पर आचार्यश्री के जबलपुर ग्रीष्मकालीन वाचना-2011 के अन्तर्गत किए हुए प्रवचनों के संग्रह रूप 'सामायिक देशना' है। आमतौर पर प्रवचनसभा का जो माहौल

होता है तदनुसार ही उपयोगिता को इन व्याख्यानों में सर्वत्र दृष्टिगत जाना जा सकता है। भाषा मिश्रित है। कहीं परिमार्जित शास्त्रीय भाषा का प्रयोग है कहीं प्रचलित लोकभाषा के दर्शन होते हैं। शब्द चयन आवश्यकतानुसार है। विशेषतौर से श्रोताओं को मुमुक्षु, ज्ञानी, भैया आदि आत्मीय एवं जागृतिकारी सम्बोधनों से धर्म की ओर आकर्षित किया है।

आचार्यश्री की शैली प्रवाहपूर्ण, कठोर-कोमल शब्द मिश्रित धारावाहिकता के रूप को लिए हुए है। सरसता कायम रखने का प्रयत्न है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अध्यात्म और न्याय जैसे शुष्क एवं क्लिष्ट विषय को भी गले उतारने की पटुता को लिए हुए श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने की शैली के धारक, आचार्य विशुद्धसागर जी प्रस्तुत देशना में प्रतीत होते हैं।

अन्य विशेषताएँ दृष्टव्य हैं :

1. मूल श्लोकों पर ही केन्द्रित न रहकर आचार्यश्री अपेक्षित रूप से दिगम्बर जैन समाज व मानव कल्याण हेतु तत्पर देशनाकार के रूप में यहाँ प्रकट हुए हैं। यदि मात्र मूल विषय का ही विवेचन होता तो यह टीका, वृत्ति, व्याख्यान संज्ञा को प्राप्त होती। देशना नाम ही प्रकट करता है कि मूल विषय को पुष्ट करनेवाले अन्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को दृष्टिगत कर आत्म-कल्याण हेतु यह हितोपदेश है। पाठक स्वयं पारायण कर लाभान्वित होंगे।
2. देशनाकार ने गंभीर विषयों को भी प्रकट करने का प्रयत्न इसमें किया है एवं इसे बोधगम्यता प्रदान की है। निम्न स्थान पर गौर करें।
   ''ज्ञानी! संयम के लिए श्रुत को तो धारण करना, परन्तु श्रुत के पीछे संयम को मत छोड़ देना। मात्र ज्ञान के राग में आकर संयम को छोड़कर मत बैठ जाना। संयम की पूर्णता मोक्ष दिलायेगी, ज्ञान की पूर्णत मोक्ष नहीं दिलाएगी। ज्ञान की पूर्णता से मोक्ष नहीं मिलता। संयम की पूर्णता से मोक्ष मिलता है। ज्ञान की पूर्णता तेरहवें गुणस्थान में हो जाती है। केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान में प्रकट हो जाता है, लेकिन चारित्र की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। अट्ठारह हजार शील की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। चारित्रचक्रवर्ती होता है वह जीव जो अशरीरी पद की ओर जा रहा है। चौदहवें गुणस्थान में अयोगकेवली भगवन्त होते हैं।''
3. देशना में हमें उद्‌बोधन के दो रूप प्रकट होते हैं। जहाँ आचार्यश्री ने श्रमण-श्रावक के उद्‌भव एवं विकास पर जोर दिया है, वहाँ सृजनात्मक रूप है। दूसरी ओर मिथ्यात्व, कुरीतियों पर प्रहार एवं निषेध किया है वहाँ खण्डनात्मक देशना मुखर हो उठी है।
4. न्याय-विषय को आवश्यक मानकर तत्त्व-निर्णय की संभावना को स्वीकार किया गया

है। अपेक्षित स्थलों पर न्यासग्रन्थों के उद्धरण भी दिये हैं। ''**हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।।**'' **परीक्षामुख सूत्र**।। आचार्यश्री ने न्याय-विद्या के ही अंग अनेकान्त-स्याद्‌वाद शैली का प्रयोग प्रमुख रूप से किया है। एकान्त मिथ्यात्व का तो व्यापक रूप में खण्डन किया है तथा बखूबी प्रकट किया है कि अनेकान्त जैनदर्शन का प्राण है। प्रकरण के अनुसार सांख्य, वैशेषिक, चार्वाक, बौद्ध आदि दर्शनों की स-युक्ति समीक्षा कर उन्हें अप्रमाण ठहराया है। सांव्यावहारिक परोक्ष, अनुमान, तर्क, प्रत्यक्ष प्रमाण आदि की चर्चाकर पाठकों को आकर्षित किया है।

5. 'सामायिक देशना' में आचार्यश्री ने आगम-परम्परा का सर्वत्र निर्वाह किया है। आगम को सर्वोपरि प्रमाण मानकर स्वेच्छा-निर्णय प्रवृत्ति का निरसन किया है।
6. सैद्धान्तिक विषय, कर्मसिद्धान्त, गुणस्थान, सात तत्त्व व लब्धिओं आदि के आवश्यक प्रकरण इन प्रवचनों के अभिन्न अंग हैं।
7. आचार्य विशुद्धसागर जी महाराज ने मोक्षमार्ग के अपेक्षित आयामों को बखूबी देशना में स्थान दिया है। अध्यात्मभक्ति , चरणानुयोग की प्रमुखता, उत्कृष्ट चर्या का महत्त्व, चारों अनुयोगों की सार्थकता, श्रमण-श्रावक के आवश्यक प्रमुख रूप से गृहस्थ के देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान आदि सभी पर विशेष जोर देकर पापों से निवृत्ति कराकर धर्म में लगाया है।
8. उद्धरण - वैभव इस कृति की महती विशेषता है। प्रस्तुत सन्दर्भ सूची के अनुसार लगभग 22 ग्रंथों के अपेक्षित अंशों को प्रस्तुत कर देशना को प्रमाणिकता प्रदान की है।
9. सामान्य जनों के गले उतारने हेतु आचार्यश्री ने सरल शैली में विभिन्न पौराणिक कथाओं, लोक दृष्टांतों आदि की विधि अपनाई है, जो अति प्रभावक प्रतीत होती है।
10. ''भावना द्वात्रिंशतिका'' के मूल श्लोकों का अन्वयार्थ श्लोकों के हार्द को समझने एवं कण्ठस्थ करने हेतु प्रकट किया है।

वस्तुतः उपर्युक्त एवं अन्य भी अनेक गुणों से समन्वित यह देशना आचार्यश्री के धर्मप्रभावना एवं प्रवचन-वत्सलत्व उद्‌देश्य की पूर्ति करते हुए उनके अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग की परिचायक है। आद्योपान्त भावसहित पारायण करने पर जो ज्ञानामृत का आनन्द आयेगा, उसकी महिमा विशिष्ट होगी।

ग्रंथकार के प्रति आभार :

प्रातःस्मरणीय आचार्य श्री अमितगति स्वामी को स-श्रद्धा प्रणाम करते हुए सर्व-प्रथम मैं सामायिक देशनाकार परमपूज्य आचार्यश्री को सविनय नमनपूर्वक साधुवाद देता हूँ। यदि

वे इस लोकामयहारी जिनवचन रूप औषधि का सोत्साह प्रस्तारण और प्रदान नहीं करते तो भव्य आत्महित पिपासुओं के ज्ञान-चक्षु अपेक्षित यथा-संभव रूप से कैसे दृष्टि प्राप्त करते ? उनकी करुणा भावना हेतु पुनः आभार।

इस अवसर पर जबलपुर जैनसमाज को भी बधाई हेतु स्मृत करता हूँ। उन्हीं के द्वारा ग्रीष्म-कालीन वाचना की ज्ञान-कथा का आयोजन एवं संघ की यथेष्ट वैय्यावृत्ति रूप महत्कार्य सम्पन्न हुआ।

आचार्यों के धर्मोपदेश का यद्यपि स्वयं अपना महत्त्व है, परन्तु यदि उसके सर्वजन-ज्ञानाय, सर्वजन-हिताय, सर्वदेशहिताय प्रकाशन की व्यवस्था न हो तो वह 'दिव्य-देशना' उसी क्षेत्र-काल में विलीन होकर रहती है, एतदर्थ इस ज्ञान-निधि के गुरुतर प्रकाशन का भार-वहन करने वाली ''अखिलभारतीय श्रमणसंस्कृति सेवासमिति'' का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रवचन संकलनकर्त्री ब्र. डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना के योगदान की सराहना उपयोगी होगी। आ. विशुद्धसागरजी के वचनों को हम तक पहुँचाने में उनकी अपेक्षित भूमिका है।

ग्रंथ के प्रस्तुतीकरण के महत्त्वकार्य को संपूरित करने हेतु श्रीमान भाई इंजी. दिनेश जी एवं इंजी. जिनेन्द्र जैन, भोपाल को धन्यवाद देना चाहूँगा।

मैं ग्रन्थरचना से लेकर श्रेष्ठ मुद्रण, गेटअप व अन्य श्रेष्ठताओं हेतु सभी सहयोगियों को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अपनी बात : मैं एक अल्पज्ञ अध्येता हूँ। सम्पादन के गुरुतर भार को गुरुकृपा से यथाशक्य वहन किया है। आशा करता हूँ कि शुद्ध वर्ण-पदों के रूप में ही पाठकों के हाथों में कृति पहुँचेगी। प्रमाद अथवा अल्पज्ञता के कारण किसी भी प्रकार की त्रुटि शेष रहे, तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। अन्य भी सम्पादन सम्बन्धी त्रुटि हो तो पाठकगण क्षमा करेंगे। भद्रं भूयात्, शुभं भूयात्।

श्याम भवन, बजाजा,
मैनपुरी - 205 001 (उ.प्र.)
05/09/2012

भवदीय
शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष -
तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक - अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

प्रकाशकीय

परमपूज्य पूर्वाचार्य श्री अमितगति सूरि द्वारा रचित 'भावना द्वात्रिंशतिका' सामायिक पाठ पर, आत्मज्ञानी आचार्यश्री विशुद्धसागर मुनिराज द्वारा किये गये टीकात्मक प्रवचनों का संग्रह 'सामायिक देशना' नाम से पूर्व में प्रकाशित हुआ था। बहुत उपयोगी होने के कारण इसकी प्रतियाँ जल्द ही समाप्त हो गईं। श्रावकों/साधकों की माँग को दृष्टिगत करते हुए इस कृति के पुनर्प्रकाशन के भाव मेरे व मेरे परिवार के सदस्यों के हुए, जिन्हें मैंने आचार्यश्री के सम्मुख उनके भोपाल चातुर्मास-योग के समय प्रगट किया, तो उन्होंने मुझे इस हेतु आशीर्वाद दिया, जिसका प्रतिफल है प्रस्तुत 'सामायिक देशना' का तृतीय संस्करण वर्ष 2014

श्रावक/साधक इस अनुपम कृति का स्वाध्याय, मनन-चिंतन कर आध्यात्मिक लाभ लें, यही मेरी भावना है। यह कल्याण भावना भाते हैं कि -

सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं, क्लिटेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना, हर प्रकार से दूसरे को दुःख न होने देने की अभिलाषा को 'मैत्री' कहते हैं अर्थात् सर्व जगत से निर्वैर-बुद्धि। मुख की प्रसन्नता, नेत्र का आह्लाद रोमांच स्तुति सद्गुण कीर्तन आदि के द्वारा प्रगट होनेवाली अंतरंग की भक्ति और प्रशस्त राग को 'प्रमोद' कहते हैं, अर्थात् किसी भी 'आत्मा' का गुण देखकर हर्षित होना। शरीर और मानस दुःखों से पीड़ित दीन प्राणियों के ऊपर अनुग्रह रूप भाव 'कारुण्य' है। रागद्वेषपूर्वक किसी एक पक्ष में न पड़ने के भाव को 'माध्यस्थ भाव' कहते हैं। जैनदर्शन में इसे 'उपेक्षा' भाव भी कहते हैं अर्थात् निष्पृह भाव से जगत के प्रतिबंध को भूलकर आत्महित में लगना। अनादिकालीन अष्टविध कर्मबंधन से तीव्र दुःख की कारणभूत चारों गतियों में जो दुःख उठाते हैं, वे 'सत्त्व' हैं। असातावेदनीय के उदय से जो शरीर या मानस दुःखों से संतप्त हैं, वे 'क्लिष्टमान' हैं। संसारताप से दुःखित आत्मा के ऊपर दुःख से अनुकंपा करना 'करुणा' है। 'कृपा परत्वम्' यानि सक्रिय करुणा, न कि शाब्दिक करुणा।

सुखद संयोग है कि इस कृति की प्रस्तुति भोपाल निवासी इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन ने की है और भोपाल निवासी श्री विकास गोधा ने इस कृति के तृतीय संस्करण की मुद्रण-व्यवस्था का कार्य निष्पादित किया है। इंदौर निवासी श्री टी.के. वेद (सहायक आयुक्त,

कामर्शियल टेक्स) ने इस कृति का प्रथम संस्करण प्रकाशित कराया था। जिनवाणी की सेवा/प्रकाशन/प्रसार में तत्पर/संलग्न उक्त सभी 'ज्ञानियों' का मैं हृदय से आभारी हूँ, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

आचार्य श्री एवं संघस्थ सभी मुनिराजों के श्रीचरणों में हमारा त्रिवार नमोस्तु। उनका आशीर्वाद हमें सदैव ही मिलता रहे, यह भावना है।

विनयावनत

प्रमोद जैन 'हिमांशु'
विनोद जैन, राजीव जैन
संजय जैन, संजीव जैन, संदीप जैन
श्री पार्श्वनाथ बिल्डर एण्ड डेवलपर्स इंडिया (प्रा.लि.) भोपाल
हिमांशु फ्लोर मिल्स, भोपाल
दूरभाष : 9425005740

ध्यातव्य

एक गूढ़वादी के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह बड़ा विद्वान हो और न ही वर्षों तक व्याकरण और न्याय में सिर खपाकर उसमें सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु मानव -समाज को दुःखी देख आत्म-साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिए प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों पर विशेष विचार किये बिना जन-सामान्य के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अतः उच्चकोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जानेवाली भाषा को छोड़कर समय की प्रचलित भाषा को अपनाना ही महत्त्व रखता है। अध्यात्म में भाषा नहीं,भाव प्रधान है। भाषा का बोध विद्वत्ता नहीं, विषय का बोध विद्वत्ता है।

निवेदन

इस ग्रंथ में प्रमादवश व अज्ञानतावश टंकण, मुद्रण, शब्द संयोजन, शब्द संशोधन, शब्द विन्यास में रही त्रुटियों के लिए सुधी पाठक-विद्वत्जन से क्षमायाचना करता हूँ कि वे मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें और उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे त्रुटियों का यथास्थान संशोधन करें तथा संशोधनों या त्रुटियों से मुझे भी अवगत करावें ताकि आगामी संस्करण में उन संशोधनों को समाहित किया जा सके। माँ जिनवाणी की सेवा में मेरा यह शिशुवत् प्रयास है, अतः त्रुटियों से अवगत कराने वाले सुधी पाठकों का मैं कृतज्ञ होऊँगा।

जिनेन्द्र जैन

ए-60, पद्मनाभ नगर, भोपाल 462 023

दूरभाष - 0755-2759084

चलित - 8989405479

lkekf;d ns'kuk

मंगलाचरण

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरल-शब्दघनौघ-प्रक्षालित-सकलभूतल-कलङ्का।
मुनिभि-रुपासित-तीर्थाः सरस्वती हरतु नो दुरितम्।।
अज्ञान-तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जन-शलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुष विध्वंसकं,
श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं भव्य-जीवमनः प्रतिबोध-कारकमिदं
शास्त्रं श्री भावना द्वात्रिंशतिका नामधेयं,
अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तर
ग्रन्थकर्तारः श्रीगणधर-देवा, प्रतिगणधरदेवास्तेषां
वचोऽनुसारमासाध्य श्री आचार्य अमितगति स्वामी विरचितं, तस्य भाषा
टीकां आचार्य श्री विशुद्धसागरेण विरचितं, एषः 'सामायिक देशना' नाम ग्रंथः।

सर्व श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।
मङ्गलं भगवान वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गल कुन्दकुन्दाद्यौ, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गल्।।
सर्व मङ्गल- माङ्गल्यं सर्वकल्याणकारणम्।
प्रधानम् सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

❊ ❊ ❊

भावना द्वात्रिंशतिका

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थ-भावं विपरीत-वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।1।।

अन्वयार्थ-

(देव) हे भगवन्! (मम आत्मा) मेरी आत्मा (सदा) हमेशा (सत्त्वेषु) सर्व प्राणियों पर (मैत्रीं) मैत्रीभाव को (गुणिषु) गुणीजनों पर (प्रमोदम्) प्रमोदभाव को (क्लिष्टेषु जीवेषु) दुःखी जीवों पर (कृपा-परत्वम्) करुणाभाव को (विपरीत-वृत्तौ) और विपरीत वृत्ति वाले पर (माध्यस्थ भावं) माध्यस्थ भाव को (विदधातु) धारण करे।

सामायिक देशना

ज्ञानियो! भारत की तत्त्व-मनीषा अपने सिद्धान्तों में इतनी प्रबल और महान है कि सारा विश्व अध्यात्म की ओर जब दृष्टिपात करता है तो भारत की ओर निहारता है। यहाँ एक-दो नहीं, अनेकानेक ऐसे महामनीषी आचार्यभगवन्त हुए हैं जिन्होंने सिद्धान्त एवं अध्यात्म के अन्तस्तल में प्रवेश करके, सत् साहित्य का सृजन करके हमारा बहुत बड़ा उपकार किया है। अमितगति आचार्य एक ऐसे आचार्य हैं जो राजा भोज की सभा के नवरत्नों में से एक रत्न थे। इनका साहित्य विपुल है। 'मरण कण्डिका' यह महान् ग्रन्थ अमितगति स्वामी का ही है। इसमें समाधिमरण का वर्णन है। यह बहुत समय तक छुपा रहा, कुछ वर्ष पूर्व जिनमती आर्यिका ने इसका अनुवाद किया। 'भगवती आराधना' ग्रन्थ में जो प्ररूपणा है, वही 'मरणकण्डिका' ग्रन्थ में है। एक दृष्टि से यह भगवती आराधना का संस्कृत भाषा में श्रेष्ठ अनुवाद है।

आचार्य अमितगति का 'भावना द्वात्रिंशतिका' ग्रन्थ बत्तीस श्लोक प्रमाण है। आज यह ग्रन्थ सम्पूर्ण श्रावक समाज में, साधु समाज में सामायिक का एक अंग बन चुका है और इसका अपरनाम 'सामायिक पाठ' ही हो गया है। यह एक ऐसा अलौकिक ग्रन्थ है जिस ग्रन्थ में बत्तीस श्लोकों के माध्यम से आत्मा की स्थिर अवस्था का कथन किया गया है। लघुकाय ग्रन्थ में इतना विशाल वर्णन करने वाले ग्रन्थ बहुत कम उपलब्ध होते हैं।

जो भाव न आवे, उसका नाम है भावना। जो भाव कभी नहीं आये हों, उन भावों के आने का नाम है भावना। अनादि से क्या किया? वही राग, वही द्वेष, वही मान, वही माया, वही छल और कपट। इसके अलावा किया क्या है? किसी दूसरे को मत निहारना क्योंकि सामायिक पाठ पढ़ रहे हो। सामायिक में लीन होकर सुनना। **जो भव-भव में भाव किये हों, उन भावों**

का न होना, उसका नाम है भावना। आज तक हमने भव-भव में क्या किया? भगवान के चरणों में पहुँचा, पहुँचा तो इसलिए था कि भगवान् की भक्ति करके आऊँगा, लेकिन पुण्य ने वहाँ भी धोका दे दिया। ये पुण्य बड़ा धोकेबाज है। बोले महाराज! पुण्य ने कैसे धोका दिया? ज्ञानी! भगवान् की वन्दना करने के लिए गया था और वन्दना करके जैसे-ही मुड़ा, दस लोग माला लिये खड़े थे। ओ हो! ज्ञानी आया है, गले में माला डाल दो। पुण्य ने धोका क्या दे दिया? जब मैं गया था, खाली होकर गया था, भगवान् को निहारने गया था और जैसे ही माला देखी तो भाव बदल गया। जो मान खोकर गया था, वो मान ही मंदिर से माला के रूप में लेकर पहुँच गया।

हे पुण्य! तूने मुझे धोका दे दिया। पूज्य के स्थान पर हम पूजा करवाने नहीं गये थे। पूज्य के स्थान पर हम पूजक होने गये थे, लेकिन पूजा ने क्या किया? पूज्य गौण हो गये और मेरी पूजा प्रधान हो गई। पुण्य धोका नहीं देता यदि तू विवेक को साथ में लेकर जाता। पुण्य तो उदय में आयेगा। वह तो अपना काम करेगा। उसे आप टाल नहीं सकते। **पुण्य के उदय का आना नहीं टाला जा सकता, परन्तु पुण्य के भोग को टाला जा सकता है।** यदि पुण्य के भोग को नहीं टाला गया, तो जगत् में कोई साधु ही नहीं बन सकता है। पुण्य का उदय चक्रवर्ती पद होता है। पुण्य के भोग को टालना चक्रवर्ती का मुनि बनना है। हे चक्रेश! तू पुण्य के उदय से चक्रवर्ती बना है, परंतु पुण्य के उदय में भोग को भोगना पुण्य नहीं है, ये पाप का कारण है। यदि तू अरबपति है तो पूर्व के पुण्य से है और जो अरबपति का अहंकार है ये पाप का ही कारण है। **पुण्यसामग्री मिलना पुण्य का उदय है, परन्तु पुण्यसामग्री का भोगना पापबन्ध का कारण है।** पुण्योदय होना पूर्वपुण्यकर्म का उदय है, परंतु पुण्य को भोगना या नहीं भोगना, ये मेरा पुरुषार्थ है।

जो पुण्य को भोगे बिना छोड़ देता है, वह योगी होता है और जो पुण्य के फल को भोग लेता है, वो अपेक्षादृष्टि से नारकी तक भी हो सकता है। दोनों उदाहरण आपके पास हैं। **वस्तु का मिलना कर्माधीन है, वस्तु को भोगना या नहीं भोगना तो अपेक्षादृष्टि से स्वाधीन है।** तुझे संपत्ति मिली है, स्त्री मिली है, धन-वैभव मिला है, इसका उपयोग करना स्वाधीन है। पुण्य के योग से, आप जहाँ भी जायेंगे आपको सब सामग्री सुलभ हो जायेगी। तीर्थभूमि में भी जायेगा वहाँ भी तेरी पूजा हो जाएगी, परन्तु उस पूजा को स्वीकारना या नहीं स्वीकारना, ये तेरा स्वाधीनपना है। धर्मक्षेत्र में भी धर्मात्मा का सम्मान होता है और सम्मान चाहनेवाले व्यक्ति का घर में भी अपमान होता है।

घर में रोज एक-सी सामग्री बने तो तू अपनी देवी से कहता है कि कुछ भाता नहीं है,

बदलके बनाओ। हे ज्ञानी! परम आश्चर्य, घर में एक जैसा भोजन चार दिन मिल जाये तो तू कहता है कि भाता नहीं है, वही-वही बनाके रख देती हो। हे मुमुक्षु! कभी ऐसा तो घर में जाकर बोल कि बहुत दिन हो गये भोगों को भोगते-भोगते, अब ये भाते नहीं हैं। ऐसा बोलना सीख ले। ज्ञानी! कितनी बार भोगा, कभी तो बोल दो। कितने कपड़े पहने? जब तू ससुराल जाता है तो बदलके जाता है, मंदिर जाता है तो बदलके जाता है, अन्य कहीं जाता है तो बदलके जाता है और कहता है कि एक ही से अच्छे नहीं लगते, इसलिये बदलके जाता हूँ। कभी-कभी ऐसा भी सोचो कि कपड़े पहने-पहने बहुत दिन हो गये, अब ये अच्छे नहीं लगते। एक दिन ऐसी भी ड्रेस चुनने का भाव बनाओ कि जिसकी दूसरी ड्रेस न हो।

जिस भावना के आने से भव का नाश हो जाये, उसका नाम है भावना। भैया! यथार्थ बोलना, भवातीत होने के भाव हैं क्या? भवातीत होने के परिणाम हैं क्या? यदि मोक्ष जाने के परिणाम हैं, मोक्ष जाने के भाव आपके आ रहे हैं, तो भगवान् से कुछ मत कहना, देह से कुछ मत कहना, साधुओं से या श्रावकों से कुछ मत बोलना। ज्ञानी! भवातीत होने के परिणाम तुम्हारे हैं, भव को सम्हालना चाहते हो, भव को सुधारना चाहते हो, तो भावों को सुधार लो। दुनियाँ में किसी से मिलने की जरूरत नहीं है। भाव सुधर गये तो नियम से भव सुधर जायेगा। **भव से भवन नहीं सुधरता, भावों से सब सुधरता है।** भव मेरा कैसा होगा? ये तो किसी को मालूम नहीं, एकमात्र सर्वज्ञ को छोड़कर। जिसे मालूम है, वह सर्वज्ञ हमारे सामने नहीं है तो मेरा भव क्या होगा? ज्ञानी! भव तेरे सामने नहीं है, भगवान् तेरे सामने नहीं हैं। तेरे सामने यदि कोई है, तो तेरा भाव है। भाव को निहार लीजिए, विश्वास रखना, भव तेरा वही होगा।

कुटिल परिणाम चल रहे हैं, मायारूप परिणाम चल रहे हैं, भैया! बड़े प्रेम से सुनना, आप पशु बन जाओगे। माताओं! ध्यान रखना, आप जिनवाणी सुन रही हो। पुनः इसी पर्याय में आने के लिये सुन रही हो या नारीपर्याय से छूटने के लिए सुन रही हो? हे माँ! तेरे कहने मात्र से नारी पर्याय छूटने वाली नहीं है। नारीपर्याय से छूटना चाहती हो तो घर की मायाचारी करना छोड़ दो। परिवार के राग में, परिवार चलाने के राग में जो मायाचारी कर रही हो, परिवार चले या न चले, परंतु यह तेरा संसार नियम से चलेगा। एक में राग, दूसरे में द्वेष। किसमें कर रहा है मायाचारी? उस मायाचारी के वश होकर तेरी पूरी साधना निकल जायेगी। ज्ञानी! मालूम है कौन जीव हाथी बनता है? मंदिरों में घंटिया बजाता था, माथे पर तिलक भी लगाता था, लेकिन मायाचारी करना नहीं छोड़ता था, इसलिये हाथी बना द्वारे-द्वारे घूम रहा है। जितना पुण्य किया था, सो तिलक लग हरा है। जितनी मायाचारी की थी नाक के पीछे, सो बड़ी नाक लटकाये घूम रहा है।

ये जैनदर्शन है। आप लोग तो आपस में समझौता कर लोगे, लेकिन कर्म कहता है कि मेरा किसी से कोई समझौता नहीं है। बहुत अच्छा है कि जहाँ कर्मसिद्धान्त बैठा है, वहाँ रिश्वत लेने वाले नहीं बैठे हैं, नहीं- तो आप लोग सबसे पहले वहाँ पहुँच जाते और कहते कि जितना चाहिये, ले लो। नाम पुकारने वाले मुँहदेखी नाम पुकार सकते हैं, परन्तु कर्मसिद्धान्त कहता है कि यहाँ किसी का मुँह नहीं देखा जाता। यहाँ ज्ञानी! भव नहीं देखा जाता, यहाँ तेरी भावनायें देखी जाती हैं। जैसा भाव होगा, वैसा भव होगा। कह देना अपने आप से, हे मन! भव भटकाने के भाव तो तूने अनन्त बार किये हैं। अब विवेक मिला है, प्रज्ञा मिली है, समय साथ दे रहा है, तो ऐसे भाव बन जायें कि जिससे भव में न आना पड़े। ज्ञानी! भगवान् में सामर्थ्य नहीं है, देव-शास्त्र-गुरु में सामर्थ्य नहीं है कि तेरे भव को सुधार दें। वह सामर्थ्य यदि किसी में है तो तेरे अन्दर ही है। तू भाव सुधार लेगा तो तेरा भव नियम से सुधर जायेगा। भगवान भी सहकारी हो जाएगा।

विश्वास रखना, जिस जीव ने ध्यापूर्वक भगवान् की वाणी को सुन लिया है, वह भावी भगवान् ही है। जो-जो भगवान् बननेवाले हैं, वह जिनवाणी सुनते हैं और जो भगवान् होते हैं, वे जिनवाणी कहते हैं। सुननेवाला भावी भगवान् है और सुनानेवाला भगवान् है। तीर्थंकर भगवान कैवल्य को प्राप्त करने के बाद ही बोलते हैं। केवली की वाणी ही जिनवाणी होती है। केवली की वाणी के अनुसार जो कहा जाएगा, वह भी जिनवाणी है, लेकिन प्रधानता तो केवली भगवान् की ही है।

'भावना द्वात्रिंशतिका' के पाठ का बहुत प्रचलन है। पाठ की परम्परा बन्द मत कर देना। पाठ करने की परम्परा त्रैकालिक है। गणधर परमेष्ठी एक अंतर्मुहूर्त में द्वादशांग का पाठ कर लेते हैं। कोई पाठ करने का नियम अवश्य लेना। पाठ करते-करते कण्ठ रुकेगा तो अर्हन्त बनेगा, इसलिये पाठ करते रहना। आँख बन्द होने के पहले ईर्ष्यालुओं को अपने से दूर कर देना, क्योंकि ये कभी भी डस सकते हैं। कालिया नाग तुमको छोड़ सकता है, पर ईर्ष्या कभी नहीं छोड़ती है। लोक में ये विपरीत सूत्र प्रारंभ हो जाता है- 'हाथी के पगतले मर जाना, जैनमंदिर नहीं जाना'।

समय देखो, भगवान् में भी दोष दिखाई देते हैं यदि श्रद्धा न हो तो और श्रद्धा है तो पाषाण में भी भगवान् दिखाई देते हैं, इतना ही अंतर होता है। आस्था है तो तुम्हारे गुरुमहाराज हैं। आस्था नहीं है तो नंगे मनुष्य बैठे हैं। आस्था है तो जिनवाणी है, आस्था नहीं है तो कागज है। श्रद्धा में भगवान् हैं, आस्था में परमेश्वर हैं।

मुनिराज जब पाठ कर रहे थे तो एक सम्राट वहाँ से सैन्यबल के साथ निकल कहा था।

आयुर्वेद में एक सूत्र है– 'अनिष्ट-इष्ट'। अनिष्ट भी इष्ट होता है। जैसे ही सम्राट ने देखा कि जैनमंदिर है तो दूर से ही कान में अंगुली डाल ली। जैसे ही मंदिर के दरवाजे पर पहुँचा कि सम्राट के पैर में काँटा चुभ गया और काँटा चुभते ही कान से अंगुली निकल गई। कानों में जैसे- ही जिनवाणी/पाठ के शब्द पड़े, सो मिथ्यात्व की अंगुली भी खुल गई। सम्राट मंदिर में प्रवेश करने लगा तो सेनापति ने हाथ पकड़ लिया, स्वामी! कहाँ जा रहे हो? सम्राट कहता है कि मंदिर। छोड़िये मेरे हाथ को। सेनापति ने पुनः कहा, स्वामी! यहाँ नहीं जाना चाहिये। सम्राट ने सेनापति से हाथ छुड़ाकर मंदिर में प्रवेश किया। अब जहाँ स्वामी जा रहे हों, सेवकों को भी जाना पड़ा। सेनापति, मंत्री भी साथ हो लिये। तीर्थंकर पार्श्वनाथ की भव्य मुद्रा को देखकर मुदित हो गया। सम्राट वीतरागी तपोधन को देखकर कहता है– हे स्वामी! आज तक मेरी आँखें बंद थीं, कान बंद थे, उसका कारण क्या था? 'ध्रुव सत्य है, जब तक श्रद्धा की आँख बन्द है, वह संसार में है।

भैया! ज्यादा कुछ मत सीखना, इतना ही बस सीख लेना– अंतिम श्वास निकलने के पहले कषायों की श्वासों को निकाल देना। प्रभु के पादमूल में वन्दना करके कहना– हे नाथ! हमें धन-संपत्ति नहीं चाहिये। हमें तो अंतिम श्वास तक आपके चरणों की श्रद्धा चाहिये। भैया! विश्वास मानना, जो आस्था का आनंद है, वह जगत् में किसी का नहीं है। घर में भी रहना हो तो कुटुम्बी के साथ विश्वास बनाके रहना।

अहो श्रावको! विषय-कषाय के प्राचार्यो! कैसे विषयसेवन करना पड़ता है? कैसे कषाय करनी पड़ती है? कैसे मायाचारी करनी पड़ती है? ये सब आपसे कितने अच्छे से बनता है। उदाहरणार्थ, ज्ञानी! ऐसी मायाचारी का युग चल रहा है कि स्फटिक के नाम से काँच बिक रहा है। मणियों के नाम से केमिकल सिंथेटिक मणि बिक रही है। इसीलिये बिम्ब को भगवान बनाने से पहले अच्छी तरह से परीक्षा कर लेना। जिनशासन में स्वर्णमयी, रजतमयी, पाषाणमयी, रत्नमयी, धातुमयी प्रतिमाओं की पूजा है। दिगम्बर जैन आम्नाय में चित्र, तस्वीर की पूजा नहीं होती, चाहे वह भगवान की हो या गुरु की। प्रतिमा की ही पूजा है। प्लास्टिक और कागजों की कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। इस मिथ्यात्व पर भी दृष्टि करना पड़ेगी। आचार्य वसुनंदि स्वामी ने 'वसुनन्दी श्रावकाचार' में स्पष्ट रूप से लिखा है।

यथार्थ मानना, पुण्यात्मा के चेहरे पर सब झलकता है। प्रभुत्वशक्ति और पुण्यशक्ति ये दोनों शक्तियाँ तेरे पास नहीं हैं तो तू धर्म की भावना भी करना चाहेगा तो हो नहीं पायेगी। इसलिये अपनी प्रभुत्वशक्ति बढ़ाइये। यदि प्रभुत्वशक्ति होगी और जंगल में भी खड़ा कर दिया जायेगा, कपड़े उतारकर भी खड़ा कर दिया जाएगा, तब भी तुझे लोग दरिद्री नहीं कहेंगे। ज्ञानी!

कपड़ों में चमक नहीं होती, चमक चेहरे पर होती है। चेहरे पर चमक होती है तो कपड़े भी अच्छे लगते हैं और चेहरे पर चमक नहीं है तो कपड़े फीके लगते हैं। पुण्य की चमक चाहिये। सुन्दर कपड़ों से सम्मान होता तो बिजूका का होना चाहिये। बिजूका को पहना दो बढ़िया-बढ़िया कपड़े।

विषय चल रहा है पाठ का। सम्राट तपोधन के चरणों में गिर गया। वह कहता है, 'स्वामी! जो आप पाठ कर रहे हैं, वह मुझे समझा दीजिये'। संसार के अनेक गुण तो आप बाहर से ला सकते हो, पर निज की सरलता कहीं खरीदी नहीं जाती।

हे स्वामिन्! पहले आपको ही मेरा नमस्कार हो। आप इतनी सरलता कहाँ से लाये? आजकल तो सामान्य नेता, अभिनेता भी आ जाये तो ऐसा बनके बैठ जाता है। इसके राग में आकर मार्दव धर्म का नाश कर देते हो। मार्दव धर्म श्रेष्ठ था या नेता को देखकर के मायाचारी करना श्रेष्ठ था? यदि केमरा कोई आपकी तरफ घुमा दे तो सब ऐसे बैठ जायेंगे जैसे सामायिक कर रहे हों। परिणामों को कहना बड़ा कठिन होता है। महाराज कहने लगे, राजन्! मेरे से इसका अर्थ नहीं बनता है। राजा ने कहा- महाराज! आपके चरणों में श्रद्धा तो थी ही, लेकिन अब श्रद्धा दुगनी हो चुकी है। महाराज बोले, क्यों? राजा ने कहा आपसे अर्थ नहीं बनता, ये तो मैं समझ गया, लेकिन आप अर्थदान, सार्थकदान करते हो क्योंकि आप में इतनी सरलता भरी हुई है कि मेरे होने पर भी आपने मायाचारी नहीं की। इसलिये आपके मार्दव धर्म, आर्जव धर्म को मेरा नमस्कार हो। हे नाथ! आपसे अर्थ नहीं बनता, पाठ तो करते बनता है ना? बोले- हाँ, पाठ करते बनता है। 'एक बार पाठ और सुना सकते हैं क्या?' हाँ, सुना दूँगा। पाठ की महिमा देखो। जैसे ही मुनिराज ने पुनः पाठ प्रारंभ किया-

देवागमन-भोया- चामरादि- विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान्।। 1 आप्त मीमांसा ।।

पाठ को सुनते ही राजा का मिथ्यात्व भाग गया। आचार्य समन्तभद्र स्वामी न्याय और दर्शन के महान ज्ञाता थे। यह श्लोक तो वह महावीर स्वामी से कह रहे हैं। वह राजा शिवकोटि संस्कृत का ज्ञाता था। शिवकोटि, जिसने 'भगवती आराधना' नामक महान ग्रन्थ लिखा। मात्र एक पाठ सुनते ही कोटि-कोटि का मिथ्यात्व विगलित हो गया। ये क्या कह रहे हैं- आकाश से देव आ रहे हैं, चौंसठ चँवर ढुर रहे हैं, आपका आकाश में गमन हो रहा है, मात्र इसीलिए महावीर! मैं आपको नमस्कार नहीं करता। जिनशासन में वैभव की वन्दना नहीं, बे-भव की वन्दना है। जो वैभववान हैं, वे बंधनस्थान में हैं और जो बे-भववान् हैं, वे सिद्धस्थान में हैं।

आप किसको नमस्कार करते हो? वैभव को, हार, मुकुट आदि को? नहीं, वीतरागता को। आप निर्दोष परमात्मा हो, इसलिये वंदना है। सेना बाहर खड़ी हुई है कि स्वामी अब आ रहे होंगे। मंत्री निहार रहा है कि अब चलनेवाले हैं। सेनापति अवलोकन कर रहा है, चेहरा निहार रहा है। जो कान में अंगुली डालकर जा रहे थे, वे ही केशलुंचन प्रारंभ कर रहे हैं और जो राजा था, महाराज बन गया। ये है पाठ की महिमा। इसीलिये पूजा करो तो इतने अच्छे से करो कि जिसको पूजा से ईर्ष्या भी हो तो वो भी तेरी पूजा सुनकर पूजा करने लग जाए। तुम ऐसे शुरू हो गये कि मेढक टर्रा रहा हो, तो बेचारा भाग जायेगा। कोई भी पाठ करो, अच्छे से करो, मध्यम स्वर में करो। दूसरों की आवाज दबाने के लिये पाठ करोगे तो जिनवाणी में लिखा है कि उसका कुमरण होगा, समाधि नहीं होगी। पूजा कर रहे हो और इतने जोर से चिल्ला रहे हो कि दूसरा पुजारी पूजा भूल-भूल जा रहा है। ये तुम्हारी पूजा उसके अन्तराय का कारण बन रही है।

पाठ करना हमारे यहाँ की परम्परा है। बूढ़ी माँ को कुछ भी समझ में नहीं आता, तब भी तत्त्वार्थसूत्रजी का पाठ सुनती है, भक्तामर जी का पाठ सुनती है। कुछ लोग उपहास करते हैं। भैया! जिनके पास तत्त्व नहीं होता, उनके प्रवचन में दूसरे का उपहास ही रहता है। इसमें कोई शंका नहीं करना। एक बूढ़ी माँ बैठी हो, ठीक से उसको दिखाई न देता हो, पढ़ी-लिखी भी नहीं है, पर भाव हैं और कहती है भइया! हमें सूत्रजी का पाठ सुना दो। यदि तुम सुनाना शुरू करते हो तो विश्वास रखना, तुम्हें बहुत पुण्य मिलेगा। परन्तु उसी बीच में अब जितना क्षयोपशम माँ का था, सोचती है कि पाठ तो सुन ही रही हूँ, जाप भी कर लेती हूँ और उसने माला फेरना भी शुरू कर दिया। तुम उपहास भले ही करो, परन्तु मैं उस माँ का उपहास नहीं करूँगा। माँ! तू ठीक कर रही है। उपयोग इतना चंचल है कि एकसाथ नहीं लग सकता था। तू पाठ में जायेगी तो जाप में नहीं रहेगी, तू जाप में जायेगी तो पाठ में नहीं रहेगी और दोनों कर रही है तो कहीं-न-कहीं तो रहेगी। अच्छा सोचना सीखें, बुरा क्यों? जाप कर रही है, वो भी अच्छा काम कर रही है और पाठ सुन रही है, वो भी अच्छा काम कर रही है। लेकिन माँ! बहुत अच्छा होता कि एक ही काम कर लेती। ठीक है, नहीं बनता तो दोनों काम कर लो, लेकिन तीसरा काम मत करना, घर की याद मत करना। किसी भी धर्मात्मा का उपहास मत करना। इस खोटे काल में यदि कोई मंदिर भी आ रहा है तो उसकी पीठ ठोकना, क्योंकि बाहर के मंदिर बहुत हैं, उनसे छूटकर आ रहा है, इससे बड़ा काम क्या है? तुम्हारा युवा बेटा महाराज के चरणों में बैठा हो, इससे बड़ा उपकार और कुछ मत मानना- क्योंकि इस खोटे काल में जो नारियों के चरण छूते हों, वे मुनिराज के चरणों में बैठे हैं, इससे भाग्यवान बेटा किसका

होगा? पाठ को सुनकर सम्राट मुनिराज बन गया।

बाली नाम के जो मुनिराज हुये हैं, उन्होंने कैलाश पर्वत की रक्षा की है। यह पाठ का ही प्रभाव था। रावण कैलाश पर्वत की जड़ में प्रवेश कर हिलाने लग गया। यदि हिला देता तो भरतेश के द्वारा स्थापित स्वर्णमयी/रत्नमयी प्रतिमाओं से युक्त स्वर्णमंदिरों का नाश हो जाता। उस समय बाली मुनिराज ने अंगूठा दबा दिया था। आपको पता है कि बाली कौन थे? पूर्व जन्म में बाली का जीव एक हिरण था। जंगल में विचरण कर रहा था। वहीं एक मुनिराज जिनवाणी का अत्यंत सुरीले कण्ठ से पाठ कर रहे थे। वह हिरण प्रतिदिन समय पर आकर जिनवाणी के पाठ को सुनता था। उस जीव ने नियोग से ऐसे प्रबल पुण्य का बंध किया कि वही मृग का जीव बाली मुनिराज हुआ, जिसने कैलाश पर्वत पर स्थित मंदिरों की एवं जीवों की रक्षा की। इसलिये जब भी पाठ करना, अच्छे से करना। बारह भावना, वैराग्य भावना, मेरी भावना आदि पाठ इसलिए हैं कि आपके प्रशस्त परिणमन से, शब्दवर्गणाओं से दूसरे भी प्रभावित हों।

मन, वचन, काय इन तीनों को एक करके निजस्वरूप में लीन हो जाना, इसका नाम सामायिक है। आप लोगों ने सामायिक का अर्थ लगा लिया माला फेरना, पाठ करना। ये यथार्थ में सामायिक नहीं, शुभ भावना है। यथार्थ सामायिक तो निज आत्मश्रद्धा का नाम है। आज आप सामायिक पाठ को शुरू कर रहे हैं। इसका पहला श्लोक कह रहा है कि जब तक जीवन में यह भाव नहीं आया, तब तक जीवन में कोई सामायिक नहीं। आर्त्त-रौद्र परिणामों के अभाव होने का नाम सामायिक है।

समता मे सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना।
आर्त्तरौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिकं मतम्।। 7।। सामायिक देववंदना।।

सभी भूतों में (प्राणियों में) समता होना सबसे कठिन है। माँ बनना। माँ का हृदय होगा तो सबको बेटे- जैसा देखेगी। माँ बनने से कठिन महात्मा बनना है। माँ को तो मात्र अपना उत्पन्न किया बेटा ही दिखता है, परंतु महात्मा को तो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव बेटे दिखते हैं। जिस दिन महात्मा बन जाओगे, उस दिन से भेद दृष्टि तेरे अन्दर से पलायन कर जायेगी।

बेटा! कपड़े मात्र उतारना महात्मापना नहीं है। कपड़े उतारना साँप की केंचुली उतारने के समान है। कषाय उतर जाये, यह साँप के जहर की थैली निकलने के समान है। कपड़े उतारकर फेंक भी दिये, परन्तु तुम्हारे मन में भाव कलुषित रहें, तो ज्ञानी! जिनमुद्रा को प्राप्त करके भी निजनरूप प्राप्त नहीं कर सकते तो तूने जीवन में क्या किया? दुःख लगता है, यथार्थ

मानिये, बड़ा कष्ट भी होता है। जो भी त्यागी बने, वे समाज, धर्म और गुरु पर लक्ष्य रखें। अगर तू श्रेष्ठ साधु बन गया तो ये समाज मुस्करायेगी और कहेगी कि ये मेरे नगर के महाराज हैं और ज्ञानी! जरा भी गड़बड़ हुआ, तो तेरा सगा भाई भी नाम लेने को नहीं आयेगा। यह मोक्षमार्ग है। आप विश्वास मानना, जो आनंद अपने बेटे की प्रशंसा में नहीं आता, वो गुरु की प्रसन्नता में आता है। ये समाज मुस्कराती है। बस, भैया! तुम कुछ कर सको या नहीं, लेकिन समाज तुम्हारे नाम पर मुस्कराती रहे इतना काम कर देना।

प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोद भाव, दुःखी जीवों पर कारुण्य भाव और विपरीत वृत्ति वालों में माध्यस्थ भाव- ऐसी वृत्ति करो। हे देव! ऐसी अवस्था मेरी हमेशा रहे।

मनीषियो! आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी अन्तस् की भावना को उद्घाटित करते हुए समझा रहे हैं- सामायिक करना है तो साम्य, सुशांत होना होगा। साम्य हुए बिना सामायिक नहीं होती। सामायिक हुए बिना समाधि नहीं होती और समाधि हुए बिना निर्वाण नहीं होता। निर्वाण की सिद्धि चाहिये तो तुम्हें सामायिक करना पड़ेगी। सामायिक की सिद्धि चाहिये तो पहले साम्यबुद्धि चाहिये, पानी-जैसा परिणमन चाहिये। भूमि चाहे गहरी हो या उथली हो या संकीर्ण हो, कँकरीली हो, समतल हो या गड्ढे हों, लेकिन पानी जब भी बढ़ता है तो सम होकर ही बहता है। कितनी ही चट्टानें पड़ी हुई हों, गड्ढे हों, लेकिन जब भी पानी बढ़ता है तो गड्ढे को भरकर ही आगे बढ़ता है। वैसे-ही सामायिक करनेवाला जीव अपने अन्तस्तल में किसी प्रकार के गर्त को स्थान नहीं देता, गड्ढे को स्थान नहीं देता है। रौद्र परिणाम में साम्यभाव कहाँ? साम्यभाव के अभाव में सामायिक कहाँ?

सत्त्वेषु मैत्रीं। किसी पर करुणा हो या न हो, किसी पर दया हो या न हो, लेकिन अपने परिणामों पर दया होना चाहिये। वह पुरुष मेरे सामने नहीं है और उस जीव के प्रति हमारे अशुभ परिणाम आ जायें। हो सकता है उसे मालूम ही नहीं हो कि मेरे बारे में कौन क्या सोच रहा है? वह तो तन्मय होकर भगवान की आराधना में लीन है और सोचने वाला बेचारा झुलस रहा है, दहक रहा है। पर का घात हो या न हो, परन्तु पर के घात का चिन्तन करनेवाला स्वघाती नियम से होता है। समझ में आ रहा है? पर का घात तेरे द्वारा नहीं होता है। उसके परघात नामकर्म का उदय है, तो ही तेरे द्वारा पर का घात हो सकता है और उसका परघात नामकर्म का उदय नहीं है तो उसे तोप के गोले के सामने भी खड़ा कर दिया जायेगा तो तोप का गोला भी ठंडा हो जाएगा। उसका बाल-बाँका नहीं हो सकता है। तीर्थंकर वर्द्धमान के महान-भक्त दीवान की सम्राट के सामने किसी ने आलोचना कर दी। सम्राट ने बोल दिया कि

तोप के गोले से नष्ट कर दो। लेकिन तोप का गोला ही नष्ट हो गया।

ज्ञानी! वार तो किया जा सकता है, परन्तु मरण नहीं कराया जा सकता है। वार करना, ये तेरी कषाय है। आप वार कर पाओगे, मार किसी को नहीं पाओगे, विश्वास रखना। कर्म की 148 प्रकृतियों का जीव को ज्ञान हो जाये, ज्यादा तत्त्वबोध न भी हो, तो काम चलेगा। नामकर्म की 93 प्रकृतियाँ हैं। उन प्रकृतियों को पिण्डरूप में, अपिण्डरूप में समझ लेता तो आज बिलखना न पड़ता। आज सारे विश्व को 'तत्त्वार्थ सूत्र' पढ़ने की आवश्यता है। ज्ञानी! विश्वास रखना, आज छल-कपट करके तिर्यञ्च आयु का बन्ध तो कर पाओगे, परंतु छल-कपट में सिंहासन को प्राप्त नहीं कर पाओगे, इसमें शंका मत करना। पुनः कहता हूँ ज्ञानी! अहित भी करना चाहेगा तो किसी का नहीं हो सकता और तू हित भी करना चाहेगा तो किसी का नहीं हो सकता। जिसका तू हित करना चाहता है, उसका भी पुण्य चाहिए। यदि पुण्य नहीं है, तू उसको कोटि-कोटि द्रव्य भी दे देगा, लेकिन डाका पड़ जायेगा। यदि तेरा पापोदय नहीं चल रहा है, पुण्योदय चल रहा है, तो विश्वास रखना, कोई तुझ पर अंगारा फेंकेगा तो तेरे पुण्य के प्रभाव से वो फूलमाला बनेगा।

धर्म के प्रभाव से अग्नि हिम हो जाती है और कालिया नाग भी फूलों की माला बन जाता है। महारानी सीता को देखो। हे श्रीराम! आपने सीता को अग्निकुण्ड में प्रवेश कराया था, आप अग्निकुण्ड में प्रवेश तो करा सकते हो, परंतु अग्नि में जला नहीं सकते हो। जलता पाप है, चमकता पुण्य है। सब लोग सोच रहे थे कि अब सीता कहाँ मिलेगी? इतना विशाल कुण्ड हो और उस कुण्ड में इतनी प्रचण्ड अग्नि जल रही हो। लक्ष्मण, राम, सब निहार रहे थे। लव-कुश देख रहे थे, बिलख रहे थे वो दोनों लाल कि अब मेरी माँ मिलनेवाली नहीं है, वो तो भस्म हो जायेगी। परंतु किट्टिमा जल जाती है और सोना निखर आता है। राम! आप भूल गये थे कि कौन किसका बालबांका कर पायेगा।

भैया! शील में ताकत है। सील बन्द है, तो विश्वास सारे जगत में है। सील खुल गई, तो विश्वास निकल गया। जितना भगवान् पर विश्वास है, उतना स्वयं पर विश्वास जिस दिन हो जाएगा, उस दिन तू ही भगवान हो जायेगा। परमात्मा पर विश्वास करने से स्वर्ग मिलता है, लेकिन स्वयं पर विश्वास करने से शिव मिलता है। सीता को विश्वास था। उसने ये नहीं कहा- हे अग्नि! हे देव! हे राम! मुझे बचाओ। पंचपरमेष्ठी का स्मरण करके सीता कहती है, 'हे अग्नि! यदि मेरे शील में दोष हो तो ध्वस्त कर देना।' वह डाली गई तो अग्निकुण्ड में थी, लेकिन सरोवर स्थित खिले हुये कमल पर प्रकट हुई।

सोमा की सासू ने कालिया नाग रख दिया था और वो कालिया नाग हार बनके निकलता

है। दुनियाँ में कहीं भी चले जाना, अपने चारित्र को पवित्र रखना, अपनी परिणति को पवित्र रखना। जगत में काँटों की बाड़ी भी लगी होगी तो वो तेरे लिये पुष्पों का द्वार बन जायेगा, शत्रु के घर में भी सम्मान मिलेगा। यदि संयम क्षत-विक्षत हो चुका है तो स्वयं के घर में भी अपमान मिलेगा। गुटखा खाने वाले पिता का सम्मान पुत्र नहीं करता। मदिरा की बोतल ढालने वाले पिता को बेटा भी देखना पसन्द नहीं करता।

जिसका पुण्य बलवान है, उसके लिये कालिख लेकर तुम दौड़ोगे तो फिसलकर गिर जाओगे, तेरा हाथ ही तेरे चेहरे पर चला जायेगा, तेरा ही चेहरा काला हो जायेगा, लेकिन पुण्यवान के चेहरे को काला नहीं कर पायेगा। बाहुबल मत देखना, सैन्यबल मत देखना। बल देखना हो तो मात्र पुण्य का बल देखना। नारायण श्रीकृष्ण को मारने के लिये कंस ने कितने उपक्रम किये! पूतना को आँचल में जहर लगा कर भेज दिया और कहा कि आँचल का पान करा कर आओ। कंस! तू जहर लगवा सकता है, परन्तु मरण नहीं करवा सकता है। पुण्यात्मा के मुख में जहर भी अमृत हो जाता है।

भो ज्ञानी! राग ही कर पायेगा, द्वेष ही कर पायेगा, परन्तु कर किसी का कुछ नहीं पायेगा। तू राख ही हो जायेगा। जीवन में ये सूत्र हमेशा याद रखना- जगत में नाना जीव व अजीव हैं। सबको देखो, जानो और जाने दो। तुम किस-किस के साथ जाओगे? मेरी आत्मा का धर्म दुनियाँ के साथ जाना नहीं है। मेरा तो ज्ञायकस्वभाव है। 'देखो, जानो, जाने दो', इतना सीख लेना। घर में उपद्रव हो जाये, विसंवाद हो जाये तो कहना, 'देखो, जानो, जाने दो', क्यों समय बर्बाद कर रहे हो? हे माँ! तूने ये सूत्र हृदय में उतार लिया तो तेरा घर आज से ही स्वर्ग बन जायेगा। यह ध्रुव सत्य है, दुनियाँ के बारे में सोचोगे तो विकल्प होंगे। अपनी शांति व साता को पास में रखना है तो दुनियाँ के बारे में मत सोचो।

कौन क्या कहता है? कौन क्या बोलता है? ज्ञानी! देखो, जानो, जाने दो। क्योंकि कण-कण स्वतंत्र है। जब तेरी आत्मा स्वतंत्र है, तो दुनियाँ के तनाव क्यों पालूँ? सामायिक करना है तो पहला सूत्र- 'देखो, जानो, जाने दो' क्योंकि सामायिक में दुनियाँ को लेकर बैठ जाओगे तो सामायिक कब कर पाओगे? सामायिक के पूर्व दुनियाँ के सारे संपर्क दूर कर दो, क्योंकि जगत से संपर्क रखोगे तो जब फुर्सत में रहोगे तो वही-वही सामने आयेगा। वैद्य भी एक रोगी को देखने के बाद थोड़ा ठहर कर दूसरे रोगी को देखता है। मैंने पूछा, वैद्यजी! ऐसा क्यों करते हो? तो वो बोले अभी मैं जिसको देख रहा था, वो मेरे ज्ञान में ज्ञेय बना था, उसका रोग मेरे अन्दर गूँज रहा था। तुरंत दूसरे को देखूँगा, तो ज्ञान मिश्र बन जाएगा, मालूम ही नहीं चलेगा कि किसको क्या हुआ? ऐसे-ही जो जीव विषय-कषाय के बीच बैठा है, तुरन्त सामायिक

करने बैठ जायेगा तो पूरा घण्टा खाली मिलेगा, खाली मस्तिष्क में वही-वही चित्र आयेगा। इसलिये सामायिक से पूर्व सगे-संबंधियों को भी अन्तस् से निकाल देना। व्यवहार से, लोकाचार से तो आप मेरे हो, परन्तु मेरी आत्मा के अंशमात्र भी नहीं हो। मेरी आत्मा तो शाश्वत एक अखण्ड है। संसार के बंध के साधनों के साधन हो आप। ये चेला, चेली जब बंध के साधन हैं, तो पुत्र, स्त्री, बेटा, बेटी आदि ये मोक्ष के साधन कैसे हो जायेंगे? आचार्य महाराज को भी अपने आचार्य पद का विसर्जन करना पड़ता है और चेला-चेलियों का राग छोड़ना पड़ता है। चेला-चेली का राग भी बन्ध का ही कारण है।

न शिष्योः गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ।।8।। वीतराग स्तोत्रम्।।

मैं हीन हूँ, मैं बाल हूँ आदि विकल्प भी आत्मा का ध्रुवधाम नहीं है। एकमात्र चिदानन्द चैतन्य स्वभाव आत्मा का शुद्ध स्वभाव है।

अचानक निधि मिल जाये तो तिजोरी में बन्द करके छिप-छिपकर देखता है और घर के बाहर चबूतरे पर भी बैठा रहता है, तब भी निधि दिखाई देती है और मुदित होता रहता है। इसी प्रकार जो जीव अपनी निधि भूला था, जब निज निधि का बोध हो जाता है तो शान्ति का बोध करने लगता है। ''सत्त्वेषु मैत्रीम्'' ये सामायिक का पूर्व पाठ है। जगत में कोई मेरा शत्रु नजर नहीं आ रहा है। यदि शत्रु नजर आ रहा है, तो सामायिक नहीं और सामायिक है, तो कोई शत्रु नहीं। मेरा बेटा, मेरा शिष्य, अमुक का शिष्य है, ज्ञानी! तुझे सत्य का बोध नहीं है।

''परेषां दुःखानुत्पत्त्यभिलाषो मैत्री।''(सर्वार्थसिद्धि)ज्ञानियो! मैत्री का अर्थ किसी के घर जाकर भोजन करना नहीं है। किसी के जूठे पत्तल में खाना नहीं है। किसी से गले मिलना नहीं है। किसी के हाथों को रगड़ देना नहीं है। मैं तेरे बेटे की शादी में खर्च करता हूँ, तू मेरे बेटे की शादी में खर्च कर देना, इसका नाम मैत्री नहीं है। तो मैत्री क्या है? मैत्री है तो एकेन्द्रिय पंचेद्रिय में भेद नहीं दिखेगा। जगत के प्राणिमात्र को दुःख न हो, ऐसे परिणाम मन में होना, इसका नाम मैत्री है।

भैया! जीवन में ध्यान रखना, यदि अपने जीवन में एक भी जीव को तू जीवनभर शत्रु मानता है, तो मुनि ही नहीं, महान आचार्य भी बन जायेगा तो भी तेरी सामायिक 'सामायिक' नहीं होगी, क्योंकि साम्यभाव का अभाव है सामायिक तभी होगी, जब तेरा सोच 'शौच' हो जायेगा। जिसका सोच शौच नहीं है, उसके पास सामायिक किंचित् भी नहीं है। कल्पना कीजिये, क्रियारूप धर्म कितना फलित हो रहा है और धर्मभूत धर्म कितना फलित हो रहा है? किसी को धर्मात्मा देखते हो तो उसे अपने पक्ष का बनाने का पुरुषार्थ प्रारम्भ कर देते हो। वह

बेचारा धर्म का आनन्द लूट रहा था, उसे आपने आकर के पक्ष में डाल दिया, उसका धर्म भी नष्ट कर दिया।

बहते पानी में चाहे पीला रंग मिलाओ चाहे नीला रंग मिलाओ, दिखने में तो अच्छा लगेगा, लेकिन पानी की वास्तविकता/सत्यता का तो अभाव किया ही है। चाहे किसी को मित्र बना लो, चाहे किसी को शत्रु बना लो, मित्र, शत्रु बनाकर आपने दोनों स्थितियाँ में उसकी पवित्रता का नाश कर दिया। मित्र नहीं बनाना चाहिये था, मैत्री होना चाहिये थी। मित्र स्वार्थ का होता है। देखा कि इसकी जेब भरी है, सो मेरा है और जेब खाली, तो गया काम से। मैत्री जेब नहीं देखती। प्राणिमात्र में अदुःख परिणति हो यानी कोई जीव दुःखी नहीं हो।

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्रसामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः।। (नित्य नियम पूजा)

देश में, राष्ट्र में, पुर में, सर्वत्र शांति हो। भगवान के शीश पर कलश ढाते हुए शान्तिधारा करो या मत करो, वह शान्तिधारा क्रियाभूत है; परन्तु शान्तिधारा निज आत्मा में धारण कर ली तो जगत की शान्तिधारा हो गई। शान्तिधारा करते आपने अशान्ति देखी? बिना बोली के शान्तिधारा कर रहे हो तो कलश की हालत देखो क्या होती है? कोई कहता है सिर पर करो, कोइ्र कहता है चरणों में करो, कोई कहता हे यंत्रजी पर। इसी में झगड़ा प्रारम्भ कर दिया। क्या कर रहे थे शांति धारा? एक कहता है कलशे से करो, दूसरा कहता है झारी से करो। ज्ञानी! सत्य का बोध बड़ा कठिन है। हाथ भी तो लगा सकते थे। कोई नहीं लगाने दे रहा था तो देख भी तो सकते थे, क्योंकि शांतिधारा हो रही थी। जो कलश कर रहा है, कोई उसका कंधा खींच रहा है कि तू-ही-तू करेगा क्या? काहे का 'सम्पूजकानां प्रतिपालकानाम् ?'

हे माँ! सुनो, सत्त्वेषु मैत्रीम्। घर में सासू को गाली देकर आई हो, बहू को पीटकर आयी हो और भगवान से कह रही हो, 'मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।' धन्य हो माँ! तेरे लिये। यदि सब जीवों से मैत्रीभाव है, तो बहू कौन तुम्हारी दुश्मन थी? वह भी एक जीवद्रव्य है। सत्य है ना? आज घर जाकरके बहू के पैर छू लेना। नहीं है ताकत तो तुम्हारा सब धर्म ढोंग का है। ऐसी कौन बहू होगी तो सासू से पैर पड़वायेगी, तुम छू के तो देखना? लेकिन आप पैर छुओगे तो ये विश्वास रखना कि तुम्हारे घर का वातावरण परिवर्तित हो जाएगा। कितना ही कषायी, हो उस पर झुक जाओ तो वह अपने आप ठण्डा हो जाता है।

ज्ञानियो! मंदिरों की संख्या बढ़ रही है, श्रीजी की संख्या बढ़ रही है, साधुओं की संख्या बढ़ रही है, साध्वियों की संख्या बढ़ रही है, लेकिन साम्यभावियों की संख्या घट रही है।

इसका कारण यह है कि हम बहिरंग की बातों पर जोर दे रहे हैं, अंतरंग पर लक्ष्य नहीं जा रहा है। 'सत्त्वेषु मैत्रीं' प्राणिमात्र पर मैत्रीभाव। एक करोड़ मंदिर स्थापित कर देना कठिन नहीं है, क्योंकि मंदिर स्थापित करने में तेरा कुछ भी नहीं जाता है, वह तो द्रव्य का पररूप परिणमन करा रहा है, लेकिन प्राणिमात्र में मित्रता रखना, ये निज के परिणामों की परिणति है और मंदिर बनाना बहिरंग परिणति है।

एक कोटि मंदिर बनाना सरल है, परन्तु चार लोगों के प्रति एक-से भाव कर लेना बहुत कठिन है। तेरे दो बेटे होते हैं, तू उनमें भी भेद कर लेता है कि छोटा बात मानता है, बड़ा बात नहीं मानता है। बड़े के घर में खाता और छोटे से नहीं बोलता, ये क्या हो रहा है? दो शिष्य हो गये, उनमें ही भेद कर रहा है। ये मेरा नाम करेगा, ये कोई काम का नहीं है। बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। बेटा-बेटी में भेद। बेटे का जन्म हो जाए तो लड्डू फूटते हैं। बेटी का जन्म हो जाए तो मुँह लटकाके घूमता है। 'सत्त्वेषु मैत्रीं'। वह जीवद्रव्य नहीं था क्या? ज्ञानी! विश्वास रख, हो सकता है कि बेटे घर के बाहर भगा दें, लेकिन बेटी तुझे अपने घर बुला ले, जीवनपर्यन्त तेरा सम्मान करे। इसलिए न बेटे में भेद करो, न बेटी में भेद करो। यदि आपको उन सबसे सम्मान चाहिये तो अपने पुण्यद्रव्य को साथ में लेकर चलो। चाहे बेटा हो या बेटी हो, उसके लिये एकसा परिणमन।

ध्यान रखना जीवन में, निर्ग्रन्थों को निर्ग्रन्थ बनकर रहने देना, उनको भोगी बनने में निमित्त न होना। तुम्हारे नगर में आयें, तब उनकी साधना में सहयोग तो करना, लेकिन ज्ञानी! विराधना का सहयोग मत करना। यू कूलर, पंखें ये योगियों का काम नहीं है। पंचमकाल में आप पर्वत पर नहीं बैठ सकते हो, लेकिन शांति से कमरे में बैठो। सूत्र है 'सत्त्वेषु मैत्रीं'। भैया! न ऐसी मन की प्रवृत्ति करना, न ऐसी वचन की प्रवृत्ति करना, न ऐसी काय की प्रवृत्ति करना जिससे किसी प्राणी को दुःख हो। चौबीस घंटे में एक बार भी सामायिक हो गई तो विश्वास रखना, चौबीस घंटे एक साधु के रूप में निकलेंगे। एक बार भोजन करके दिनभर निकाल लेते कि नहीं? एक बार पुद्गल के टुकड़े को खाकरके दिनभर आप ऊर्जा को प्राप्त हो जाते हो, ऐसे-ही एक बार सामायिक करोगे तो दिन भर उस शक्ति का संचार होगा। एक घंटे की सामायिक में एक मिनट की भी सामायिक हो गई तो याद रखना कि वो सामायिक तेरे लिए भव से पार कराने का साधन बनेगी। जो शक्ति ध्यान में है, वह शक्ति जगत में कहीं नहीं है। दुनियाँ के तीर्थों में, दुनियाँ के मंदिरों में जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि एक मिनट को ध्यान लग गया, तो विश्वास रखना, आपने अनन्तगुणी कर्म की निर्जरा कर ली।

'सत्त्वेषु मैत्रीं, गुणिषु प्रमोदं'- गुणीजनों को देख करके प्रमुदित भाव हो जाना। नगर में

कोई ज्ञानीजीव, विद्वान, त्यागी, ऋषि, यति, मुनि, अनगार आये तो जैसे सूर्यमुखी फूल सूर्य के उगने के साथ-साथ खिलता है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव खिल जाता है, परन्तु अज्ञानी पापीजीव चमगादड़ के समान होता है, दिवांध। चमगादड़ सूर्य के उदित होने पर किसी अंधेरे कमरे में जाकर उल्टा लटक जाता है। जिस जीव को तिर्यञ्च आयु का बन्ध हो चुका है, वह धर्म और धर्मात्मा को देखकर उल्टामुख लटक जाएगा और जिस जीव की स्वर्ग की तैयारियाँ चल रही हैं, वह परमात्मा के सम्मुख आकर नमन करने खड़ा हो जायेगा। 'गुणिषु प्रमोद' गुणीजनों को देख हृदय में प्रेम उमड़ आवे। अब लगता है कि द्वात्रिंशतिका में, मेरी भावना में लिखा रहेगा- हे भगवन्! क्या विष्णुकुमार अब पुराणों में ही मिलेंगे या कि पंचमकाल में कोई मुनि विष्णुकुमार के रूप में दिखाई पड़ेंगे? विष्णुकुमार मुनिराज सातसौ योगियों के उपसर्ग को दूर करने आ गये, लेकिन आज तो ज्ञानी! कोटि-कोटि जीवों का वध हो रहा है। वे ही लोग आज हमारे कार्यक्रमों में फीता काटने आते हैं, ध्वजारोहण करने आते हैं और वे ही लोग कत्लखाने खोलने खड़े होते हैं।

हे ज्ञानी! अब भूल जाओ इस बात को कि 'जीके राज में रहियो ऊके जैसी कहिओ, ऊँट बिलइया ले गई तो हाँजू हाँजू कहियो'। मालूम, ऐसा युग चल रहा है। किसको मालूम नहीं है कि ऊँट को बिल्ली ले जा सकती है क्या? लेकिन तब भी भैया! जगत की लीला ऐसी है कि जिसके राज में रहना, उसके-जैसी कहना पड़ती है। ध्रुव सत्य तो ये है कि हाँजू हाँजू कह लोगे, परन्तु सत्य तो सत्य ही होता है। सत्य तो आवृत किया जा सकता है, सत्य को ढँका जा सकता है, सूर्य को मेघ आच्छादित कर सकते हैं, परंतु नष्ट नहीं कर सकते हैं। हे मेघो! वायु चलेगी, तुम तो उड़ जाओगे, लेकिन सूर्य वैसा-का-वैसा है। इस बात को आज से भूल जाना 'जीके राज में रहियो ऊके जैसी कहियो'। वह नहीं कहना हमको। जो जिनवाणी कह रही है, वह कहना है। राज किसी के नहीं बचे। राजा अनेक हो गये। स्वतंत्र भारत में कितने प्रधानमंत्री बदल गए? बदले ना? परन्तु संविधान तो वही है ना? ऐसे ही ज्ञानियों! मैं तीर्थंकर भगवन्त से भी कह सकता हूँ भगवन्! आप बदल सकते हो। तीर्थंकर पद शाश्वत है, पर तीर्थंकर पुरुष शाश्वत नहीं है, उसका भी निर्वाण होता है। आप बदल जाओगे, लेकिन तीर्थंकर के शासन के संविधान को बदलने कोई नहीं आयेगा। पाँच महाव्रत शाश्वत हैं, पाँच समितियाँ शाश्वत हैं, तीन गुप्तियाँ शाश्वत हैं, तेरह प्रकार का चारित्र शाश्वत है। कोई भी तीर्थंकर नहीं बचे, कोटि-कोटि तीर्थंकर हो चुके हैं। आपको कितनों के नाम मालूम हैं? चौबीस। बहुत हुआ तो भूत, भविष्य, वर्तमान के नाम याद हो जायेंगे, लेकिन ज्ञानी! अनन्तानन्त चौबीसियाँ हो चुकी हैं, उनके नाम मालूम हैं क्या? जब तीर्थंकर- जैसे पुण्यात्मा जीव का नाम नहीं दिखाई

देता, तो विशुद्धसागर का नाम कहीं चलनेवाला है?

इस बात को भूल जाओ। ये अंदर की अज्ञानता ही है कि मेरा नाम चलेगा। मेरा नाम ही नहीं है, तो मेरा नाम क्या चलेगा? जिसका नाम है, वह देहाश्रित है। जो देह है, वह पौद्गलिक है, वह ध्वस्त हो जायेगी। जो मैं हूँ, वह मैं ही हूँ। मैं क्या हूँ? जो हूँ, सो हूँ। मेरा कोई नाम नहीं है, ये तो आचार्य विरागसागर जी द्वारा दी गई संज्ञा है। मैंने तो इसी पर्याय में नाम बदलते देखा। ज्ञानी! जब इस पर्याय में एक नाम नहीं बचा, तो अनन्त भव के क्या नाम बचेंगे? जब रागियों के बीच में था, तब कोई दूसरा नाम लेता था। जब आचार्य विरागसागर जी के पास आये तो ब्रह्मचारी बनके आ गए। थोड़े और रहे तो क्षुल्लक यशोधरसागर बनकर आ गये। और दिन बीते तो एलक बन गए। दिन बीतते-बीतते मुनि विशुद्धसागर बन गए। पहले राग था यशोधरसागर से, फिर विशुद्धसागर से। वे यशोधर सागर कहाँ चले गए? जब एक पर्याय में मेरा नाम शाश्वत नहीं, तो अनन्त भवों में मेरा नाम कहाँ बचनेवाला है। ये पागलपन मात्र है कि मेरा नाम रहेगा। दी गई संज्ञायें शरीर की हैं, संज्ञान नहीं है, परन्तु बेचारे तो इस बात पर रह रहे हैं कि मेरा नाम चलेगा। जब तू ही नहीं बचेगा, तो नाम क्या करेगा?

'गुणिषु प्रमोद' हे नाम! तूने गुणियों को देखना बन्द करा दिया। एक समय था जब घर में मेहमान आता था तो हृदय गद्गद् होता था और आज तेरी सगी बहिन भी आ जाये तो चेहरा उदास कर लेता है कि इसकी अलग से व्यवस्था करनी पड़ेगी। नगर में एक साधु आता था तो ज्ञानी! क्या लहर दौड़ती थी। अब तो आप देख रहे हो, नाम चल रहा है। विशुद्धसागर आये हैं, चलो चलें। और भैया! कोई अकेले महाराजजी आ गये, कितने ही तपस्वी हों, परिचित नहीं हैं तो कोई नहीं पहुँचा। दोष किसी का नहीं है। पूँछ की पूछ है, और- कुछ नहीं है।

'गुणिषु प्रमोद' दृष्टि जिस दिन आ जाएगी, उस दिन आप ये नहीं देखोगे कि संघ किसका आया है। उस दिन संघ नहीं देखोगे, गण नहीं देखोगे। उस दिन आप चारित्र देखोगे। मात्र दिगम्बर मुनि देखोगे। ये किसी भी ग्रन्थ में नहीं लिखा है कि अमुक संघ ही स्वीकारने योग्य है।

दिगम्बर आचार्यों ने ये लिखा है 'गुणिषु प्रमोदं'। जहाँ तुमको गुण दिखाई दे जायें, वहाँ प्रमुदित हो जाना। गुण न हो तो माध्यस्थ हो जाना, निन्दा तब भी नहीं करना। प्रमुदित भाव किसके प्रति? गुणियों के प्रति।

'क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं'। जो दुःखी है, बिलख रहा है। सभी जीव इसमें आ चुके हैं, कोई बचा नहीं है। पूजा करने आप जा रहे हो, मार्ग में कोई दुःखी प्राणी मिल जाये तो उसके

दुःख को दूर कर देना, फिर कपड़े बदल कर पूजन करने चले जाना। भगवान कहीं नहीं जायेंगे। विश्वास रखना, भगवान् यदि आपसे बात भी करते होते तो यही कहते-ज्ञानी! पहले जीव को देखो, फिर मेरे पास आ जाना। लेकिन भगवान् बात करते नहीं और जो बात करते हैं, वे भगवान् होते नहीं। ऐसा मत करना कि कोई जीव तड़प रहा हो और आप सोले के कपड़े पहने हो, बोलें, हमारी पूजा का समय निकल जायेगा। हे ज्ञानी! जिसकी तू पूजा करने जा रहा है, वे बन-चुके भगवान हैं, लेकिन जो तड़प रहा है, वह बननेवाला भगवान है। दोनों को पूजो। एक का उपकार करके पूजा है, दूसरे की अष्टद्रव्य से पूजा है।

भैया! बहुत कठिन है। जब तक मस्तिष्क में बहिरंग वस्तु रखी है, तब तक सत्य का बोध होता नहीं है। सत्य का बोध जिस दिन हो जायेगा, बाहर की सारी वस्तुयें गौंण हो जायेंगी। जो दुःखी प्राणी है, उस पर करुणा करना। जीवों पर कारुण्य बुद्धि रखना।

'माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ'। माध्यस्थ का अर्थ द्वेष नहीं है। माध्यस्थ का अर्थ राग-द्वेष से रहित होना है। पक्षपात का अभाव जहाँ है, इसका नाम माध्यस्थ भाव है। कोई जीव अविनयी है, जिनशासन के विरुद्ध काम कर रहा है, मोक्षमार्ग के विपरीत गमन कर रहा है, यदि मैं उसका साथ दूँगा तो विपरीतता का साथ कहलायेगा और यदि मैं उसके साथ द्वेष करूँगा तो रागी-द्वेषी हो जाऊँगा, तो क्या करना चाहिये? जो जिनशासन के विपरीत चलते हों, जो जिनशासन के विपरीत कहते हों, जिनशासन के विपरीत सोचते हों, ऐसे लोगों से माध्यस्थ भाव। भैया! मुझे आपका जीवत्वभाव स्वीकार है, इसलिये मेरी आपसे दुश्मनी नहीं है, लेकिन आपकी विपरीतता की पुष्टि तो मैं नहीं कर सकता, क्योंकि आवश्यक नहीं है कि जो आप सोच रहे हो वह सत्य हो। हाँ, ये अवश्य हो सकता है कि सत्य के अनुसार आपका सोच हो जाये। ज्ञानी! चिन्तन करना, उसको दोष मत देना। हे भगवन्! आवश्यक नहीं है कि जगत के प्राणी मेरे जैसा सोचें, जगत के प्राणी आगम जैसा सोचें। हे भगवन्! ऐसा हो जाये कि जगत के प्राणी सत्य को ही सोचें तो बहुत अच्छा होगा। घर में शत्रु आ जाये, तब भी शत्रु को दोष नहीं देना। इसका नाम धर्मात्मा है।

मैंने भइया को समझाया कि ऐसा मत किया करो। आप अच्छे से चला करो, वह फिर भी नहीं मानता है तो क्या करूँ? यथार्थ बताऊँ, मैं दुःखी फिर भी नहीं होऊँगा। मैं उसके बारे में अशुभ भी नहीं सोचूँगा। कहूँगा कि ये उसका दोष नहीं है, ये दोष मेरे कर्मों का है। मैं ऐसे काल में क्यों आया जो ऐसे लोग देखने को मिले। मैंने इतना क्षयोपशम क्यों नहीं प्राप्त किया कि मैं इसको समझा सकता। यदि मैं तीर्थंकर होता, केवली होता, तो कोटि-कोटि समझाने की सामर्थ्य रखता। लेकिन तब भी दोष नहीं है, क्योंकि तीर्थंकर भी नहीं समझा पायेंगे। समझा उसे ही पायेंगे, जिसका उपादान समझने लायक होगा। लेकिन उपादान समझने लायक होगा नहीं, उसे कोटि-कोटि तीर्थंकर भी समझा नहीं पायेंगे। आप समझा नहीं सकते हो, सुधार नहीं

सकते हो, आप बता सकते हो।

श्रीवीर आपने था उपदेश कोटिशः मुझे सुनाया।
पर धिक्कार मुझको, मैंने सुना न,
मानो सुना पर फिर भी गुना न।। (जैन गीता)

ये पंक्तियाँ सुनकर भी लोग स्वयं को न सुधार कर जगत को सुधारने बैठे हैं। मैंने सुना ही नहीं, सुन भी लिया, पर गुनने को समय नहीं था। एक बार भी गुन लिया होता तो गुन-ही-गुन दिखते। दुनियाँ में कभी औगुण दिखते ही नहीं। पर क्या करूँ? जिसको भगवान की वाणी से गुण नहीं हो पाया, उसको औगुण-औगुण ही दिखते हैं। सुनो भैया! दूध सबको नहीं पचता। दूध पचाने के लिए भी पुण्य चाहिये। दूध का मिलना पुण्य के उदय से होता है और दूध को पचाने के लिये भी पुण्य का उदय चाहिये।

भगवान् की वाणी दुग्ध नहीं, वो तो अमृत है। इस अमृत को पाने के लिए पुण्य चाहिये, पीने के लिए पुण्य चाहिये और पचाने के लिये भी पुण्य चाहिये। क्षीण पुण्यात्मा को अरिहन्त की वाणी पच नहीं सकती है। कुछ ऐसे पुण्यहीन आदमी हैं उनको दूध दिखाओ तो उल्टी होती है। हर कोई को दूध थोड़े ही पचता है। उनके पास दूध ले जाओ तो गला खिंचता है, उल्टी होती है। बस, तुम ऐसे-ही समझ लो कि जिस प्रकार दूध पीने में उल्टी हो रही है, उसी प्रकार पुण्यहीन को जिनवाणी सुनने में उल्टी क्यों नहीं होगी? उनको तो उल्टी-ही-उल्टी होगी। अपन पुण्यात्मा तो हैं, पर इतने अभागे जरूर हैं कि केवली भगवान नहीं मिल रहे, फिर भी इतने भाग्यवान् हैं कि केवली की वाणी सुन रहे हैं। मरीचि से तो अधिक भाग्यवान् हैं, इसमें शंका मत करना। जिसके सामने तीर्थंकर का साक्षात् सद्भाव था, तब भी बेचारा अभाव देखता रहा। हम ऐसे भाग्यवान् हैं कि हमारे पास भगवान् नहीं हैं, तब भी मेरी श्रद्धा में भगवान् हैं, इसलिये पुण्यात्मा हैं।

'सदा ममात्मा विदधातु देव' हे देव! कौन देव? व्यन्तर, भवनवासी, ज्योतिष्क, वैमानिक? नहीं। फिर कौन से देव? देवाधिदेव अरहन्त भगवान्। दुनियाँ के किसी देव को यहाँ मत पकड़ लेना। साधक प्रार्थना कर रहा है, भगवान्! मेरी आत्मा में वे गुण प्रादुर्भूत हो जायें। इन गुणों को मैं धारण करूँ। कौन से गुण? प्राणिमात्र में मेरी मैत्री हो जाये, गुणियों में प्रमोद आ जाये, दुःखी जीवों पर कृपादृष्टि बरसने लग जाये और विपरीत वृत्ति वालों के लिये मेरे अशुभ भाव न आयें, मैं मध्यस्थ हो जाऊँ। हे देव! ये गुण मेरे अंदर प्रवेश कर जायें।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।
महावीर भगवान की जय।

भावना द्वात्रिंशतिका

शरीरतः कर्तुमनन्त-शक्तिं , विभिन्नमात्मानमपास्त-दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्ग-यष्टिं, तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ।। 2 ।।

अन्वयार्थ-

(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्रदेव! (कोषात्) म्यान से (खड्गयष्टिं इव) तलवार के समान (अनंत शक्तिं) अनंत शक्ति वाले (अपास्त-दोषं) सर्व दोषों से रहित (आत्मानम्) अपने आत्मा को (शरीरतः) शरीर से (विभिन्नम्) विभिन्न (कर्तुम्) करने के लिए (तव) आपके (प्रसादेन) प्रसाद से (मम) मेरी (शक्तिः) शक्ति (अस्तु) हो।

सामायिक देशना

यहाँ पर आचार्यभगवान् कह रहे हैं- हे नाथ! मेरे अन्तस् में जो ध्रुवभाव ज्ञायकस्वभाव है, ये ध्रुव आत्मा ही मेरे लिए दृष्टिगोचर हो जाये। मैं अन्य कुछ भी नहीं चाहता हूँ। जैसे तलवार भिन्न है और म्यान भिन्न है। जैसे तलवार को म्यान से भिन्न देखते हैं, वैसे ही देखने में आने लगे कि ये ध्रुव आत्मा शरीर से भिन्न है। सम्पूर्ण दोषों से रहित अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न करने के लिये आपके प्रसाद से मेरे अन्दर वो शक्ति प्रकट हो जाये जिससे मैं अपनी आत्मा को अपनी देह से भिन्न निहारूँ। जब मेरी देह ही मेरी नहीं है, तो जगत की देह मेरी कहाँ से हो सकती है?

ज्ञानियो! आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी आत्मा के भूतार्थ गुण का व्याख्यान करते हुए परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं- हे परमेश्वर! जगत में माँगने वाले अनन्त हुए हैं, परंतु उन्होंने भिखारी बनकर माँग की है। भिखारी बनकर माँग वही करता है, जिसका मन विकारी होता है और जिनका मन विकारी होता है, वे यथार्थ में भिखारी बनते हैं। हे परमेश्वर! मैं आपसे धन नहीं माँग रहा हूँ, भवन नहीं माँग रहा हूँ, कुटुम्ब-परिवार की याचना नहीं कर रहा हूँ। आपके पादमूल में यही भावना भाता हूँ कि हे देव! मुझे ऐसे प्रशस्त भाव प्रदान करो कि सारे जगत के प्राणियों पर मेरी मैत्री हो, दुःखी जीवों पर करुणा हो, गुरुओं को देखकर मेरा मन-मयूर नाच उठे, प्रमोद भाव हो। नयनों की अभिव्यक्ति और शरीर का उत्साह/तेज, ये अन्दर के प्रमोदभाव का सूचनापटल है। मुख का प्रसन्नचित्त होना अंतरंग के प्रमोदभाव के उद्घाटन का स्थान है। संवेगभाव होगा, प्रमोद भाव होगा तो सहज ही जीव का चेहरा दमकना प्रारंभ हो जायेगा। बिना खाये, बिना पिये भी चेहरा चमकता है। ज्ञानी! कोई रहस्य है, इसके अन्दर में प्रमोदभाव है। धर्मात्मा को देखकर भरपेट भोजन करने के उपरांत भी भीतर चेहरे में

फीकापन है तो इसका तात्पर्य है कि अंतरंग में कालुष्य भाव है। दर्पण चेहरे को दिखाता है, चेहरा आत्मा के परिणाम को दिखाता है। भीतर क्या-क्या हो रहा है, सब-कुछ दिखाई देता है।

'गुणिषु प्रमोदं' गुणीजनों को देखकर प्रमोद के भाव आ जाएँ। हे देव! मुझे ये भावनायें प्राप्त हों। मैं आपसे और-कुछ भी नहीं चाहता हूँ। ज्ञानी! कुछ दिये अनन्त मिलता है तो उसे क्यों छोड़ते हो? यथार्थ मानिये, घर में आये पुरुष का सत्कार करोगे तो खर्च होगा, भोजन पानी कराना पड़ेगा, परन्तु घर में आए अतिथि को देखकर चेहरा प्रमुदित हो गया, कुछ भी करना नहीं पड़ेगा और सब कुछ तुझे मिल जायेगा।

एक सम्यग्दृष्टि जीव दूसरे सम्यग्दृष्टि जीव को देखकर ऐसे प्रमुदित हो उठता है जैसे जंगल से आयी गाय रँभाते रँभाते अपने बछड़े को चाटना प्रारंभ कर देती है। जैसे-ही मकान के पास गाय आती है, उसकी चाल बढ़ जाती है और बछड़े के राग में आकर गाय दौड़कर पहुँचती है। जबकि गाय को बड़ा कुछ देने वाला नहीं है, गाय से बछड़ा सब-कुछ लेने वाला है। गाय को बछड़ा क्या देता है? गाय तो आँचल का पान करा रही है। वैसे-ही धर्मात्मा को देखकर गाय-बछड़े जैसी परिणति बन जाये तो समझ लेना कि मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। धर्मात्मा को देखकर यदि आँखें बंद होने लग जायें, तो समझ लेना कि मिथ्यादृष्टि हूँ। किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है, ये तो अपने भीतर का विषय है। निरपेक्ष भाव से धर्म-धर्मात्मा को देखकर हर्षित भाव आ रहा हो, बिना किसी के कहे, बिना किसे के समझाये, तो समझ लेना कि मेरे अंदर सम्यकत्व का अंकुर है। जैसे ही धार्मिक कार्य होते दिखे, कोई धर्मात्मा दिखे और तुम्हारे अंतरंग भाव कलुषित होना प्रारम्भ हो जायें, तो किसी से मत कहना कि क्या हो रहा है? अंतरंग में समझ लेना कि दुर्गति का बन्ध हो गया, मेरी मिथ्या परिणति चल रही है। मैं मन में हर्ष लाना चाह रहा हूँ, तब भी मेरे में नहीं आ रहा है। इसका तात्पर्य क्या है? हे भगवान्! नियम से मेरी अशुभ आयु का बंध हो गया है। नरकायु का बंधक जीव दिगम्बर मुनि के हाथ में ग्रास नहीं रख सकता है, तीर्थराज सम्मेदशिखर जी वन्दना नहीं कर सकता है।

'सम्मेदशिखर माहात्म्य' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि राजा श्रेणिक को भ्रम हो गया कि मैं तो वंदना करके ही आऊँगा। वह चल दिया। मधुबन की सीमा में पहुँचते ही उसकी आँखों की ज्योति चली गई। शिखर जी नहीं जा सका, लौटकर वापस आ गया। ''नान्यथा मुनि भाषणं'' मुनि के वचन अन्यथा नहीं होते। अरिहन्त- जैसे महायोगीश्वर ने जो कहा हो, वे वचन अन्यथा कैसे हो सकते हैं? जैसे गाय रँभाती है अपने बछड़े के लिये, ऐसे ही तुम धर्मात्मारूपी बछड़ों के लिए रँभाना। आज मिलना है तो मिल लो, कल कौन कहाँ होंगे,

निश्चित नहीं। किसकी पर्याय कब छूट जायेगी और कहाँ जायेगी? तुम संसार में रह ही रहे हो तो साधु बनकर रहो और साधु बनकर रहोगे तो विश्वास रखना, सिद्धशिला पर मिलोगे और असाधु बनकर रहोगे तो निगोद में ही मिलोगे, और-कहाँ मिलोगे?

आचार्य अमितगति स्वामी दूसरे छन्द में परमात्मा की आराधना करते हुए भावना भा रहे हैं। सामायिक चल रही है। सामायिक तो तभी चलती है जब प्राणिमात्र के प्रति साम्यभाव हो। उपेक्षा भाव को सीख लेना। कोटि ग्रन्थ भले ही न पढ़ पाओ, परन्तु उपेक्षा भाव मात्र सीख लो। उपेक्षा के बिना जीव पागल हो जाएगा। उपेक्षा ही इस जीव को सुरक्षित रखे है। आपके घर में कोई कष्ट के दिन आ जायें तो घर का वातावरण कैसा महसूस होता है? भैया! जहाँ देखो वहाँ आँखों के सामने अंधकार दिखाई देता है। मंदिर में पहुँचो, तब भी वही दृश्य दिखाई देता है। गुरु के पास पहुँचो, तब भी वही दृश्य दिखाई देता है। हे ज्ञानी! एक घर में विषमता आने पर तेरा जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है, यदि तू संसार के सभी घरों के बारे में चिन्तन करना प्रारंभ कर देगा तो तेरी क्या दशा होगी? तेरी मनुष्य आयु/मनुष्यपर्याय पर-घर को देखकर रोने के लिए है क्या? अपनी मनुष्यपर्याय का आनंद कब लूटेगा? ज्ञानी! पर के दुःखी होने पर निज को पर के दुःख मिटाने के पुरुषार्थ में तो लगाना, लेकिन निज को दुःखी करके पर के दुःख मिटाना अज्ञानता है। यदि सामर्थ्य है तो पर का दुःख तो मिटाना चाहिये, लेकिन पर के दुःख में दुःखी हो जाना ज्ञानी का काम नहीं है, ये अज्ञानी का काम है। ज्ञानी पर के दुःख मिटाता है, परंतु दुःखी नहीं होता, क्योंकि दुःखी होना असातावेदनीय कर्म के आस्रव का कारण है। भैया! एक बात बताऊँ, यदि मैं सारे जगत के लोगों को देखकर चेहरा बनाना प्रारंभ कर दूँ, तो विश्वास रखना, मुनि का चेहरा तो बचेगा ही नहीं, क्योंकि इतने दुःखी जीव आते हैं वे जो बात कहीं नहीं कर सकते हैं, वे गुरु से ही कहेंगे। लेकिन गुरु को श्री जी की चौकी के सामने रखी चौकी के समान होना चाहिए। चौकी के ऊपर ढेर सारी द्रव्य चढ़ती है, लेकिन चौकी उसमें से एक दाना भी नहीं रखती है। ऐसे- ही, हे गुरुदेव! दुनियाँ के दुःख को सुन लेना, परंतु उनके दुःखों से एक दाने प्रमाण भी दुःखी मत होना। यदि तुम दुःखी हो गये तो मुनि और रागी/भोगी में अन्तर क्या होगा? दुःखी मत होना, यही साधना है।

चौकी पर चाहे तू मोती चढ़ा जा, चाहे हीरा चढ़ा जा, चौकी को उससे कोई प्रयोजन नहीं रहता। ऐसे ही चाहे कोई पुष्प चढ़ाये, चाहे तलवार से वार करे, तब बी योगी के मन में खिन्नता लेशमात्र भी न आये, इसका नाम साधुहृदय है। भैया! पहले आप भगवान् से मुनि बनने की भावना नहीं भाना, पहले आप मुनिमन लाने की भावना भाना।

मुनिमन को जीवन्त रखना। हे प्रभु! मुझे मुनि का मन चाहिये। चौबीसी पूजाकार को न गंगा का पानी अच्छा लगा, न क्षीरसागर अच्छा लगा। वो क्या लिखता है? 'मुनिमन सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा'। जब भी मन विचलित हो, मुनि को ये पंक्तियाँ पढ़ना चाहिए। धन्य हो उस कवि की उपमा को, जिसने जगत के किसी सरोवर के पानी की उपमा नहीं दी, मानसरोवर तक की उपमा नहीं दी। 'मुनिमन सम उज्ज्वल नीर'। हे नाथ! जैसा मुनि का मन है, जिसमें राग का शैवाल न हो, जिसमें द्वेष के जलचर जीव न हों, जिसमें वासनाओं की वास न आती हो, कामनाओं की दुर्गन्ध न आती हो, ऐसा पवित्र मुनि का मन है। हे नाथ! ऐसा नीर आपके चरणों में लाया हूँ। मुनि का मन चाहिए। मुनि का मन प्राप्त हो जाये, यह तभी संभव है जब उपेक्षा भाव आ जाये।

अज्ञाननिवृत्तिः हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्।।5/1।। (परीक्षामुखसूत्र)

प्रमाण का फल क्या है? ज्ञान का फल क्या है? बहुत से शास्त्र पढ़ भी लिए लेकिन ज्ञान के फल पर दृष्टि नहीं गई। मुमुक्षु! हान, उपादन, उपेक्षा इन तीन बातों पर ध्यान दो। अल्प ज्ञान ही क्यों न हो, लेकिन निर्मल हो। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में कहा है,

भयाशास्नेहलोभाच्च, कुदेवागम लिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः।।30 ।। (र.क.श्रा.)

सम्यग्दृष्टि जीव भय, स्नेह, आशा, लोभ के वश होकर कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु को न प्रणाम करता है, न विनय करता है। ये कथन शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव के लिये था, हमारा ज्ञानी कहने लगा कि हमको तो महाराज जी अच्छे लगते हैं, इसके अलावा अन्य को स्नेहवश न प्रणाम करना, न विनय करना। हे ज्ञानी! इसका ये अर्थ नहीं है, अनर्थ हो जायेगा। देव, कुदेव की परिभाषा समझनी होगी। गुरु-कुगुरु की परिभाषा समझिये और जो परिभाषा से घटित हो रहा है, उन्हें स्वीकार कीजिये।

हान, उपादान, उपेक्षा। आप सोचते होंगे कि क्या शब्द बोलते रहते हैं महाराज? हे ज्ञानी! ये दोष मेरा नहीं है, ये दोष तेरा है। तूने आज तक आगम के शब्दों को सुनने का प्रयास ही नहीं किया, न कहने का प्रयास किया। हरी भाषा का प्रयोग किया है, वही आपको समझ में आती है। आगम की भाषा का एक-एक वर्ण अभिमंत्रित मंत्र है। सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, मूलाचार, देवागम स्तोत्र, परीक्षामुख, प्रमेयकमलमार्तण्ड ये सभी ग्रन्थ एक ही बात कह रहे हैं- हान, उपादन, उपेक्षा।

कुण्डलपुर में जब पहलीबार भगवान के दर्शन किये तो ऐसा लगता था कि भगवान कुछ कह रहे हैं। पहली वंदना के वे दर्शन आज तक दर्शन दे रहे हैं। एक बगल में पारसनाथ, दूसरी तरफ भी पार्श्वनाथ। चारों ओर भगवान ही भगवान दिखाई दे रहे हैं। भोयरे में उतर रहे हैं, वंदना हो गई। हे ज्ञानी! भगवान् के प्रथम दर्शन। जब आपकी शादी होने जा रही थी, बारात पहुँच चुकी थी द्वार पर, देवी का प्रथम दर्शन। संसार की वधू का प्रथम दर्शन, बोल नहीं पाये, एक दूसरे से बतिया नहीं पाये, बस, देखा ही था और कुछ हो चुका था। प्रथम दर्शन। ज्ञानी! आँखों-आँखों से कोई बात करते देख ले, वो अनुभूति जीवन में बात करने पर भी नहीं आयेगी। गौतम स्वामी से पूछो- हे गौतम! जब तुम थे घोर मिथ्यादृष्टि और वर्द्धमान के समवसरण में किया था आपने प्रथम दर्शन और प्रथम दर्शन से हो गया था सम्यग्दर्शन। सर्वार्थसिद्धिकार आचार्यभगवान् जिनेन्द्रबुद्धि; जिनेन्द्रदेव की बुद्धि जिनको प्राप्त हो, ऐसे पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं-

''मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं''

मुमुक्षु आत्माओ! वीतराग दिगम्बर मुनिराज कहीं दिखाई दे जायें तो उनसे कुछ भी प्रश्न नहीं करना, बिल्कुल बात नहीं करना। उनसे सीखना चाहो तो उपदेश की आवश्यकता नहीं है। उस योगी का तो शरीर ही मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहा है। रत्नत्रय, निर्ग्रन्थता ही मोक्षमार्ग है, जो सामने दिख रहा है।

ण वि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।

णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे ।। 23।। (सुत्त पाहुड)

विश्वास रखो, जीवन की अंतिम श्वास के समय ये सूत्र याद आ गया तो नियम से तेरा समाधिमरण होगा। 'नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं।' जैसे-ही यह सूत्र याद आयेगा, वह विचार करेगा कि मैंने कितनी भूलकी, सारी पर्याय को भोगों की कि बलिपीठ पर बलिदान कर दिया। यदि नग्नता को प्राप्त हो जाता, निर्ग्रन्थता को प्राप्त हो जाता, तो आज मैं भगवान् हो जाता।

मुमुक्षु! तुम मुनि बन सको या न बन सको, ये आपके चारित्रमोहनीय कर्म का प्रभाव है। जब घटेगा, तब बन जाना, लेकिन श्रद्धान तो आज ही करना पड़ेगा कि जब भी मोक्ष मिलेगा नग्नता से ही मिलेगा। ये कुन्दकुन्द स्वामी के शब्द हैं। जिनशासन में तीर्थंकर भगवान् भी क्यों न हों, वे भी कपड़े पहने-पहने मोक्ष नहीं जा सकते। जिस समाज को अकलंक-जैसा योगी मिला हो, कुन्दकुन्द जैसा महात्मा मिला हो, समन्तभद्र जैसा तार्किक मिला हो और विद्यानन्दि

जैसा अष्टसहस्रीकर्त्ता मिला हो, उस समाज में दरिद्रता किस बात की? हमारे आचार्य इतने निस्पृह रहे हैं कि उनको ख्याति-पूजा से कोई प्रयोजन नहीं था। नाम ही, संज्ञा ही संज्ञान का नाश कराती है। ज्ञानी! आहार, भय, मैथुन, परिग्रह इन चार संज्ञाओं की तो सीमा है, ये तो शरीर के कमजोर होने पर शान्त हो जायेंगी, परन्तु नाम संज्ञा इतनी खोटी होती है कि अंतिम श्वासों तक सताती है कि मेरा नाम हो जाये। ये जीव को हिला देती है। इस जीव ने जितना नाम के लिए किया है, उसका सौवाँ अंश भी काम के लिए कर लेता तो नाम तो हो ही जाता और ज्ञानी कर्मातीत भी हो जाता।

भैया! जब एक जीव वस्त्र उतार कर बैठ जाये तो उसकी 'नमोऽस्तु' होना प्रारंभ हो जाती है, पिच्छि-कमण्डलु आते ही जय-जयकार होने लगती है। हे चारित्र! तेरी वंदना हो। तेरा नाम लेते ही रोमांच होने लगता है। जब द्रव्य-लिंग धारण करने से अष्टद्रव्य से पूजा को प्राप्त हो रहे हो, यदि भावलिंग धारण कर लोगे तो अष्टम वसुधा पर ही पहुँच जाओगे।

हेय, उपादेय, उपेक्षा। जो अग्राह्य है, वह हेय है। जो ग्राह्य है, वह उपादेय है और ऐसे द्रव्य भी हैं जो न हेय हैं, न उपादेय हैं, तो उनमें उपेक्षा। जगत के लोगों को देखकर आँख में आँसू लाओगे तो तेरी आँख ही नहीं बचेगी। जानना सीखो। ज्ञान का फल है- ग्राह्य को ग्रहण करना, अग्राह्य को छोड़ देना, जो बीच के हैं उनकी उपेक्षा करना। तभी तुम मुस्कराकर रह पाओगे। यदि आप सारे जगत के दुःखों को देखकर रुदन करोगे, तो कभी मुस्कराकर नहीं रह पाओगे। शहर में किसी के घर कभी मंगलाचरण होते हैं तो कभी रुदन होता है। इन दोनों समय में जीव सामान्य नहीं रह पाता है। इसलिये सिद्धान्तग्रन्थों का वाचन नहीं किया जाता। सिद्धान्त गंभीरता में पढ़ा जाता है, नहीं तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा।

अधिक लाभ मिलने वालों का भी हृदयाघात (हार्टफेल) होता है। जिसे तू हर्ष कहता है, आगम उसे संक्लेशता कहता है। एक हर्षरूप संक्लेशता है, दूसरी विषादरूप संक्लेशता है। हृदयघात दोनों में होता देखा गया है। किसी दरिद्र को अचानक बहुत धन मिल जाये तो वह सहन नहीं कर पाता। बहुत बड़े धनी को अचानक बड़ा घाटा लग जाये तो वह भी सहन नहीं कर पाता। ये उपेक्षा क्यों की जा रही है? धन तेरी आत्मा का स्वभाव कितने अंश में है? नहीं है, परभाव है। तो परभाव में उलझकर अपने स्वभाव को क्यों खो रहा है? रोना अच्छी बात नहीं है, हँसना भी अच्छी बात नहीं है। जहाँ तूने किसी को देखकर जरा-सा हँस दिया, उसी दिन अनर्थ हो जायेगा। धर्मात्मा को देखकर प्रमुदित भाव होना चाहिये। हँसना अच्छी बात नहीं है।

एक भैया बोल रहा था- महाराज! इतना जबरदस्त बोलोगे तो कोई मुनि बनने की हिम्मत नहीं करेगा। हमने कहा- ज्ञानी! सुन। इतना जबरदस्त सुनकर जो मुनि बनेगा, वह सच्चा मुनि बनेगा। 'महाराज तो बोले जा रहे हैं, हम लोग जियेंगे कैसे?' अरे ज्ञानी! जैसे कुन्दकुन्द जिये, जैसे समन्तभद्र जिये, ऐसा जियो तो जीना सुख है। मृदुल चर्या में जिये तो क्या जिये? समन्तभद्र स्वामी जिस गली से निकल जाते थे वो गली स्याद्वादमयी हो जाती थी। अनेकान्त सिद्धान्त गूँजता था। ज्ञानी! बनो तो ऐसे बनो कि जहाँ पहुँचो वहाँ स्याद्वाद गुंजायमान होने लग जाये, गली-गली में गूँजने लग जाये।

''नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्र-मुद्राङ्कितम्''

लोक में नाना जीव को नाना भेष बनाना पड़ते हैं, मुद्रायें बनानी पड़ती हैं, लेकिन हे वर्द्धमान! आपकी मुद्रा लोक में अलौकिक है। इस जगत में नग्नता ही जिनेन्द्र की मुद्रा है। अन्य कोई वस्त्र धारण करना जिनेन्द्र की मुद्रा नहीं है। जिससे वस्त्रों का राग नहीं छूटा, व्यसनों का राग नहीं छूटा, उसकी वासनाओं का राग क्या छूटेगा? जिनको पिच्छि, कमण्डलु और जिनमुद्रा पर श्रद्धान है, वो मुमुक्षु है। जो पिच्छि-कमण्डलु धारण किये है, वह तो मुमुक्षु है ही, परंतु जो पिच्छि-कमण्डलु धारण करने वाले पर आस्था रखता है, वो भी मुमुक्षु है क्योंकि बिना मोक्ष की इच्छा के जिनमुद्रा के साथ कौन चल सकता है? मुझे तो सभी भगवानात्मा दिखते हैं। आपको क्या दिखता है? आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी को तो निगोदिया में भगवान् दिखते थे। तुमको इनमें भगवान् नहीं दिखते क्या?

''कर्मोपाधि-निरपेक्षः शुद्ध-द्रव्यार्थिकः,
यथा संसारी-जीवः सिद्ध-सदृक्-शुद्धात्मा''।।47।।

(आलाप पद्धति)

कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से सम्पूर्ण संसार के जीव सिद्ध के समान सिद्धात्मा हैं।

हे नाथ! हे जिनेन्द्र! जैसे तलवार म्यान में है, म्यान तलवार नहीं है, ऐसे ही आत्मा देह में है, देह आत्मा नहीं है। आत्मा भिन्न है, देह भिन्न है। तो आत्मा क्या है? शुद्धोहम् बुद्धोऽहम्।

मल-रहिओ, णाणमओ, णिवसई सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो, परमो बंभो मुणेयव्वो ।। 26।। (तत्त्वसार)

मन से रहित, ज्ञानमयी जैसा परमब्रह्म सिद्धालय में विराजमान है, वैसा ब्रह्म इस देहदेवालय में विराजा है, उसका नाम आत्मा है। मंदिरों में विराजे देव तो पाषाण में उपचार के

भगवान हैं और देह-देवालय में विराजे भगवान् शक्तिमान भगवान् हैं। मंदिर के भगवानों को पूजना और अन्दर के भगवान् से पूछना कि हम तुम्हें कैसे निकालें? उनके दर्शन तो खुली आँखों से होते हैं और तुम्हारे दर्शन बन्द आँखों से होते हैं। मंदिर के भगवान् तो खुली आँखों से दिख जायेंगे, परंतु अंदर के भगवान् तो बन्द आँखों से ही दिखाई देते हैं। श्रावक बनना, साधु बनना, बस उद्देश्य मात्र इतना रखना कि अन्दर विराजे भगवान को निकालना है। छैनी हथौड़ा लेकर शिल्पकार बनना है। ओहो! अद्भुत है शिल्पकार की द्रव्यदृष्टि दुनियाँ जिसे पाषाण देखती है, शिल्पकार उसमें प्रतिमा को देखता है और जिसमें शिल्पकार प्रतिमा को देखता है, उसमें भक्त परमात्मा को देखता है। शिल्पकार की ताकत प्रतिमा मात्र को बनाना है, पर भक्त की ताकत प्रतिमा को भगवान् बनाना है। जब पाषाण में प्रतिमा को देखना जानते हो तो, ज्ञानियो! निज ध्रुव आत्मा में परमात्मा को क्यों नहीं देखते हो? तेरा भगवान् तेरे भीतर है, तू भटकता बाहर है। बोले - महाराज! अब कल से मंदिर नहीं जायेंगे। नहीं-नहीं पहले एकबार जाते थे, अब दस बार जाना। क्यों जाना? इसलिए जाना कि जब तक बने हुए भगवान को नहीं देखेगा, तो भगवान कैसे बना जाता है इसे जानोगे कैसे? इसलिए भगवान को देखकर आना और बननेवाले भगवान को बना लेना, इसीलिये भगवान को देखने जाना।

म्यान तो म्यान है और तलवार ही तलवार है। म्यान में तलवार है, देह में देही है। परन्तु देह देही नहीं है। द्रव्यानुयोग भी कितना विशाल है। आपने इष्टोपदेश, समयसार सुना, आप सोचते होंगे कि पूरा हो गया। नहीं, ज्ञानी! अभी बहुत अवशेष है। द्रव्यानुयोग पूड़ी नहीं, रोटी है रोटी। पूड़ी खाकर एक दिन में ही अघा जाता है और रोटी प्रतिदिन खायेगा तब भी अघाता नहीं है। द्रव्यानुयोग शुद्ध अंगारे की रोटियाँ हैं, रोज खाओ तब भी रोज अच्छी लगती है। द्रव्यानुयोग कभी पूरा होता ही नहीं है। वह तो पूरा तब होगा जब तेरी ध्रुव आत्मा परमात्मा बन जायेगी।

हे प्रभु! आपके प्रसाद से मुझे सम्पूर्ण दोषों से रहित आत्म-शक्ति प्राप्त हो जाये। क्या माँग रहे हैं? अपनी निधि माँग रहे हैं। आपने आज तक भगवान से क्या माँगा? लड़का हो जाये, लड़की हो जाये। क्या पागलों-जैसी भीख माँग रहे हो? भगवान से माँगो तो वो माँगो जो उसके पास है। जिसके पास जो हो, उससे वो माँगना चाहिये। महाराज के पास गये, बोले, महाराज! आशीर्वाद दे दो, कारखाना अच्छे से चलने लग जाये। अरे ज्ञानी! तू किनसे कह रहा है? इनसे चलाते बनता होता तो स्वयं छोड़कर क्यों चले आये? महाराज से पूछो तो ये पूछो कि महाराज! साँची-साँची, बताओ। घर से कैसे निकलना पड़ता है?

अब समझो 90-95 वर्ष तक कुन्दकुन्द स्वामी ने क्या किया होगा? श्रुत के आनंद में लीन रहे होंगे। ध्रुव सत्य है कि जिसके अंदर ज्ञानधारा उतर आये चारित्रधारा के साथ, तो उसका चेहरा चौबीसों घंटे प्रमुदित रहेगा। जिसका भीतरी ज्ञान खोखला है, वह बेचारा दुनियाँ में साँप-जैसा मुँह पटकेगा। जब साँप को बाँमी नहीं मिलती है, तो दीवारों पर सिर पटकता है। ऐसे-ही निर्ग्रन्थ मुनि बनकर स्वात्मानुभूति की बाँमी नहीं मिली तो ज्ञानी भवनों में मुख पटकेगा, लेकिन निजस्वरूप में लीन नहीं हो पायेगा। सामायिक करूँ तो कैसे करूँ? अमितगति स्वामी सामायिक का स्वरूप कह रहे हैं।

दुःखे-सुखे वैरिणि-बन्धुवर्गे, योगे-वियोगे भवने-वने वा।
निराकृताऽशेष-ममत्व-बुद्धेः, समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ ।।3।।

वह परम योगी परमात्मा से क्या भावना भा रहा है? हे नाथ! जगत के नाना रूपों को, नाना वचनों को बिना पढ़े ही सीख रखा है, लेकिन आज आपके पादमूल में ये भावना भाता हूँ- हे नाथ! जगत के समस्त द्रव्यों से ममत्वबुद्धि हटाता हूँ।

''ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिं उवसंपज्जामि।''

ये प्रतिक्रमण-सूत्र है जो परम्परा से प्राप्त है, किसी आचार्यकृत नहीं है। गौतम स्वामी कृत है, ऐसा प्रभाचन्द्र स्वामी ने कहा है। आगम का आलोडन करोगे तो आगम भाषा में देवी सरस्वती गूँजेगी, विश्वास रखना।

राग की महिमा देखो- यदि झाड़ी में चामरी गाय की पूँछ का एक भी बाल फँस जाये और सामने शिकारी धनुष-बाण लेकर खड़ा भी हो, तब भी वह बाल के राग में भागती नहीं है कि कहीं बाल न टूट जाये। बाल के राग में प्राण गँवा देती है। ऐसे-ही अपने हृदय से पूछो कि कितना ममत्व सता रहा है- चाहे वीतराग धर्म छूट जाये, लेकिन मेरी गृहस्थी न छूटे। हे नाथ! मेरी सम्पूर्ण वस्तुओं से ममत्वबुद्धि समाप्त हो जाये। जिस दिन दुःख-जैसा सुख दिखने लग जाये, उस दिन समझ लेना कि अब मैं मुनि बनने लायक हो चुका हूँ। जब तक तुम्हें दुःख और सुख में अन्तर दिखाई देता है, तब तक मुनियों की भक्ति करके घर में रहना और जिस दिन सुख-दुःख का अन्तर एक हो जाये, तो उसी दिन मुनि बन जाना। एक ने मुनिराज के गले में मरा हुआ नाग डाला, दूसरे ने नाग निकाला और जब नमोऽस्तु किया तो दोनों को बराबर का आशीर्वाद दिया। इसी का नाम वीतरागता है।

''अर्घावतारण असि प्रहारण में सदा समता धरन।'' ओ हो ! क्या अद्‌भुत मुनि का मन

है? एक नाग डाल रहा है, दूसरा नाग निकाल रहा है, परंतु उनकी दृष्टि में क्या है? डाला है कषाय ने, निकाला है वात्सल्य ने, परन्तु द्रव्य तो दोनों विरुद्ध हैं, फर भी आशीर्वाद बराबर है। बहुत कठिन है, बहुत कठिन है। मैं बार-बार कहता हूँ कि पर्वत को सिर पर रखकर फेंक आना सरल है, लेकिन परिणामों को सबके प्रति एक बनाना कठिन है।

चाहे बैरी हो, चाहे संगी हो, चाहे संयोग हो, चाहे वियोग हो, चाहे भवन हो, चाहे वन हो, हे नाथ! इन सबमें मेरा मन साम्यरूप हो जाये। बस, मैं आपसे इतनी प्रार्थना करता हूँ और आपसे कुछ भी नहीं चाहता हूँ। घर जाकर अभ्यास करना। परिवार की प्रताड़नायें जो सहन करना सीख लेगा, अपने बेटे की गाली सुनने में जिस दिन तुमको शांति आ जायेगी, उस दिन मुनि बनने के पात्र हो जाओगे, क्योंकि बेटे की गाली जो चुभती है, शत्रु की नहीं चुभती।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

अहो हंसात्मन् !
एक ध्रुव को
जानो
उसे ही
पहिचानो
उसे ही
मानो
अन्य तो
अन्य हैं
अन्य उनन्य नहीं
जो एक को जानता है
वह सबको जानता है।

- आ. विशुद्धसागर मुनि
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
जीवन-मरण
लाभ-दुःख
शरीर-वचन-मन
ये सब पुद्गलकृत हैं परिणमन
ये नहीं है जीव का शुद्ध स्वभाव
उन्हें होने पर भी
नहीं करता योगी
मन उदास
रखता है साम्यभाव
वही है सामायिका

- आ. विशुद्धसागर मुनि
(स्वानुभूति)

भावना द्वात्रिंशतिका

दुःखे-सुखे वैरिणि-बन्धु-वर्गे, योगे-वियोगे भवने-वने वा।
निराकृताऽशेष-ममत्व-बुद्धेः, समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ।।3।।

अन्वयार्थ- (नाथ) हे स्वामिन्! (निराकृताऽशेष ममत्वबुद्धे) समस्त परपदार्थों से ममत्वबुद्धि को दूर करने वाले ऐसे (मे मनः) मेरा मन (दुःखे) दुःख में (सुखे) सुख में (वैरिणि) शत्रु में (बन्धुवर्गे) वन्धुवर्ग में (योगे) संयोग में (वियोगे) वियोग में (भवने) भवन में (वने वा) और वन में (सदा-अपि) सदा ही (समम्) समान (अस्तु) रहे।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी तीर्थंकर भगवान के पादमूल में अपनी प्रशस्त भावना भा रहे हैं। हे प्रभो! गतियाँ अनन्त प्राप्त कीं, लेकिन एक बार भी सुगति प्राप्त नहीं हुई। सुगति प्राप्त हो गई होती तो आज पंचमकाल में न होते। इसमें शंका नहीं करना। बहुत बड़ी बात ये है कि ऐसे खोटे काल में अपनी बात सुनने को मिल रही है। श्री का मिलना इतना महान नहीं है, श्री जी की वाणी मिलना महान है। अमितगति स्वामी अन्तस् में बैठ करके परमात्मा की आराधना कर रहे थे। सारे जगत की भूमि के गड्ढों को समतलीकरण कर लेना सरल है। यदि किसी की जमीन के सामने गड्ढा होता है तो वह तुरन्त भर करके सम कर लेता है। ऐसे ही हमारे भावों में जो कषायों के गड्ढे पड़ रहे हैं, ये समकरण हो जायें। यदि भवन के सामने के गड्ढे में गिर भी गये, तो मात्र शरीर की हड्डियाँ ही टूटेंगी, लेकिन यदि कषाय के गड्ढे में गिर गये तो भगवान आत्मा की दुर्गति हो जायेगी। इन गड्ढों का समकरण कर लेना।

शरीर के साथ रहने के लिये एक भवन बनाया है, उस भवन को कितने अच्छे से बनाकर रखा है। चैतन्यभवन में त्रैकालिक रहना है। भैया! विश्वास रखना, जिस भवन में आप रह रहे हो, उस भवन से तो आपको जाना पड़ेगा। अब चाहे आपको अच्छा लगे या बुरा। जो है, सो है। इस भवन से तो जाना पड़ेगा। इस भवन में बहुत समय तक नहीं रह पाओगे। जन्म तो झुपड़िया में हुआ था और मरण के लिए खण्ड-पर-खण्ड बना रहा है। बेटे से पूछना, मेरे लाल! तू इतना तो बता दे, मैंने तेरे लिए मकान-पर-मकान बना दिए, इसमें कौन-सा कोना होगा जिसमें तू मेरे शरीर का अंतिम संस्कार करा देगा? बेटा कहेगा कि मुझे इसमें रहना है, इसको मरघट मत बनाओ। जितनी जल्दी-से-जल्दी बने इसे ले जाओ। भवन बनाये तो जा सकते हैं, पर विश्वास रखना, जिस भवन को तूने स्थापित किया है, उस भवन में तेरा बेटा तेरे संस्कार के लिये एक खूँट भी नहीं देगा।

अमितगति स्वामी कह रहे हैं- हे नाथ! सुख में, दुःख में। ध्यान दो, **सुखोदय भी होता है तो कर्मोदय से होता है और दुःखोदय भी होता है तो कर्मोदय से होता है।** संसार में कर्म मेरी आत्मा का धर्म नहीं होता है। इसलिये सुख मेरी आत्मा का धर्म नहीं है, दुःख भी मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। आत्मधर्म जो है, वह आत्मा का धर्म ही है। इन्द्रियसुख भी मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। बस, यह निर्णय जिस दिन हो जायेगा, उस दिन जगत में आपको कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं होगी, घर में ही आपको वैराग्य हो जायेगा। वैराग्य जब भी होता है तो घर में ही होता है। वैराग्य मंदिर में नहीं होता है, मंदिर में तो भक्ति होती है। घर में वैराग्य होगा, तभी तो वन में जायेगा। वन में वैराग्य होगा तो क्या घर आयेगा? जो वस्तु राग में लीन कर रही थी, वही वस्तु दूसरे क्षण वैराग्य में बदल जाती है। क्या सोच रहे हो? चाहे वन में हो, चाहे भवन में हो, लेकिन बनना है तो निज में ही जाना होगा। जिस जीव की दृष्टि है कि मैं जंगल में जाकर ध्यान करूँगा, भवन में बैठकर ध्यान करूँगा तो अभी तुम धर्म से दूर हो। ग्राम और अरण्य में जिसकी दृष्टि चल रही हो, वह आत्मधर्म से शून्य है। एक ज्ञानी बोलता है कि मुझे आत्मा का कल्याण करना है। मैंने पूछा- कैसे करोगे? तो बोला- आत्मा का ध्यान करूँगा। मैंने कहा- करो ना? तो बोला- महाराजश्री! अभी मैं ध्यानकेन्द्र बना रहा हूँ। हे ज्ञानी! मतलब क्या हुआ? तो बोला- बढ़िया सुन्दर-सा एक भवन बनाऊँगा। उसका नाम रखूँगा 'ध्यान-केन्द्र'। उसमें बैठकर ध्यान करूँगा। अरे मुमुक्षु! कहाँ भ्रम में पड़ा है? कब ध्यान केन्द्र बनेगा? कब तू बना पायेगा? कहीं तू ही मिट गया तो ध्यान करने कौन आयेगा? अरे! जहाँ बैठ जाये, वही ध्यानकेन्द्र है। विचार, ध्यानकेन्द्र बना रहा है और केन्द्र में नहीं है। केन्द्र में चला जा, तो केन्द्र बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। ज्ञानी! तू कह रहा है कि मैं तो भवन बनाकर ध्यान करूँगा। हे ज्ञानी! तू ध्यान न करता, भक्ति ही कर लेता। लेकिन भवन बनाने बैठ गया तो कोटि-कोटि जीव मारेगा तब भवन बनेगा और ध्यान नहीं कर सका, ज्ञानी! रौद्र-ध्यान तो हो ही गया।

भवन बनाकर ध्यान करने मत जाना। जहाँ बैठ जाना, उसे ही ध्यानकेन्द्र बना लेना। बहुत अच्छा हुआ कि हमारे वीतरागी तपोधन जंगलों में चले गये, पर्वतों पर चले गये, सरिताओं के किनारे बैठ गये, खण्डहरों में बैठ गये। ध्यान दो, जो आँख को सुन्दर लगे, वो आँख को सुन्दर करता नहीं। जो आँख को सुन्दर करा है, वह आँख को सुन्दर लगता नहीं है। अक्ष यानी आत्मा, अक्ष यानी आँख, अक्ष यानी इन्द्रिय। जो अक्ष (आँख) को अच्छा लगे, वह अक्ष (आत्मा) को अच्छा करता नहीं। अक्ष (आँख) को तो नारी दिखती है, नारी अक्ष (आत्मा) को अच्छा करती नहीं। जो-जो आँख को अच्छा लगे, वह आत्मा को अच्छा करता नहीं। जो आत्मा को

अच्छा करता है, वह आँख को अच्छा लगता नहीं। आत्मा को निहारना है कि आँख को निहारना है? युवाओ! सुनो-

आँख देखती नहीं स्वरूप को, रूप को है।
आत्मा देखती नहीं रूप को, स्वरूप को है।।

आँख किसे देखेगी? रूप को ही तो देखेगी। रूप को देख-देखकर स्वरूप को ही खो दिया। हे लंकेश! तू जानकी के रूप की जगह स्वरूप को देख लेता तो जानकी में तुझे सिद्ध भगवान दिखाई देता। तूने जानकी के रूप को देख लिया तो तेरी जान चली गई। रावण को किसने मारा? मरे रावण को मारा है कि जीवित रावण को मारा है? हे लंकेश! लक्ष्मण के बाणों से देह विदीर्ण हुई है, पर तेरी मृत्यु तो उसी दिन हो चुकी थी जब तूने सीता के रूप को देखा था। ज्ञानियो! तुम लंकेश के बारे में बहुत बात किया करते हो, अपने मन के रावण से मिल लेना। यदि किसी नारी पर तेरी दृष्टि जा चुकी है तो तेरा शील तो मर चुका है। जो बचा है, वह देह का कवच है।

छोड़ो पुर का राग। पुर किसी का हुआ नहीं। ये समझो कि तेरा स्थाई निवासस्थान कहाँ है? निश्चित पता क्या है? निश्चित निवास क्या है? ध्रुवधाम ज्ञायकभाव, परमपारिणामिक भाव मेरी आत्मा का ध्रुव/निश्चित निवास है, बाकी सब वारे-वारे की व्यवस्था है। जहाँ से तुम्हें हिलना नहीं हो, डुलना नहीं हो, वहाँ हम नहीं जा रहे हैं। जहाँ से भगना पड़ेगा, वहाँ बार-बार जा रहे हैं। हे राग! हमें धिक्कार हो।

'यशस्तिलक चम्पू' महाकाव्य में यशोधर महाराज की कथा लिखी है। भैया! राग कैसा होता है? जिसका राग तेरे अन्दर है, वह राग भी सत्य नहीं है। जिस पर तू राग कर रहा है, उसका राग किसी और पर है। जिस दिन तेरा राग फीका पड़ जायेगा, उस दिन तेरा जीवन फीका पड़ जायेगा। यशोधर महाराज की रानी। हे कषाय, हे वासना! तेरा कोई निश्चित स्थान नहीं है। पवित्र कुल को अपवित्र कर दे, पवित्र बेटे को तू किस दिन धूल में मिला दे, निश्चित नहीं है। हम जगत को सुधारने चल देते हैं। अपने बिगड़े परिणामों को मोड़ लो तो जगत सुधरे या न सुधरे, तेरी गति नियम से सुधर जायेगी। क्या किया? जो घुड़साल में कुबड़ा पुरुष रहता था, महारानी की दृष्टि उस पर थी। सम्राट विश्राम में है, निद्रा नहीं आई, रानी निहार रही है कि ये कब सो जायें और मैं कुबड़े के पास पहुँच जाऊँ। बहाने की नींद में था सम्राट और निहार रहा था रजाई के अन्दर से। भवन का द्वार खोलकर रानी बाहर पहुँच गई। सम्राट का नौकर कुबड़ा महारानी को लातों से पीट रहा है। एक क्षण राजा को लगा कि मैं अपना घात कर लूँ या फिर इसका घात कर दूँ। पर धैर्य कहता है कि नहीं, शूर पुरुष नारी पर वार नहीं करते,

शूर पुरुष यति पर वार नहीं करते, शूर पुरुष ब्राह्मण व गाय की हत्या नहीं करते। देखो जगत की लीला। जिस महारानी के लिये मैं मरा जाता था, वह मुझसे प्रेम नहीं करती। राजा ने तलवार को तो रख दिया, चिन्तन की धारा प्रारम्भ हो चुकी है। हाय-हाय! क्या है काम? क्या है भोग? मेरे-जैसे सुन्दर राजा के होने पर भी और राज्य की विभूति होने पर भी जो राजमहिषी कहलाती है, तब भी कुबड़े की लातें खा रही है। मैंने जिसे कभी तू कह कर नहीं पुकारा हो, कुबड़ा आज उसे पीट रहा है। बात क्या थी? वो यूँ कह रहा था कि विलंब से क्यों आयी हो? रानी कह रही थी- 'स्वामी-स्वामी!' जब रानी स्वामी-स्वामी कह रही थी, तब राजा का खून खौल रहा था कि इस कुबड़े को स्वामी कह रही है और मेरे साथ कितना दगा कर रही है। भैया! सुनो ध्यान से। ये भ्रम का जीवन मत जीते रहना। कोई किसी का होता नहीं है। कौन किसकी सेवा करता है? घर भी बसाया है, यथार्थ मानिये, सेवा के लिये नहीं बसाया है। वासना वश में नहीं थी, सो सेवा कर रहा है। कुबड़े की इच्छा पूर्ण करके रानी पुनः भवन में प्रवेश कर गई। राजा खिन्न होकर बैठा हुआ है। मायावी भाषा में रानी कहती है- स्वामी! निद्रा नहीं आ रही है क्या? सम्राट सोचता है कि इसके बारे में कुछ कहता हूँ तो कलंक किसको लगेगा? मुझे ही लगेगा कि ये राजा की महारानी कैसी है? राजा चुप रहता है और विचार करके नारी मात्र से विरक्त हो गया।

विषयासक्त-चित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुषयं न मानुष्यं, नाभिजात्यं न सत्यवाक् ।। 10 ।। (क्षत्र चूड़ामणी)

जो विषयों में आसक्त हो चुका है, उसके अन्दर न मनुष्यता दिखाई देती है, न सत्यता दिखाई देती है, न देवत्व दिखाई देता है, न धर्म दिखता है। ज्ञानियो! उल्लू को दिन में नहीं दिखता, कौए को रात्रि में नहीं दिखता; लेकिन कामी को न दिन में दिखता है, न रात्रि में दिखता है। ग्रीष्म की तपन पड़ रही हो, इस तपन से बचने के लिए लोग छतरी लगा लेते हैं। दाह ज्वर हो रहा है तो चंदन के छींटे लगा लेते हैं। लेकिन जिसको काम का ज्वर चढ़ा है उसे न छतरी काम में आती है, न चंदन का उपचार काम में आता है।

तेरा वैदुष्य, तेरा पाण्डित्य, तेरा विवेक तभी तक है, जब तक काम के विषधर ने तुझे नहीं काटा है। जिसे तुम सुख मान रहे हो, जिसके द्वारा सुख मान रहे हो, वह तब तक है जब तक एक दूसरे की बात एक दूसरे को मालूम नहीं है। बेटा! तू अपने मन की बात माँ को बता देगा तो माँ तुझे बेटा कहना बन्द कर देगी। मुमुक्षु! जैसा तू विद्वान बनकर यहाँ बैठा है, वैसा तू है नहीं। जो भाव यहाँ हैं, वे भाव पूरे भव में हो जायें तो तू ही तो भगवान है। दूसरा भगवान कौन है? जो भाव यहाँ हैं, ऐसे भाव भव-भव में हो जायें तो भगवान खोजने की जरूरत नहीं है,

मैं ही भगवान हूँ। कितने नवयुवक कहते हैं महाराज! मन करता है मैं भी संयम धारण करूँ, लेकिन ये कामनायें, वासनायें वश में नहीं हैं। यदि तेरे ऐसे भाव आ रहे हैं तब तू किसी-न-किसी भव में बन जायेगा। पाप हो भी जाये, परन्तु पाप में मग्न मत हो जाना। पाप को पाप ही कहते रहना, तो नियम से तू कभी-न-कभी पवित्र हो जायेगा। और पाप को पाप नहीं कह पाया, पाप को सुख के कारण पुण्य का फल कह रहा है, तो तू अज्ञानी है। हे ज्ञानी! पुण्य का फल पापलीनता नहीं है। 'पुनाति आत्मानं इति पुण्यं' जो आत्मा को पवित्र करे, उसका नाम पुण्य है। जो आत्मा की पुण्य से रक्षा करे, पुण्य न करने दे, उसका नाम पाप है। मुमुक्षु! पुण्य का भोग पाप में मत कर बैठना। जितना पुण्य तूने जीवन में कमाया होगा, आज पूरे नगर में जिनवाणी सुनवा रहा है। बस, ये ही तेरा पुण्य पुण्यभूत है। जो आत्मा की पाप से रक्षा करे, पुण्य है। यह परिभाषा 'सर्वार्थसिद्धि' में दी गई है। पूज्यपाद स्वामी कहते हैं- कितना सुन्दर है पाप, चारों ओर से बाड़ी डाल देता है कि पुण्य प्रवेश न कर पाये। यदि पुण्य प्रवेश कर जायेगा तो परमात्मा हो जायेगा, फिर मेरा साथ कौन देगा? तुम कितने भोले हो जो पाप की बातों में आ जाते हो। माँ की बात नहीं मान सकता, पिता की बात नहीं मान सकता, गुरु की बात नहीं मान सकता, प्रभु की बात नहीं मान सकता, परंतु पापों की बात बड़े प्रेम से मान लेता है। मित्र के देखते मित्र गड्ढे में गिर जाये, वह मित्र कैसा ? मेरे मित्र! मेरे देखते देखते तू गड्ढे में गिर जाये, ये अच्छी बात नहीं है। उठकर इस ओर आ जाओ, अपन सब शिवपुर की ओर चलें।

संयोग भी होता है, वियोग भी होता है। संयोग में फूलना जानते हो, वियोग में कूलना जानते हो। ये दोनों तेरी आत्मा के धर्म नहीं। संयोग होते ही वियोग को क्यों नहीं देख लेते हो? संयोग होते ही वियोग होता है। अपने बेटे की माँ को लेने के लिये किसी के घर गया था, उस समय तुझे ज्ञान हो जाना चाहिये था कि इस घर से इसका वियोग हो रहा है, तभी तो मेरा इसके साथ संयोग हो रहा है। एकसाथ दो काम हो रहे थे कि नहीं? समय एक था, काम दो थे। भैया! जिस दिन बेटे की माँ को लेने गया था, वह संयोग का दिन था कि वियोग का दिन था? दोनों थे। जो वरण करके ले जा रहा है, वह संयोग कर रहा है और जो अर्पण कर रहा है, वह वियोग कर रहा है। परन्तु हे अज्ञानी ज्ञानियो! दोनों काम शाश्वत नहीं हैं। जिसके साथ संयोग हुआ है, उसका भी वियोग होगा। जिसका वियोग हुआ है, उसका भी संयोग होगा।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।' जो तू लेकर आया है, किसी से वियोग कराकर लाया कि नहीं। जैनदर्शन के अनुसार जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल मिलता है। ज्ञानी! तू किसी

की कन्या को लेकर आया है, उसकी माँ रो रही है। तू वियोग कराकर लाया, तुझे कर्म का बन्ध होगा कि नहीं? उसका फल तुमको मिलेगा कि नहीं? मिलेगा। हे देवियो! सुनो! जैसे-ही-तेरे कदम घर में पड़े, उस बेचारे लड़के को उसकी माँ से छुड़ा लिया, तुझे पाप का बन्ध होगा कि नहीं? बंध तो होगा ही। बंध से छूटें कैसे? 'तपसा निर्जरा च' तप से बंध रुकेगा, कर्मबंध निर्जरित होंगे।

'योगे वियोगे भवने वने वा, निराकृताशेष ममत्वबुद्धे।' मेरी ममत्वबुद्धि उन सम्पूर्ण द्रव्यों से समाप्त हो जाए। घर तो मधुमक्खियों का स्थान है। छत्ते से एक मक्खी टूटी, तो फिर सब गिरती हैं। यहाँ-वहाँ पूरे शरीर में चिपक जाती हैं। ऐसे-ही घर में एक यहाँ से बोल रहा है, एक वहाँ से बोल रहा है। दोनों हाथ से कमाते हो, लेकिन एक हाथ से शान्ति से नहीं खा पाते हों। धन्य हो धरती के देवता, जो एक भी हाथ से नहीं कमाते हैं, फिर भी दोनों हाथों से खाते हैं।

निराकृत करो- छोड़ दो। अब आयेगा तो दो जीवों का कल्याण होगा और देर से आयेगा तो तीन-चार जीवों का कल्याण होगा। आओ या न आ पाओ, लेकिन भावना तो रखना। स्वर्ग के देव हर समय यही कहते हैं कि मैं एक बार मनुष्य तो बन जाऊँ, मुझे तो मुनि बनना ही है। 'पद्म पुराण' में आया है कि श्रीराम का जीव अपनी सभा में हर समय देवों से यही कहता था कि मनुष्य श्रेष्ठ है। मैं यहाँ से च्युत होते ही मनुष्य बनके शीघ्र मुनि बन जाऊँगा। जैसे-ही मनुष्य बने, वैदेही के राग में विदेही को ही भूल गये। ओ हो! किन्तु राग की महिमा सुन्दर है। जो ये सब दिख रहा है, वह राग की अनुकम्पा है। राग नहीं होता तो कोई दिखाई नहीं देता, सब अशरीरी हो गये होते। राग की बड़ी कृपा है।

अर्हन्त की भक्ति में लीन हुए श्रमणराज अमितगति स्वामी प्रभुपादमूल में प्रार्थना कर रहे हैं, हे जगदीश्वर! हे जगत के ईश्वर! परब्रह्म परमेश्वर! निजब्रह्म को आपने सिद्ध किया है, इसलिये आप ही परमब्रह्म हो। हे अर्द्धनारीश्वर! आपने आधे अरि/कर्मों का नाश कर लिया है। नमोऽस्तु शासन में विराजे हैं। सत्यशासननायक! सारे विश्व में देह के धर्म को स्वीकार करने वाले कोटि-कोटि जीव हैं। द्रव्यदृष्टि को स्वीकार करने वाला एक महावीर का शासन है। इसलिये हे प्रभु! आपके शासन में सत्य की प्ररूपणा है। इसलिये विश्व में सत्य किसी का शासन है तो आपका ही है। सत्य को समझना बहुत जरूरी है। भैया! चल नहीं पाओ, तो विकल्प नहीं करना, पर स्वीकार नहीं कर पाओ तो विकल्प जरूर करना। श्रद्धा में कमी मत लाना। मुनि बनने के लिए घर छोड़ना पड़ता है। त्यागी बनने के लिये बहुत कुछ त्याग करना पड़ता है। लेकिन श्रद्धान करने के लिये तुझको कुछ भी नहीं छोड़ना पड़ता है। श्रद्धा में कमी

मत करना। पंचमकाल में कोटि-कोटि मुनि बना पाओ या नहीं, लेकिन पंचमकाल में कोटि-कोटि जीवों की श्रद्धा को जीवन्त रखना। ज्ञानी! इतनी करुणा करना। श्रद्धा बहुत बड़ी वस्तु है, आस्था बहुत बड़ी वस्तु है। जब मैं भी सिद्ध बनूँगा तो श्रद्धा से ही सिद्ध बनूँगा, अश्रद्धा से नहीं बनूँगा।

अपनी कमजोरी को कमजोरी स्वीकार कर लेना। अपनी कमजोरी जैसा दुनियाँ को मत मान लेना। मेरा ज्ञान कमजोर हो सकता है, अकलंक का ज्ञान कमजोर हो सकता था, परंतु अकलंक प्रभु का ज्ञान कमजोर नहीं था। ये अकलंक शासन है। 'सहस्रनाम' में कितने शासनों के नाम लिखे हुए हैं। सहस्रनाम, महापुराण, मूलाचार, अष्ट पाहुड़ आदि ग्रन्थों में कितने प्रकार के जिनशासन के नाम लिखे हैं? ये जिनशासन के ही भक्तिपूर्वक पर्यायवाची नामों का वर्णन है। जैसे भगवान के सहस्र नाम ले रहे हैं एक ही भगवान के। हे प्रभु! आप शंकर हो, आप विष्णु हो, महेश हो। ये किसके नाम हैं? तीर्थंकर के नाम हैं। इसी प्रकार से शासन के भी नाम हैं। हे प्रभु! आप अकलंक हो, कर्मकलंक आपके हट चुके हैं, इसलिये आप अकलंक हो। ज्ञानी! यहाँ तो कोई अकलंक दिखाई नहीं देता। जब तक सिद्ध नहीं बन जायेंगे, तब तक सारे कलंकी हैं। जो सिद्ध बनता है, वही अकलंक है। मैं भी कलंकी हूँ, आप भी कलंकी हो। जब मैं अरिहन्त भगवान को निष्कलंक नहीं कह पा रहा हूँ, तो तुझे कैसे कह दूँ? निष्कलंक कहलाने की आकांक्षा रखते हो तो तप करके कर्म हटा दो, निष्कलंक सिद्ध बन जाओगे। ब्रह्माण्ड में कोई निष्कलंक जीव है तो उसका नाम है सिद्ध भगवान। तू किसको कलंकी कहता है? जब तक कर्मकलंक लगे हैं, सभी कलंकी हैं। निष्कलंक तो मात्र सिद्ध भगवान हैं।

आठ कर्म में पुण्य आयेगा कि नहीं? ठीक है, तब तक रख लेना जब तक पाप न निकल जाये। लेकिन परमात्मा तब बनेगा, जब पुण्य भी निकल जायेगा। आचार्य अमितगति स्वामी लिख रहे हैं, हे नाथ! मुनियों के ईश! भगवान् भी मुनीश हैं। अंधकार को नष्ट करे वाले आपके दोनों चरणकमल दीपक के समान हैं। जैसे दीपक अंधकार का नाश कर देता है, वैसे ही हे नाथ!आपके चरणकमलरूपी दीपक हमारे अज्ञान-अंधकार का नाश कर देते हैं, सम्यक्त्व गुण को प्रकट कर देते हैं। इसलिये हे नाथ। जब तक मैं संसार में रहूँ, तब तक आपके चरणरूपी दीपकों को न छोड़ूँ। भैया! इतनी भावना तो भाते रहना। जब तक भव धारण करूँ, तब तक भगवान मिलते रहें। भगवान मिलते रहेंगे तो भवातीत होने का ध्यान बना रहेगा। भगवान से ही नहीं मिल पाओगे तो भवातीत होने का भाव ही नहीं आयेगा। मात्र दिगम्बर जैन में यह महान परम्परा है कि जब बालक 45 दिन का होता है तब सबसे पहले मंदिर ले जाया जाता है दर्शन कराने। बेटे! आँख खुले तो जिनदेव देखना और आँख बंद हो तो निजदेव को देखना।

विश्वास रखना, जैसा आँखों से देखता है, हृदय में वह प्रभाव करता है। चित्र का कितना विचित्र प्रभाव पड़ता है। बच्चों-बच्चों को चश्मे क्यों लग गये? टी.वी. की महिमा है। चित्रों को देखते-देखते चश्मे लग गये। सुचित्र देखेगा तो चारित्रवान् बनेगा और कुचित्र देखेगा तो चारित्रहीन बनेगा। चित्त जब चित्रों में गया तो चारित्र गया। इसलिये 45 दिन का बालक हुआ तो सबसे पहले जिनदेव, गुरुदेव को देख और यही संस्कार तेरे पड़ गये तो भविष्य में तू निज के अन्दर के जिन को निकालने का ही पुरुषार्थ करेगा।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि ये अरहन्त के दोनों चरण मेरे हृदय में कीलित हो जायें, स्थिर हो जायें, अबकी बार कहीं न हिलें। भगवान् के सामने पहुँच कर तुरन्त आँखें बंद मत करो। जगत के इतने द्रव्यों को तुम देखते हो, आँखें फाड़-फाड़ कर देखते हो। भगवान क्या इतने खराब हैं कि तुम तुरंत आँखें बन्द कर लेते हो? सौधर्म इन्द्र जब दो नेत्रों से तृप्त नहीं हुआ तो हजार नेत्रों से भगवान को देखा। तुम इतने महान हो कि दो नेत्रों से इतनी जल्दी तृप्त हो गये कि आँखें बन्द कर लीं? यह पंचबालयति भगवान कैसे चमक रहे हैं। ये छवियाँ अन्दर चली गईं और स्वप्न में भी तूने भगवान् का अभिषेक कर लिया, तो कर्म की असंख्यात् गुणश्रेणी निर्जरा हो गई।

'सुपने मधि दोष लगाई'- रात्रि में तूने कोई पाप स्वप्न में भी किया तो उसका नियम से पापबन्ध होता है। और स्वप्न में भी पुण्यकार्य किया तो उसका पुण्यबंध भी होता है। दिन में रोटी खाओ तो वह आनंद नहीं आता और स्वप्न में आनंद से खाता है। जब स्वप्न की रोटी में अच्छा लगता है, तो कर्म का बन्ध भी अच्छा होता है। दिगम्बर मुनि कोई खोटा स्वप्न देख ले तो गुरु से प्रायश्चित्त लेता है। स्वामी! धिक्कार हो मेरी परिणति को, दिन में मैंने इनको भोजन कराया, रात्रि में रोटी का कैसा स्वप्न आ गया? प्रायश्चित्त दो, मेरा आत्मा को पवित्र करो। इस पापी का परिणमन तो देखो कि रात्रि में भी स्वप्न में भी भोजन कर रहा है। प्रायश्चित्त लेना पड़ता है।

आँखें बंद करो तो सौधर्म इन्द्र नहीं बनना, माता-पिता बन जाना। जब ऋषभदेव बालक को सौधर्म इन्द्र ने आँगन में विराजमान किया, तो ऋषभदेव को निहारते ही राजा नाभिराय ने आँखें बंद कर लीं, तो सौधर्म इन्द्र कहता है, महाराज! ये बात मुझे अच्छी नहीं लगी। मैं स्वर्ग से चलकर मध्यलोक में आया और दो नेत्रों से तृप्त नहीं हुआ तो हजार नेत्र बनाये। आपने भगवान को देखते ही आँखें बन्द कर लीं, आप कैसे हो? हे सौधर्म! इस रहस्य को मेरे पास ही रहने दो। 'नहीं, बताना पड़ेगा।' मैंने आँखें बन्द इसलिये नहीं की कि भगवान अच्छे नहीं लगे। मैंने नेत्र इसलिए बन्द किये हैं कि इस नेत्र में प्रभु की छवि प्रवेश कर गई है, अब किसी

अन्य की छवि प्रवेश न कर लें। यदि ऐसा उद्देश्य है, तो आँखें बन्द कर लेना और दर्शन का उद्देश्य है, तो हजार नेत्र बनाकर देखना।

परन्तु बगल के किसी जीव पर दृष्टि नहीं डालना। ज्ञानी! आज 1500 रु. की चरणपादुका पहनकर आया और मंदिर के द्वार पर उतार कर आया। इधर नमोऽस्तु बोल रहा है और धीरे से बाहर देख रहा है कि रखी है कि नहीं रखी है। हे ज्ञानी! आस्रव कैसा होगा तुझे? भैया! श्रेष्ठ मार्ग तो यही है कि सबकी मति सुमति हो जाये। मंदिर में चरणपादुका पहनकर आना ही नहीं चाहिये।

हे भगवान्! आपके दोनों चरणकमल मेरे हृदय में उत्कीर्ण हो जायें, वे कभी हटें ही न। जैसे मूलनायक प्रतिमा कभी उठाई नहीं जाती, वैसे मेरे हृदय में आपके चरणकमल तिष्ठित रहें। कब तक?

तब पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण सम्प्राप्तिः ।। 2।।

हे नाथ! आपके चरणकमल मेरे हृदयकमल में विराजें। तब तक विराजें, जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति न हो जाये। आज से कुछ माँगने जाना तो हनुमान जैसा माँग लेना। जब पूरी रामायण हो गई, तो राम ने सबको पद पाँटने शुरू किये, तो हनुमान से कहा कि तुम भी माँग लो कोई पद। हनुमान बोले कि मुझे एक नहीं, दो चाहिए। राम ने सोचा कि हनुमान ने बहुत अच्छे-अच्छे काम किये, चलो दे दो। तथास्तु। माँगो। हनुमान धीरे से खड़े हुए और श्रीराम के दोनों पाँव पकड़ लिये और कहते हैं कि मात्र ये ही दो पद चाहिये और जगत में मुझे कोई पद नहीं चाहिये। जिसको तीनलोक के नाथ के दो चरणकमल मिल रहे हों, उसे समाज का, देश का, राष्ट्र का पद क्या कीमत रखता है? उसको तो यूँ ही छोड़ देना चाहिये। आपके चरणकमल मेरे हृदय में विराजमान हों। आप क्या माँगोगे?

''राज समाज महा-अघ-कारण, वैर बढ़ावनहारा''।

जितने राजकाज हैं, सबमें वैर ही बढ़ते हैं। यदि कोई पद तुझे स्वीकार हो तो पंचपरमेष्ठी के पद स्वीकार कर लेना, बाकी आज से शेष पदों का त्याग कर देन। सब पद छोड़ देना, लेकिन प्रभु के पद मत छोड़ना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव।।4।।

अन्वयार्थः-(मुनीश!) हे मुनीश्वर (तमो) अन्धकार के (धुनानौ) विनाशक (दीपकौ इव) दो दीपकों के समान (त्वदीयौ) आपके (पादौ) दोनों चरण (मम हृदि) मेरे हृदय में (लीनौ इव) लीन हो गये के समान (कीलितौ इव), कीलित हुये के समान (स्थिरौ) स्थिर हो गये के समान (निषातौ इव) उत्कीर्ण कर दिये गये के समान अथवा (बिम्बितौ इव) प्रतिबिम्बित के समान (सदा) हमेशा (तिष्ठताम्) विराजमान रहें।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी आत्मस्थ होने के मार्ग को समझा रहे हैं। हे जिनेश्वर! आपके दोनों चरणकमल दीपक की भाँति मेरे अन्तस् को प्रकाशमान करें। मिथ्यात्व के तम, अज्ञान के तम का बाहुल्य है। बाहर के तम को घृत के दीप से नष्ट कर लेते हैं, लेकिन भीतर के तम को नष्ट करने के लिये वीतरागवाणी है। अनादि अविद्या के वश हुआ जीव मिथ्यात्व की गहराइओं में ही आनन्द लूटता रहा, अज्ञानता में सुख खोजता रहा। संसार में सुख की खोज? ये जीव की पहली भूल है। पर्याय की मूढ़ता आत्मा को स्वयं से दूर कर देती है। जबकि यथार्थ निर्णय हो जाये कि जिस पर्याय में मैं हूँ, वह पर्याय नहीं बचेगी, पर्यायी को अकेला ही जाना होगा। इस पर्याय के राग में मैंने अनेक परमात्माओं का अनादर कर दिया। बने भगवान को तो पूजते रहे, बननेवाले भगवान को पूछ भी नहीं पाया। परन्तु विश्वास रखना, जिन्हें तुम पूछ नहीं पा रहे हो, वे ही भगवान बनेंगे, फिर पूजोगे। अभी पूछ लेते तो यूँ कहते कि वो ही भगवान बने हैं जिनको मैंने पूछा था, आज पूज रहा हूँ। यह वह धर्म नहीं है जो चौखट को पूजे और माँ को धक्का मारे। ये जिनशासन है। ये वो मार्ग नहीं बताता कि शव को पूजो, शिव को भगाओ। ये वो धर्म नहीं है। शव के ऊपर पुष्पवर्षा हो रही है और जब शव में शिव बैठा हुआ था तब एक ग्लास पानी भी नहीं दिया। शव के लिये सबकुछ करता है, शिव के लिये कुछ भी नहीं करता। शव के लिये विमान बनाया जा रहा है, जब शव में शिव विराज था तब उसे देखने भी नहीं आये। क्या होगा? पर्याय की पूजा शव की पूजा है और पर्यायी की पूजा शिव की पूजा है। किसको पूजा? भैया! जिनके साथ आप बैठे हो, विश्वास मानिये, ये भव्य जीव हैं, भविष्य के भगवान हैं। इस पुण्य के उतार-चढ़ाव को सत्य मत मान लेना।

'समयसार' जी की भाषा में, एक शूद्रपुत्र ब्राह्मण के घर में पला, दूसरा शूद्र के ही घर

में पला। एक मदिरा के स्पर्श को पाप कह रहा है कुल के अभिमान में। दूसरा मदिरा में स्नान कर रहा है अपने आप को शूद्र मानकर। यदि भूतार्थ दृष्टि से निहारेगा तो बेटा किसका था? जो मदिरा को दूर से ही छोड़ रहा है, वह पुत्र भी तो शूद्र का ही है। कर्मत्व दृष्टि से देखोगे तो पुण्य की प्रशस्तता भी कर्म ही है, पाप की अप्रशस्तता भी कर्म ही है। बंधत्व की दृष्टि से देखोगे तो दोनों बंध के भागी हैं। ध्यान दो, सम्यग्दृष्टि जीव का पुण्य तो मोक्ष का कारण है और मिथ्यादृष्टि का पुण्य संसार का ही कारण है।

सम्मादिट्ठी पुण्णं, ण होइ संसारकारणं णियमा।
मोक्खस्स होइ हेऊ, जइ वि णिदाणं ण कुणइ।। (भाव संग्रह)

सम्यग्दृष्टि जीव का पुण्य नियम से संसार का कारण नहीं होता, वह तो मोक्ष का ही कारण होता है, लेकिन शर्त इस बात की है कि निदान नहीं किया हो तो। पुण्य के उदय में आपने पापप्रवृति की हो तो वह पुण्य भला नहीं है। इस देह का उपयोग श्री के सिक्के के समान करना। हे ज्ञानी! विवेक तेरे पास है तो एक सिक्के से द्रव्य खरीद कर श्री जिनेन्द्र की पूजा करके आ सकता है और यदि तू पापी है तो एक सिक्के को फोन वाक्स में डालकर किसी से बातें करके नष्ट कर सकता है। सिक्का कह रहा है कि मेरा दोष नहीं है क्योंकि मैं पराधीन हूँ, तेरे अधीन हूँ। जितना तेरा पुण्य है, तब तक तेरे साथ था। तू मेरा जो उपयोग करना चाहे, स्वाधीन होकर कर। पुण्य भी यही कह रहा है, हे नर! मैं इस क्षण से अधीन हूँ। तुम मेरा जो प्रयोग करना चाहो सो कर लो। मेरे अस्तित्व के रहने पर तू रत्नत्रय का पालन करेगा तो मेरी सत्ता शिवालय भेज देगी। मेरी सत्ता में तू पंचेंद्रियों के विषयों में निमग्न हो गया तो मेरी सत्ता में तू नरक जायेगा। सातवें नरक जाने को भी बहुत पुण्य चाहिये। जो पुण्य मोक्ष जाने के लिये चाहिये, सर्वार्थसिद्धि का देव बनने के लिये चाहिये, वह पुण्य सातवें नरक में जाने के लिये भी चाहिये। भैया! चक्री पुण्य के राज्य को भोगे तो वह सातवें नरक में जायेगा। चक्री पुण्य को राज्य में न भोगकर रत्नत्रय में लगा दे तो सिद्धालय या सर्वार्थसिद्धि ही जायेगा।

'जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा'

उत्तम संहनन वज्रवृषभनाराच संहनन के अभाव में कोई जीव सातवें नरक में नहीं जा सकता और पापी जीवों को उत्तम संहनन मिल नहीं सकता है। पुण्य के उदय से उत्तम संहनन मिलता है और पुण्य के द्रव्य को जो पुण्यरूप में नहीं लगाता, पाप में लगाता है, वह साँतवें नरक जाता है और जो पुण्य के द्रव्य को पुण्य में लगाता है, वह सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त होता है। जो पुण्य के द्रव्य को पुण्य-पाप के क्षय में लगाता है, वह सिद्धालय को प्राप्त होता है। प्रज्ञा

का प्रयोग पवित्र भावों से करिये। जिस तन में बैठा हूँ, वह तन मेरा साथ नहीं देगा तो दूसरे का तन क्या साथ देगा? वह ज्ञानी द्रव्यार्थिक-दृष्टि से मूढ़ है, जो कहता है कि मेरा सगा कोई सिद्धालय जाने की सामर्थ्य रखता है। विश्वास रखना, तेरा सगा ही नहीं, जगत में जितने भव्यजीव हैं, सारे-के-सारे सिद्ध बनने की सामर्थ्य रखते हैं। पर्याय दृष्टि से जब तेरी पर्याय तेरा साथ नहीं देगी, तो तेरे सगे की पर्याय क्या साथ देगी? द्रव्यदृष्टि से तू सिद्धत्व सत्ता से युक्त है, तेरा सगा सिद्धत्व सत्ता से युक्त है। अब किसमें राग, किसमें द्वेष? जो भगवान बन गये और यदि श्रद्धा अन्दर है, तो तुम्हें झुकना ही पड़ेगा, वन्दना करनी ही पड़ेगी। ज्ञानी! वंदनीय की वंदना तो कर लेना, परन्तु वंदनीय के राग में बंध न करना। वन्दना तो करना, बंध न करना।

हे वर्द्धमान! आप मारीचि की पर्याय में कितने अहं में डूब गये? परन्तु ध्रुव सत्य है कि आप वंदनीय तभी बन पाये जब बंध तोड़ पाये। बंध तभी तोड़ पाये, जब वंदनीय की वंदना कर पाये। वंदनीय की वंदना किये बिना बंध टूटते नहीं और बंध टूटे बिना वंदनीय होता नहीं।

बंधदशा में जीव का कर्म से एकीभाव हो जाता है। करणानुयोग में एक बहुत बड़ी शर्त है, भाव एक हो सकता नहीं। कोई ज्ञानी कहे कि मेरा और मेरे मित्र का शरीर भिन्न दिखता हे लेकिन आत्मा एक ही है, तो वह घोर मिथ्यादृष्टि है।

अण्णोण्णं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णास्स।
मेलंता वि णिच्चं सगं सभावं ण विजहंति।।7।। (पंचास्तिकाय)

मुमुक्षु! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य से मिले होने पर भी अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ता है। यह द्रव्य का त्रैकालिक धर्म है, सिद्धान्त है। सिद्धान्त में क्यों क्या कुछ नहीं चलता। उस उन्मत्त भाव को छोड़ देना। ये भूताविष्टपना तो जल्दी छूट जाता है। भैया! किसी को भूत लग जाये तो उसको कोई भी उतार सकता है। यदि मना करता है तो सम्यग्दृष्टि कैसा? मना नहीं कर सकता, क्योंकि प्रतिदिन भूत उतारने का मंत्र पढ़ता है।

विघ्नौघा प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।

हे जिनेश्वर! आपका स्मरण करने मात्र से भूत पिचाश सब अपने आप भाग जाते हैं। अरहन्त का नाम लेने मात्र से विष निर्विष हो जाता है। जैसे मयूर की आवाज सुनते ही कालिया नाग चंदन के वृक्ष से अपने बंधन ढीले करके भाग जाता है, ऐसे-ही ज्ञानियो! अरहंत का नाम सुनने मात्र से कर्म के कालिया भाग जाते हैं। मिथ्यात्व कहाँ बैठनेवाला है? यह देवाधिदेव का

भक्त बोल रहा है। देवों का भक्त नहीं बोल रहा, देव तो उनके चरणों में झुकते हैं। भैया! तू भूत भगा सकता है। श्रद्धापूर्वक णमोकार पढ़ देना, वह अपने आप भाग जायेगा। जैनकुल में जन्मा ऐसा कोई बालक नहीं होगा जो मांत्रिक न हो। जिनशासन में जैसे ही बालक 45 दिन का होता है, उसके कान में सबसे पहले णमोकार मंत्र ही फूँका जाता है। वह मंत्री हो गया। बुद्धि और प्रज्ञा को जैन न्याय में लगा देना।

नारायण कृष्ण के पास कौरव और पाण्डव सहयोग के लिये पहुँचे। नारायण कृष्ण ने कहा कि एक ओर मेरी सारी सेना रहेगी और दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा। अब दुर्योधन, क्या करे? उसको दोष मत देना। 'प्रक्षीण पुण्यस्स विनश्यति विचारं' जिस जीव का पुण्य क्षीण हो जाता है, उसके विचार नष्ट हो जाते हैं, विवेक समाप्त हो जाता है। ये आचार्य गुणभद्र स्वामी ने 'उत्तर पुराण' में लिखा है। विवेक तो भीतर का विषय है। भाल ही सूख जाते हैं, बाल ही सूख जाते हैं। पुण्यात्मा के बाल भी चमकते हैं, भाल भी चमकता है। जिस दिन पुण्य क्षीण हो जाता है तो दुर्योधन की बुद्धि सोचती है कि ये केशव अकेला क्या करेगा?

नारायण तो कुम्भकार होता है। अहंकार चक्रवर्ती को भी कुंभकार बना देता है। भरतेश ने जब अपना दूत बाहुबली के पास भेजा कि बाहुबली से जाकर कह दो कि मेरी अधीनता स्वीकार कर ले, उस समय बाहुबली स्वामी ने कहा- उस प्रजापति से बोल देना कि तेरे-जैसे चक्र को धरनेवाले मेरे पोदनपुर में अनेक चक्रवर्ती हैं कुम्भकार। अहंकार कुछ भी बुलवा सकता है। इसलिये ध्यान देना, जिस समय कषाय का उद्रेक बढ़ रहा हो, उस समय कोई विवेक का निर्णय मत कर लेना। क्योंकि उद्रेक के काल का निर्णय सम्यक् नहीं होता। प्रज्ञाशीलों का सोच है कि उद्रेक के काल का भाषण, भोजन और जो भी निर्णय होगा, वह आपको अन्त में पश्चात्ताप देकर जायेगा। क्या करूँ, क्यों ऐसा बोल दिया? विचार नहीं कर पाया, क्यों ऐसा कर दिया?

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगाड़े आपनो, जग में होत हँसाय।।

आचार्यश्री ने भोजपुर में बड़ी गंभीर बात कही थी 'जीवन में सफल होना चाहते हो तो श्री और स्त्री से दूर रहना'। रामायण में स्त्री विराजी थी और महाभारत में श्री विराजी थी। आपके घर में भी यदि कुछ होता है तो दो ही हैं। एक सूत्र और ध्यान रखना जीवन में, यदि कोई गाली भी देता है तो उसका खण्डन मत करना। गाली देनेवाला पराधीन है या स्वाधीन है? आप शब्दों पर ध्यान दीजिये। यह जैनन्याय है, दर्शन है, अध्यात्म है। स्वयं की बुद्धि से

दे रहा है, इसलिये स्वाधीन है; परन्तु कर्म के अधीन है, इसलिये पराधीन है; स्वाधीन-पराधीन दोनोंरूप में है। हे ज्ञानी! तू ठण्डा, विवेक में बैठा, सो स्वाधीन है। तुझे कोई गाली दे जाये, वह उसका क्षयोपशम था। जगत में कितने लोग तुझे क्या-क्या देते हैं, सभी रखते हो क्या? जो मुझे चाहिये, वही रखता हूँ। जो नहीं चाहिये, वह लेता भी नहीं हूँ। कौन क्या लेता है, इसे मत देखो। आचार्य भगवन्त ने भोजपुर में कहा कि विशुद्धसागर! कोई कुछ कह भी जाये, परन्तु तुम उसका खण्डन मत करना। समय आयेगा, स्वतः खण्डन हो जायेगा। तेरे जीवन का मण्डन-ही-मण्डन होगा। जीवन में कभी भी वृद्धों की सीख को उपहास में मत टालना। वह जो भी कहेंगे, भविष्य में वह मंत्र बनेगा।

लघुता में जीओगे तो नियम से प्रभुता को प्राप्त करोगे। लघुता को छोड़ दोगे तो प्रभुता नष्ट हो जायेगी। लघुता मत छोड़ देना। वृद्ध योगियों से कभी स्पर्धा के भाव मत लाना, श्रद्धा के भाव लाना। वे श्रावक कितने धन्य होंगे, जिन्होंने कुन्दकुन्द जैसे ज्ञानी के हाथ पर ग्रास रखा होगा। कल भविष्य की पीढ़ी यह कहेगी कि वह भी युग आया होगा जब आदिसागर, शांतिसागर, महावीरकीर्ति, विद्यासागर, विरागसागर ऐसे-ऐसे योगी हुये होंगे। इतिहास रह जायेगा, लेकिन तुम हाथ पर ग्रास नहीं रख पाओगे।

वन्दना करना सीखना, बदनाम करना मत सीखना। वध करना हिंसा है, लेकिन बदनाम करना महा हिंसा है। किसी जीव का वध करने पर द्रव्यप्राणों का वियोग होगा और बदनाम किया तो भावप्राणों का वियोग किया, जिससे संक्लेश हुआ, संताप हुआ। माँ! तुझे परेशान करे तो कर्मोदय क्यों नहीं स्वीकारती? मड़िया की चोटी पर बैठकर शंखनाद कर देना- 'पटुसिंहनादैः (युक्त्य नुशासन-53)

'कार्यलिङ्ग हि कारणम्' (आप्तमीमांसा-68), ये आचार्य समन्तभद्र स्वामी कह रहे हैं। यदि यह सूत्र अन्तस् में प्रवेश कर गया तो कोई भी जीव किसी जीव के प्रति अशुभ चिंतन नहीं ला सकता और अशुभ चिन्तन तुम्हारे मन में आ रहा है तो अभी जिनवाणी से परे हो।

खेतों में बालें आ रही हैं। तू बालों को तो देखता है, उसको क्यूँ नहीं देखता जिसने बीज बोया था? बालें कार्य है। कार्य को देखकर कारण भी तो देखना चाहिये। तुम कार्य देखते हो और हर्ष-विषाद परिणाम कर रहे हो। बिना कारण के कार्य होता नहीं। कार्य हुआ है, तो कोई कारण अवश्य होना चाहिये। कार्य तो कारण का चिह्न है। ज्ञानी कहता है कि पिता मुझे सता रहा है, लेकिन तू पिता को गाली मत देना। पिता के रूप में पूर्व शत्रु हो सकता है। वह शत्रु तेरा नहीं है। तूने कोई अशुभ कर्म किया है, इसलिये ऐसा हो रहा है। कार्य को ही मत देखो,

कारण को भी देख लिया करो। घरों में दस चूल्हे क्यों रखे जा रहे हैं ? पड़ोसियों से घंटों बातें कर लेगा, लेकिन पिता से बोलता नहीं है। पिता ने ऐसा कौनसा धोका दिया है? अपने शील धर्म का नाश करके तुझे जन्म ही तो दिया है। तूने उसे क्या दिया है? स्वच्छन्द वृत्ति कर रहे थे, गुरु ने समझाया तो बुरा लग गया, सो गुरु को बुरा कहने लग गया। गुरु बुरा होता है क्या ? आज बुरा लग रहा है। जब आया था तब बूरे-सा लगता था, आज बुरा लग रहा है, क्योंकि तेरे मन की नहीं हो रही है इसलिए। बूरे-से गुरु को बुरा दोष देता है। ये कौन बोल रहा है? अहं। बूरे में भी बुराई मिलती है, कब? जब कषाय भड़कती है।

अन्तो णत्थि सुईणं कालो थोओ वयं च दुम्मेहा।
तण्णवरि सिक्खियव्वं जं जरमरणं खयं कुणइ।।46।। (पंचास्तिकाय)

काल थोड़ा है, बुद्धियाँ दुर्बुद्धियाँ हो चुकी हैं, अतः इतना सीख लो जिससे जन्म-मरण का क्षय हो जाये। बहुत अधिक तनाव में मत जीओ। बुद्धि बढ़ाने के लिए भी बुद्धि मत लगाओ। ज्यादा बुद्धि लगाओगे तो जितनी बची है वह भी झुलस जायेगी तनाव से। जितनी बुद्धि है, उसका उपयोग कर लो। उपयोग करोगे तो बुद्धि सहज में बढ़ना प्रारंभ हो जायेगी। जब मैं ज्ञानियों के प्रवचन सुनता था तो मैं सोचता था कि क्या ज्ञानी लोग हैं? इस जीव ने जिनवाणी का विनय किया होगा, गुरुपादमूल में बैठकर जिनवाणी की आराधना की होगी, ग्रंथों का विलोड़न किया होगा, उसका परिणाम ये है। विश्वास रखना, गुणियों के गुणों का अनुमोदन करोगे तो नियम से गुण छमाछम आयेंगे।

इस युग में तत्त्व को समझना बहुत सरल है। एक जड़ वस्तु सामने आकरके जैसा मैं बोल रहा हूँ वैसा कर लेती है। जब सामने होकरके एक जड़ मशीन वस्तु को पकड़ना जानती है, तो ज्ञानी! विश्वास रखना, तुम तो चेतन हो। गुरु के सम्मुख विनय से बैठकर श्रुत का पान करोगे तो जैसे सीडी में भर जाता है, वैसा तेरे मस्तिष्क में भर जायेगा।

शाहगढ़ में आचार्यश्री बड़े-बड़े पन्नों वाला मोटा शास्त्र रखे थे। मैं वहाँ आया। नमोऽस्तु करके जैसे ही जिनवाणी देखी, तो रोम-रोम खड़े हो गए। मैंने ये भाव कर लिया, हे भगवती जिनवाणी माँ! क्या ऐसा दिन भी आयेगा कि मैं तेरा पान कर पाऊँगा। वह ग्रंथ था 'षट्खण्डागम' (धवलाजी)। विशुद्ध भावना से, विशुद्ध परिणामों से जो भी भावना भावोगे, वह भावनामंगल है। तीनलोक के नाथ के चरणों में श्रीफल चढ़ा देना, उसी दिन अपना कार्य कर लेना, किसी ज्योतिषी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास रखना, कितने ही अच्छे-से-अच्छे मुहूर्त निकलवा लेना, अगर तेरे परिणाम कलुषित हैं, तो मुहूर्त्त क्या करेगा? भावमंगल हैं, द्रव्यमंगल

भी होना चाहिये। लेकिन प्रबल साधकतम कारण कोई है तो उसका नाम भावमंगल है। यहीं पर तीर्थमंगल है, क्षेत्रमंगल भी है, कालमंगल भी है। ऐसा भाव बनाओ-अंतिम श्वास के अवशिष्ट निषेक जब निकलें तो ऐसे मांगलिक स्थान पर निकलें।

एकीभाव हुआ कि नहीं परिणामों में? देह एक नहीं होगी, पर्याय एक नहीं होगी, द्रव्य एक नहीं होगा मोक्ष जाने के लिए, लेकिन जब मोक्ष जायेगा, तब सभी के परिणाम एक-जैसे होंगे। जब आत्मा के अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण परिणाम होंगे, ज्ञानी! जब बादर कृष्टि सूक्ष्म कृष्टि बनेगी, तब निर्वाण जाने के लिए जगत के जितने मुनिराज होंगे, उन सभी के परिणाम एक-से होंगे। नरक, निगोद, स्वर्ग जाने में परिणाम नानारूप हो सकते हैं, लेकिन भगवान् बनने के लिए प्राणिमात्र के परिणाम एक-से होंगे। वे प्राणि मुनिराज मात्र ही होंगे। पर्वत से भी मोक्ष होता है, नदी से भी मोक्ष होता है। इन सबसे होने पर भी मोक्ष तो परिणामों से ही होता है। गगनसिद्ध, अग्निसिद्ध, जलसिद्ध, सीलसिद्ध ये सब ही सिद्ध हैं, परन्तु सबसे विशिष्ट यह है कि सिद्धभावों से सिद्ध हैं।

जगत की कोई बात सुनने की जरूरत नहीं है। ये मुमुक्षु श्रुत को ऐसे सुनते हैं, जैसे चुटकुले सुनाते हों, तो उनमें तो मन कभी इधर-उधर जा सकता है, लेकिन श्रुत के समय आनंद-ही-आनंद है। जिनवाणी का प्रपंच बाहरी प्रपंच नहीं है। जिनवाणी का अर्थ अरहन्त की देशना मात्र है। एक तीर्थंकर के काल में, एक ही तीर्थंकर के साथ, सम्मेदशिखर की टोंकों से कोटि-कोटि मुनिराज एक समय में निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। कैसे हुए होंगे? ऐसे हुए होंगे जैसे यहाँ एकसाथ बैठे हैं। लगता है कि मैं उपदेश सुन रहा हूँ, पर विश्वास मानिये, तुम उपदेश नहीं सुन रहे हो, मोक्ष जाने की तैयारी चल रही है। आज केवली होते तो बता देते कि कौन-कौन-सी पर्याय से निकलकर जीव यहाँ आकर बैठे हैं। स्पष्ट बता देते कि क्या संबंध रहे होंगे। एक जीव को देखकर चेहरा खिलता है। 'गुणिषु प्रमोदं। कोई पापी होता तो इस पर्याय का दुरुपयोग करता। ब्रह्मचारी ने इसे संयम के मार्ग पर लगाया है। एक छोटा बालक आकर बैठ जाये और 'नमोऽस्तु शासन जयवंत हो' कहने लग जाये, तो उसकी पीठ ठोक देना - बेटा! तूने कितने पुण्य का संचय किया है। तूने किसी फिल्म का गाना नहीं गया है, तूने अरहंत के शासन की जय बोली है।

धन्य हो इन युवाओं को जो निर्ग्रन्थों के चरणों में बैठे हैं। उनके पिताओं को प्रसन्नता होती होगी कि मेरा लाल जनालय की ओर नहीं जा रहा है, सुबह से द्रव्य लेकर जिनालय की ओर जा रहा है। जो जिनालय की ओर जोयेगा, एक रोज शिवालय की ओर भी जायेगा। नियम से जायेगा। मंदिर में कोई बालक रोने भी लग जाये, तब भी कितना भाग्यवान् है। भगवान् के

चरणों में ही रो रहा है। आठ वर्ष तक के बालक ने कोई पाप किया तो उसका दोष माता-पिता को लगता है। मंदिर में बेटे ने गंदगी फैलाई तो घोर पाप का बन्ध होगा। इसलिए सँभल कर रहना।

प्रभु के पादमूल में पहुँच करके कोई किसी को पापी कह दे, तो क्या सहन कर पाओगे? नहीं कर पाओगे। धन्य हैं वे धरती के देवता, वीतरागी तपोधन, जिन्हें प्रत्येक मुनि में भगवान् दिख रहा है। समयसार देखो भूल कषाय ने की है, भगवान ने नहीं की। कषाय में इतनी बड़ी भूल कर लेता है कि ऋषभदेव को छोड़कर मारीचि भाग जाता है और जब कषाय शान्त होती है तो सिंह की पर्याय में भी श्रावक बन जाता है। हिंसक को भी दया का पात्र कहना। हिंसक की भी हिंसा मत करना। कमठ एक क्षण पूर्व प्रभु के ऊपर उपसर्ग कर रहा था, दूसरे क्षण में सम्यग्दृष्टि कहला रहा था। मुमुक्षु! सिद्ध को सिद्ध नहीं होना पड़ता, असिद्ध को ही सिद्ध होना पड़ता है।

जो स्याद्वाद-अनेकान्त में आनन्द आता है, वह एकान्त में कहाँ है? विश्वास रखना, न जगत में राग है न द्वेष। जो है, सो है। 'जो सो दु सो चेव'। 'समयसार' में तो चारों अनुयोग हैं। चारों अनुयोग में समय है। ऐसा कौन-सा अनुयोग है, जिसमें समय न हो ? और समय नहीं है तो जिनेन्द्र के आगम का अनुयोग नहीं है। जब एक सामान्य आचार्य/मुनि की सभा में ये सारे जीव एकसाथ स्तम्भित होकर बैठ सकते हैं, तो तीर्थंकर के समवसरण में जन्मजात वैरी जीव सर्प-नकुल, गाय-सिंह एकसाथ बैठते हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। मैं तो आप सब को देखकर महावीर स्वामी के समवसरण की अनुभूति लेता रहता हूँ, हे भगवान्। आपके समवसरण में प्राणी कैसे आनंद लेते होंगे।

एक सज्जन बोले - महाराज श्री! अमुक महापुरुष का वर्णन आया है कि उनने उनका कष्ट दूर कर दिया। महावीर का तो वर्णन ही नहीं मिलता कि उन्होंने किसी का कष्ट दूर किया। मैंने कहा-वे महापुरुष थे कैसे जिनके होने पर जीव दुःखी हुए? हमारे तीर्थंकर महावीर ऐसे महापुरुष थे जिनके शासन में कोई दुःखी ही नहीं था तो किसका दुःख मिटायेंगे? जन्म से ही इतने रत्नों की वर्षा हुई कि कोई भिखारी ही नहीं बचा।

यहाँ बैठे-बैठे, कुछ तो ऊपर-नीचे होता है कि नहीं? तो जो गद्‌गद् भाव आता है, वही आत्म-आह्लाद है। तत्त्व उपदेश सुनते-सुनते आत्म-आनंद 'आहा' नहीं आये तो तत्त्व उपदेश किस बात का? योगी के मन से आहा निकल पड़ती है जब आत्मलीन होता है। जिनेन्द्र की वाणी को सुनकर आहा होना चाहिए।

यह राघ, आराध्य-सिद्धि संसिद्धि है। जो राध से रहित है, उसका नाम अपराध है। राध अर्थात् आत्मा की शुद्धि। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान यही आराधना है। दोष होना दोष नहीं है, दोष को दोष नहीं मानना महादोष है। दोष तो भूल से हो सकता है, परन्तु दोष को दोष नहीं मानना ये प्रत्यक्ष दोष है। भैया! भूल हो भी जाये तो भूल को भूल स्वीकार कर लेना। तुम भगवान् नहीं हो। और भूल नहीं स्वीकारोगे तो भगवान् नहीं बन पाओगे। भूल स्वीकार कर लोगे तो एक दिन भगवान् बन ही जाओगे। देखो, मैं भगवान् नहीं हूँ, पुरुषार्थ जारी है। परन्तु विश्वास है, श्रद्धा कह रही है कि नियम से भगवान् बनोगे। भैया! अपन को पक्का कर लेना है कि हम जैसे हैं, उस पर कुछ नहीं कर सकते हैं, पर हम कमठ बनाकर नहीं जायेंगे, क्योंकि हममें वो क्षमता नहीं है जो पारसनाथ में थी।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं'
आत्मा का स्वभाव परभावों से अतयन्त भिन्न है।
भगवान महावीर स्वामी की जय हो।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
स्वात्म-तत्त्व को
देख
वह है
पर निरपेक्ष
पूर्ण स्वतंत्र।
निजस्वभाव में
न राग, न द्वेष
वह तो है
माध्यस्थ सापेक्ष
अन्य का
जिसमें नहीं
किंचत मात्र
प्रवेश।
- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
सहजता
सरलता
समता
जिसमें जीवित रहे
वही है
सम्यक् जीवन
माया जीवन
वक्र जीवन
ये नहीं है
साधना।
अपने को
अपने में
न देख सके
तो क्या है साधना?
- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः संचरता इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिताः, तदस्तुमिथ्या दुरनुष्ठितं तदा।।5।।

अन्ययार्थः (देव) हे देव (इतस्ततः) इधर-उधर (संचारता) संचार करते हुए मेरे द्वारा (यदि) यदि (एकेन्द्रियाद्याः) एकेद्रिय आदि (देहिनः) प्राणी (क्षताः) विनष्ट हुए हों (विभिन्न) छिन्न-भिन्न कर दिये गये हों या (मिलिता) परस्पर में मिला दिये गये हों या (निपीडिताः) पीड़ित किये गये हों (तदा) तो (तत् में) वह मेरा (दुरनिष्ठम्) दुराचरण, पाप (मिथ्या) मिथिया या निष्फल (अस्तु) हो।

सामायिक देशना

आचार्य अमितगति स्वामी कहते हैं- हे देव! एकेन्द्रिय आदि जो जीव हैं, जो इधर-उधर संचरण कर रहे हैं, मेरे प्रमाद के द्वारा क्षत किये गये हों, विदार दिये गये हों, पीड़ित किये गये हों, हे प्रभो! मेरा यह दुष्कृत्य मिथ्या हो। किसी जीव के प्रति अशुभ भाव मत लाना। यह शिक्षा हमें आचार्यश्री के इस श्लोक से मिलती है।

आचार्यभगवान् आत्मा के कल्याण की भावना भाते हुए समझा रहे हैं- इस जीव ने एक बार नहीं, दो बार नहीं, अपने जीवन में एक ही भव में अनन्तानन्त बार अशुभ भाव किये। अशुभ भाव ही नहीं किये, अशुभ कर्म भी किये। ऐसे-ऐसे कर्म किये जिनको अपने मुख से स्वयं बोलना अशुभ महसूस होता है। वे कर्म अशुभ ही हैं। दूसरे किसी से पृच्छना करने की आवश्यकता नहीं है। वह क्या अशुभ हमने किये हैं? जो भी बतायेगा, स्थूल को बता पायेगा। सबके सामने आ गये तो निन्दा के पात्र हो गये। जिनके दोष सामने नहीं आये, वे अपने आपको अनिन्दनीय न मानें। जिनकी आप निन्दा कर रहे हो कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा पाप किया, ऐसा दोष किया, वह उत्तरकापी है। जैसे गणित के सवाल लगाते-लगाते देख लेते हो कि उत्तरपुस्तिका में हमारा उत्तर सही है या नहीं, ऐसे ही ज्ञानी! दूसरे के दोष जो लोक में प्रकट हो चुके हैं, जिसको जेल में बन्द कर दिया गया है, वे लोग आपके लिये उत्तरकापी हैं। उत्तरपुस्तिका में जो लिखा है, उससे मिलान कर लेना। उस जीव के अशुभ कर्म का तीव्र उदय था जो सबके सामने आ गया। तुम्हारा सुकृत काम कर रहा था कि सबके सामने नहीं आया। लेकिन शिव के, भगवान के सामने है और स्वयं के सामने है। कानों-कानों में कितनी बातें कर लेते हो, अमुक के बेटे ने ऐसा कर दिया, क्योंकि सुनाई पड़ गया था। लेकिन ज्ञानी! दूसरे के बेटे का तू हल्ला कर रहा है, अपने परिणामों से पूछ लो कि आपने क्या नहीं किया है? आपका एक घण्टे में जितना सोच बनता है, वह असंख्यात लोकप्रमाण कर्म-आस्रव का साधन होता है। फिर

चौबीस घण्टे में कितने अशुभ भाव किये हैं? और पूरी पर्याय में कैसे परिणाम किये हैं? अनन्तानन्त पर्याय धारण की हैं, उनमें कितने प्रकार के परिणाम किये हैं, कौन गिनने जायेगा? आप स्वयं सोच लो।

यदि अतिक्रमण हो जाता है तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है और आगे ऐसा नहीं करूँगा, तो प्रत्याख्यान है। भूत में किये गये दोषों की आलोचना 'प्रतिक्रमण' है। भविष्य में दोष नहीं करूँगा, इसका नाम 'प्रत्याख्यान' है। जैनदर्शन में प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान ये अमोघ अस्त्र हैं। निज की निन्दा करना कितना सरल होता है। निज की निन्दा करेगा तो उच्चगोत्र को प्राप्त करेगा और पर की निन्दा करेगा तो नियम से नीचगोत्र को प्राप्त करेगा।

आज से आचार्यभगवान् प्रतिक्रमण प्रारम्भ कर रहे हैं। अपराध हुए हैं, जिनकी शुद्धि कैसे हो? जिसने अपराध किये हैं, शुद्धि वही करेगा। जिस प्रज्ञा से बन्ध हुआ है, उसी प्रज्ञा से मोक्ष होगा। दोष हो भी गये हों तो इतने अधीर मत हो जाओ कि मैं दोषी ही हूँ। व्याख्याकार को ठंडे होकर, शांत होकर जगत के मूक और बोलनेवाले दोनों प्राणियों पर करुणा की आवश्यकता है। आपके वचन से क्षण भर में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा हो सकती है और आपके वचन से एक क्षण में कोटि-कोटि जीवों की रक्षा हो सकती है। पाप करते हुए जितनी हिंसा नहीं हुई है, पाप करने के बाद भी उतनी घोर हिंसा हुई है।

किसी अज्ञानी युवा ने अपनी खोटी दृष्टि करके किसी जीव का शील भंग कर दिया। हे पापी! तूने एक पाप तो कर लिया। उस पाप को छुपाने के लिए उस अज्ञानी ने क्या किया? प्रगट न हो जाये, सो कन्या की हत्या कर दी। एक पाप करने के बाद दूसरा पाप कर बैठा और कदाचित् किसी ने देख लिया तो उसने उस पर भी वार कर दिया और जब अपनी रक्षा नहीं देख पा रहा था तो इज्जत के राग में आकर आत्मघात कर लिया। उस व्यक्ति को लगा कि अब मेरा क्या होगा? जो दोष हो गया है, वह तो टलनेवाला नहीं है। कलंक का टीका तो लग ही चुका है और कलंक के टीके से बचने के लिए तू प्राणघात भी कर लेगा। पर विश्वास रखना, कलंक का टीका प्राणघात से मिटनेवाला नहीं है। ये जीता रहता तो प्रायश्चित्त कर लेता। लोक का कलंक टलता या न टलता, परन्तु कर्मों का कलंक नियम से टलता। कोई अपराध हो जावे तो राध में चले जाना, परन्तु अपराध में मत जाना? राध अर्थात् शुद्धि। दोष हो गया है वह तो हो ही गया है, परन्तु दोष के पश्चात्ताप में दोष का प्रत्याख्यान तो करना, लेकिन प्राणों का प्रत्याख्यान मत करना। जीवित रहेगा, विवेक जगेगा, तो प्रायश्चित्त लेने के परिणाम होंगे और तपस्या करके, निर्जरा करके, निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। यदि दोष करके गहन शोक में डूब गया और आत्महत्या कर ली, तो अभी तो तू ही पापी था, पर हे पापी! तूने घरवालों को

भी जेल में बन्द करा दिया। इसलिये मार्ग में जीना है, ठण्डे होकर जीना है। पंचमकाल चल रहा है, मौसम दिनोंदिन गर्म होगा। इसलिये निर्णय के पहले ठण्डे हो जाना।

शरीर में दाह हो रहा है दवाई नहीं मिल रही है। जब तक दवाई खाने जायेगा, ज्ञानी! कुछ भी हो सकता है। दवाई नहीं मिल रही है तो तनाव मत करना। तेरे पास पानी हो तो पानी का छींटा चेहरे पर डाल लेना, दाह शान्त हो जायेगी। बाहर में दाह हो रही है तो पानी का छींटा छिड़क लेना और भावों में दाह हो रही हो तो जिनवाणी का छींटा मार लेना, तुरन्त शान्ति मिलेगी। दवाई की खोज मत करना। दवाई तो रिएक्सन (प्रतिक्रिया) कर सकती है, परन्तु नीर कभी रिएक्सन नहीं करेगा। जिनवाणी का नीर कभी रिएक्सन नहीं करेगा। युवाओ! ध्यान से सुनना, कहीं उम्र के उद्रेक में अनाचार हो जाए तो पश्चात्ताप कर लेना, प्रायश्चित्त ले लेना, लेकिन अनाचार में महा-अनाचार करने मत चले जाना। तेरे प्राणों की रक्षा की तो मैं बात कर रहा हूँ। प्रश्न तेरे प्राणों की रक्षा का नहीं है। यदि समाज का एक-एक युवा नष्ट होता चला जाएगा, तो भविष्य में धर्म चलाने को संतान कहाँ बचेगी? आपकी रक्षा करना भी धर्म है। उम्र का उद्वेग एक दिन बाद ठण्डा हो जायेगा, लेकिन इस शरीर से जिनशासन चलेगा।

आचार्य शांतिसागर के संघ में एक पायसागर महाराज थे। पायसागर का पूर्व जीवन सप्तव्यवसनी था। इस जीव ने कोटिद्रव्य वैश्यावृत्ति में नष्ट कर दिये थे। शांतिसागर महाराज उस नगर से गुजर रहे थे तो व्यवहार/लोकरीति के अनुसार वहाँ की समाज आई- महाराज! हमारे नगर में पधारो। 'यथार्थ में मन में किसी के उमंग नहीं थी कि महाराज आयें, क्योंकि एक उपद्रवी हमारे नगर में है, इसने कुछ कर दिया तो संत का अहित होगा और समाज की इज्जत धूल में मिल जायेगी। इसलिये किसी की इच्छा नहीं थी कि महाराज नगर में आयें। लेकिन महाराज ने पिच्छि-कमंडलु उठाया और उसी नगर की ओर विहार कर दिया। पूरी समाज में तहलका मच गया। ढूँढ़ो, वह युवा कहाँ है? संघ के चारों तरफ पहरेदार लगा दिये। परन्तु नियोग देखो। जिसकी भवितव्यता पवित्र होती है, भगवान् भी द्वार पर आ जाते हैं। यह सूक्ति भी चरितार्थ होती है कि जब स्वयं नहीं पहुँच पाते हैं तो भगवान् स्वयं पहुँच जाते हैं। आपको विश्वास न हो तो चंदनबाला से पूछ लो। अबला के घर में भी सबल भगवान् पहुँच पाये।

शांतिसागर महाराज ने जैसे-ही कदम आगे बढ़ाये। नगर में अगवानी का समय हो गया। भैया! जिस युवा के लिये लोग भयभीत थे, वही युवा महाराज के सामने दिखा। नियोग देखो, पुण्य का परिणमन। जैसे-ही युवक सामने आया, महाराज ने अपना कमण्डलु उसके हाथ में पकड़ा दिया। लोग सोच रहे थे कि कहीं कमण्डलु फेंक न दे। 'जे कम्मे शूरा, ते धम्मे शूरा।'

जब सिंह इन निर्ग्रन्थों की सन्निधि में आकर अपनी परिणति को सँभाल सकता है, कालिया नाग काटना छोड़ सकता है, फिर वह तो इन्सान था। जब संघ मंच पर पहुँच गया, आचार्यश्री ने उस पर दृष्टि डाली। लगा कि ये भव्यजीव है, तो वहीं बगल में बिठाल लिया। लोगों ने कहा, 'खिसको'। महाराज ने कहा 'बैठे रहने दो'। संघ लम्बे समय तक रुक गया। वह युवा वैयावृत्ति में लग गया. जब अजगर प्रभु के उपदेश सुन सकता है, सिंह अपना हिंसाकर्म छोड़ सकता है, तो फिर यह तो मनुष्य था। एक दिन कहता है, महाराज! क्या मेरे-जैसे पापी का भी कल्याण हो सकता है? ज्ञानी! आयुकर्म का अंत कब आ जाये, समय निश्चित नहीं होता है। पापी को भी पापी मत कहो। अहो मुमुक्षु! पापी कहनेवाला पापी बना रहेगा और पाप करनेवाला पाप से तिर जायेगा। पापी कहनेवाला पापी बना रहेगा क्योंकि उसकी आँख पाप पर टिकी हुई है। लेकिन जो पाप कर चुका है, उसकी आँख पाप पर नहीं, पश्चात्ताप पर टिकी हुई है। वह तो प्रायश्चित्त करके अपना कल्याण कर लेगा, अंजन चोर निरंजन हो गया, लेकिन लोग उसे तो अंजन चोर ही कह रहे हैं। अंजन निरंजन हो गया, कब कौन निरंजन हो जाये, मालूम नहीं?

अहो मुमुक्षु! दूसरे की अशुभ वृत्ति को ही क्यों देखते हो? उसके भीतर की वृत्ति को क्यों नहीं देखते? प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त आदि जिनागम में क्यों हैं? दूसरों को देखने के पहले एक दृष्टि जरा अपने में डालकर देख लेना कि तुम कैसे हो? जिसका प्रकट हो गया, वह उत्तरपुस्तिका है। ज्ञानी! उसकी क्षमता देखो, उस युवा को जब लोगों ने देखा, वह हाथ जोड़े खड़ा हुआ है। इसके परिणाम बदल रहे हैं। हल्दी में चूना पड़ते ही वह रंग बदल लेती है। जिनेन्द्र के वचनों की सुधा पड़ते ही इंसान न बदले तो कौन बदलेगा? इंसान ही तो बदलता है। ध्यान रखना, भगवान् कभी नहीं बदलते हैं। यदि भगवान् बदल गये, तो वह भगवान् नहीं बचेंगे। बहिरात्मा बदलकर अंतरात्मा बनता है। अन्तरात्मा बदलकर परमात्मा बनता है। परमात्मा बदलने लग गया तो क्या होगा? यह उतरने वाला दर्शन नहीं है। विकास होता है, विनाश नहीं होता है। कौन जानता था कि ऐसा व्यक्ति योगी होगा, तपती रेत में घण्टों-घण्टों घुटनों के बल पर ध्यान करेगा। वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा- महाराज! क्या पापी भी तिर सकता है? वीतराग तपोधन कहते हैं, बेटे! पापी ही तो तिरता है? जो तिर चुका है, वह क्या तिरेगा? बस, महाराज! ये श्रीफल (सिर) इतना बड़ा है, क्योंकि जब तक श्रीफल लेने घर आऊँगा, तब तक परिणाम बदल गए तो क्या होगा? यही श्रीफल है, मैं आज से अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता हूँ। बाद में वही जीव जैनेश्वरी दीक्षा लेकर घोर तप करता है। तब एक श्रावक पहुँचता है, महाराज! इतनी कठोर साधना क्यों? भैया! सुन उस दिन तू नहीं आया

था जिस दिन मैं कठोर पाप कर रहा था। कठोर पाप किये हैं, वे कठोर साधना से ही कटेंगे। ज्ञानी! हीरे की कटिंग, हीरे से होती है, लोहे से नहीं होती है। ज्ञानी! कीचड़ में हाथी फँस जाये तो हाथी निकालने के लिये हाथी चाहिए पड़ता है, युवक नहीं। जब हाथी-जैसे पाप किये हैं, तो हाथी-जैसी साधना भी करनी पड़ेगी। हमारी युवा पीढ़ी को आप गिरा मत मानो, ये गिरी नहीं है। उठानेवाले लोग चाहिए। ये ऐसा मोड़ का जीवन होता है जिसे चाहे जिस ओर मोड़ लो।

हृदय को टटोलो। देह की सेवा के पीछे, देह की सुख-सुविधाओं के पीछे क्या-क्या किया है? ये तो अच्छा हुआ कि मौका मिल गया सोचने का। नहीं तो सोचते भी नहीं हो। हे देव! अमितगति स्वामी कह रहे हैं, ये मत सोचना। स्वयं अमितगति बनकर कहना। एक क्षण को सभी अमितगति हो जाओ। हे देव! सुबह से जागा, पैरों में चरणपादुका धारण किया और घूमने चल दिया। हाथ में छड़ी लिए हैं। दुनियाँ कहेगी कि घूम रहा है। ज्ञानी घूम तो रहा है, जब हरी घास पर चल रहा था तो कह रहा था कि नेत्रों की ज्योति बढ़ेगी, लेकिन तूने कोटि-कोटि जीवों की जीवनज्योति नष्ट कर दी है। हे पापी! तू क्या कर रहा है? मन में भजन गुनगुना कर नाम न लेता, भगवान् को देख लेता तो ज्यादा अच्छा होता। तू भगवान् का नाम कम ले लेता, भगवान को देख लेता तो भगवान् के पास आलोचना करने नहीं जाना पड़ता।

श्री जी का अभिषेक हो रहा है। ज्ञानी को विलंब हो गया, सो दौड़कर जा रहा है, क्योंकि श्री जी का अभिषेक करना है। श्री जी के सिर पर पानी डालने को दौड़ रहा है और नीचे वाले श्री जी को कुचल रहा है। अभिषेक तो फिर हो जायेगा, परंतु जिनको कुचल रहा है उनसे मिलने कब आयेगा? भैया! श्रीजी के अभिषेक को तो जाना, परंतु ईर्यापथ से चलना। भैया! तुम अपने कपड़े उतार कर मुझे दे दो, मुझे अभिषेक करना है। जिनवाणी कहेगी भैया! तू खड़े होकर देख लेता तो ज्यादा अच्छा था। दूसरे के कपड़े पहन करके 'अधिकरणं जीवाजीवाश्च' जीवाधिकरण, अजीवाधिकरण। किसी को टीबी का रोग था, किसी को कुष्ठ रोग था, किसी को केन्सर आदि के रोग थे। रोगी के वस्त्रों को तुमने धारण कर लिया। ज्ञानी! उसके शरीर के कीटाणु भिन्न थे, तुम्हारे शरीर के जीवाणु भिन्न थे। दूसरे के उतरे कपड़ों को पहनकर श्रीजी का अभिषेक करने चला गया। कभी गीले कपड़े पहनकर अभिषेक किया था, आहारदान दिया था। वस्त्र गीले थे, शरीर उष्ण था, इन दोनों के मिश्रण से मिश्र योनि बनी। आगम में लिखा है कि गीले वस्त्रों से आराधना करनेवालों को चमड़ा पहनने का दोष लगता है। श्रेष्ठ मार्ग यह है कि अपने घर के स्वच्छ वस्त्र से, जिनसे भोजन नहीं किया हो, अभिषेक-पूजन करना चाहिये।

फूटे बर्तन, टूटे चावल, फटे वस्त्र आदि से जो अरहन्त की पूजा करेगा, वह भविष्य का दरिद्री है। ससुराल के लिये सुगंधित सामग्री लेकर पहुँचता है क्योंकि सुन्दर दिखना चाहिए। हे रागी! ससुराल सुन्दर वस्त्र पहनकर जाता है और तीनलोक के नाथ के चरणों में भिखारी बन कर आता है। धोती में दुर्गंध आ रही है तो उन वस्त्रों में अभिषेक-पूजन मत करना। श्री जी का प्रक्षालन शुद्ध/स्वच्छ वस्त्र से करना। फटे व काले कपड़े से कभी भी श्रीजी का प्रक्षालन मत करना, न मुनि को आहार देना। छत्तीस श्रावकाचार हैं, जिनका अध्ययन करो। ज्ञानी को खाने के लिये बासमती चावल चाहिये और चढ़ाने के लिये सबसे सस्ते चावल ढूँढ़ता है। ज्ञानी! ऐसा मत करना। खाने को किसने देखा है? उसका तो मल ही बनना है। श्रीजी के चरणों में ऐसी द्रव्य चढ़ाना कि सामनेवाला सोचे क्या महिमा है? वैभव देखकर भी दरिद्रों की आस्था जुड़ती है भगवान् से। ऋद्धिदर्शन भी सम्यक्त्व का साधन है। ध्यान रखना, जैसा फर्नीचर होगा, जैसी सामग्री दुकान में होगी, वैसी ही ग्राहकी होगी। जो भगवान् जिनेन्द्र के चरणों के पास आकर जितनी उत्कृष्ट भक्ति करेगा, विश्वास रखना, जीव उतना ऊपर जायेगा। भगवान् की आराधना में कभी गरीबी मत दिखाना। गरीब वह नहीं है जो अर्थशून्य है, गरीब वह नहीं है जो श्रीशून्य है। गरीब तो वह है जो श्रीजी से शून्य है। यदि श्रीशून्य गरीब होता तो जितने दिगम्बर मुनि हैं, वे सब गरीब हो गये होते। श्रीरहित गरीब नहीं होता। जो श्रीजी से रहित होता है, वह नियम से निर्धन ही होता है। धन से धन नहीं मिलता, धर्म से धन मिलता है। जो कुछ मिल जाये, उसमें इठलाना नहीं। अहम् मत करना। जो तुमने कमाकर रखा है, निकालते जाना। कमाई कभी पुण्य से होती नहीं। पूर्व पुण्य से धन आता अवश्य है।

'रुधिरमलं धावते वारि'। जैसे रुधिर से सने वस्त्र को पानी से धो लेता है, ऐसे ही गृहस्थी में संचित कर्मों को निर्ग्रन्थों की भक्ति धो देती है। अरहन्तों की, निर्ग्रन्थों की आराधना करने से आपके गृहस्थी में किये गये कर्मों का प्रक्षालन हो जाता है। इसलिये आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि प्रतिक्रमण कर लो। आप विवेकी हो तो ईंट-भट्टे का काम, वाहन का काम मत करना। आप शांतिधारा लोटे से नहीं, झारी से करते हो, क्योंकि लोटे से करोगे तो जल जल्दी खत्म हो जायेगा। झारी का उद्देश्य क्या है? थोड़ा-थोड़ा पानी गिरेगा तो अच्छे से शान्तिधारा भी हो जायेगी, गंधोदक भी ज्यादा नहीं लगेगा और अविनय भी नहीं होगी। पुण्य तेरा झारी भर था, टोटी से निकालना चाहिये था, पर तूने मुख से निकाल डाला। पाप का उदय आते देर नहीं लगती। बुझते दीप की लौ भी अंत समय तेज हो जाती है। यदि कोई गलत काम करने बढ़ता नजर आ रहा है तो समझ लेना कि बुझने के दिन आ रहे हैं। मरने के समय प्राणी स्वस्थ हो जाता है, किसी वैद्य से पूछ लेना। मरने के एक अन्तर्मुहूर्त पहले लगता है कि ये ठीक हो

रहे हैं। ज्ञानी! जलता दीप जब बुझने को आता है तो उसकी लौ बढ़ने लगती है। बुंदेलखंड में कहते हैं कि जब मरने के दिन आते हैं तब चींटी के पंख आ जाते हैं। ऐसे-ही जब जीव के मिटने के दिन आ जाते हैं तब अहंकार के पंख आ जाते हैं। रावण से पूछो।

वाहन का व्यापार मत करना, क्योंकि कोटि-कोटि एकेन्द्रियादि जीवों पर तेरे वाहन चल गये तो पुण्य का द्रव्य पाप में बदल गया। उच्च कुल के जीवों को भट्टे का काम नहीं करना चाहिए क्योंकि भट्टों में अनन्तानंत जीव झुलसते हैं। वह पाप कहाँ जायेगा? भैया! जीने के लिए आए हो या कि जीवों का नाश करने को आये हो? सत्य बताना। विश्वास रखो, जीवन में पेट भरने के लिए बहुत नहीं करना पड़ता। कुछ नहीं करने पर भी मिलता है।

कृषि करो या ऋषि बनो। कृषि भी करो तो कीटनाशक औषधियाँ मत छिड़कना। अपने भाग्य पर जीना। भैया! तेरे घर में चूहे तो नहीं हो गए? हे ज्ञानी। जिन-जिन के घर में चूहे हो रहे हैं और पिंजड़े रखे हैं, उनसे कह देना कि चूहे का भाग्य न होता तो तेरे जैसा भाग्यवान् कहाँ मिलता? अपनी सामग्री की रक्षा करो, चूहों के घात करने का विचार मत करो। उसका भी पुण्य है कि तेरे घर/गोदाम में हुआ है। आज के युवा-युवतियाँ बिलख रहे हैं कि कोई मुझे पिता नहीं बोलता, माँ नहीं बोलता, गोद सूनी है। माँ-पिता कहलाने की इच्छा रखनेवालो! उस कर्म को याद करो जब घर में चूहे हो रहे थे। आपने पिंजड़ा रखके उनके माता-पिता को रोड पर फिंकवा दिया था मरने के लिए। उनके छोटे-छोटे बच्चे माता-पिता के वियोग में बिलखते-बिलखते मर गये। उनके रुदन की अशुभ वर्गणायें आपको कर्मबन्ध को प्राप्त कर रही है। आज तुम्हारे घर में लाल नहीं हो रहे हैं। ज्ञानी! जो बड़े-बड़े जीव दिख रहे हैं, उनकी रक्षा की तो तू बात कर रहा है, परंतु घरों के पिंजड़ों की भी बात करो। महाराज! हम तो बड़े धर्मात्मा हैं, लेकिन लक्ष्मणरेखा जरूर खींच देते हैं चींटियों के लिए। वे चींटियाँ तड़प-तड़प कर मर जाती हैं। काहे के तुम धर्मात्मा? कछुआ छाप, आल आउट। धन्य हो तुमरे लिए। दो इंद्रिय के लिए जानकर धुआँ करवा रहा है और मस्ती में सो रहा है और एकेन्द्रिय हिंसा की बात करता है।

ज्ञानी! कितने ही पंचकल्याणक कर लो, कितने ही बैंड बजवा लो, ये बाहर की प्रभावना कोई प्रभावना नहीं है। यदि कोई नियम लेता है कि जब भी पानी पीऊँगा तो अपने हाथ से छानकर पीऊँगा। कहीं भी खड़ा होगा, पानी छानकर पियेगा तो दुनियाँ कहेगी कि ये जैन है, तो हो गई जैनशासन की प्रभावना। ज्ञानी! नाक पोंछने का रुमाल रखे रहता है, उसका वजन नहीं लगता। ये युवा बाल संभालने को कंघी रखे रहते हैं, उसका वजन नहीं लगता। परंतु ज्ञानी! जिनेन्द्रशासन में कनक, कलेवा, छन्ना ये जैनी के चिह्न हैं। यदि श्रावक ये नियम ले लें

कि महाराज! एक जेब में रुमाल रहेगा और दूसरी जेब में छन्ना रहेगा। जब भी पानी पीऊँगा तो छन्ने में छानकर पीयूँगा। जहाँ भीड़ ज्यादा होगी वहाँ और ज्यादा पीऊँगा। लोगों को समझ में आना चाहिए कि कोई जैनश्रावक है। उसमें पानी छानकर पिया, हजारों ने देख लिया तो जैनशासन जयवंत हो गया। यह धर्म है, यह धर्मात्मा है, ये प्रवचन है। इस जीव ने कितना अच्छा नियम लिया है, कोटि-कोटि जीवों की रक्षा का संकल्प लिया है।

स्वयंवर रचाया गया, बड़े-बड़े क्षत्रिय पधारे। कोई धनुष नहीं तोड़ पा रहे थे तो जनक की आँखों में आँसू आ रहे थे। 'मुझे नहीं मालूम था कि ये पृथ्वी क्षत्रियों से रहित हो गई है, नहीं तो स्वयंवर क्यों रचाता?' श्रीराम खड़े हो गये, धनुष की डोरी चढ़ाकर तोड़ दिया, तो जनक के आँसू समाप्त हो गए। ज्ञानी! नाक पोंछने वाले रुमाल से पानी मत छानना, छन्ना से ही छानकर पीना। जब भी कहीं जाना हो तो कहना 'पानी छानकर लाये कि नहीं?' नहीं तो मेरा छन्ना ले जाओ। घर में कोई मांगलिक कार्य हो तो स्टील के प्लेट आदि बाँटना बन्द करो, छन्ना बाँटना प्रारंभ करो।

कुए से भरो, कुए में छोड़ो। धर्म शास्त्रों मात्र में न रह जाए, लोगों के मुख मात्र में न रह जाये। ये श्रमण संस्कृति का उत्थान का समय चल रहा है, स्वर्ण समय चल रहा है- नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जगह-जगह मुनिराज हैं, त्यागीव्रती हैं, विद्वान, लेखक, साहित्यकार सब कोई हैं। बस, तनक-सी प्रवृत्ति को ठीक करना है। ज्ञानी! पंचमकाल की अंतिम श्वासों तक सत्यशासन जयवंत रहेगा।

जिस कुए से पानी भरा, बिलछानी उसी में डालना चाहिये। धन्य हो योगियों की अहिंसा ये दिगम्बर मुनि इस मंडप से बाहर जायेंगे तो पहले पिच्छी से पूरे शरीर का मार्जन करेंगे। यहाँ शीतप्रदेश है, बाहर ऊष्णप्रदेश है, उन जीवों का घात न हो जाये। धन्य हो। तब लगता है, हे वर्द्धमान! तुम्हारा शासन कितना महान है। लोगों की करुणा कितनी ओछी है, जिनशासन की करुणा कितनी गहरी है। ये उथली करुणा नहीं है। दूसरे साधु की पिच्छी का प्रयोग, कमण्डलु का प्रयोग नहीं करना। ये कोई ईर्ष्या नहीं है, अहिंसा है। श्रावकों को भी एक दूसरे के कपड़े नहीं पहनना चाहिये। ये कोई व्यवहार नहीं है, अज्ञानता है। एक थाली में बैठकर चार को भोजन नहीं करना चाहिए। ये वात्सल्य का अभाव नहीं है, यही वात्सल्य है। भोजन करने में मुख से चप-चप आदि की आवाज नहीं आना चाहिए। व्यक्ति का भोजन ही उसके कुल का ज्ञान करा देता है। दृष्टि बार-बार दूसरे की सामग्री पर नहीं जाना चाहिए। बैल अपनी घास एक बार खायेगा और फिर दूसरे की घास जरूर देखेगा। अपन को बैल नहीं बनना है। अपन तो मनुष्य हैं, मनुष्य।

ऐसा कोई पुरुष नहीं जिसमें कोई गुण न हो। ऐसी कोई वनस्पति नहीं जिसमें औषधि न हो। बस, गुण देख लो, बाकी छोड़ दो। हे प्रभु! मेरे सभी दुष्कृत मिथ्या हों। 'मिच्छा मे दुक्कडं।' सॉरी बोलना बंद करो। आप जैन हो, अपनी संस्कृति के शब्दों का प्रयोग करो। कहीं भी कोई गलती हो जाये तो तुरंत बोलना 'मिच्छा मे दुक्कडं।' शीघ्र कायोत्सर्ग कर लेना, समय मत लगाना। जीवन का अगला क्षण मिला या नहीं, इसलिए तुरंत प्रतिक्रमण करना। किसी से अशुभ वचन बोल दिया हो, भूल से भूल हो जाये, तो प्रायश्चित्त करा। जान-जानकर भूल करके प्रायश्चित नहीं किया जाता। श्वेताम्बर परंपरा में सभी श्रावक प्रतिक्रमण करते हैं। आपसे पूरा नहीं बनता तो चौबीस घंटे में कम-से-कम ''तस्स मिच्छा मे दुक्कडं'' बोल दिया करो। जो मैंने दिन भर में दुष्कर्म किये हों, वे सब मिथ्या हों।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
शांति चाहिये तो
स्व से
रखो परिचय
शेष / अशेष से
रखो अपरिचय /
स्व परिचय
स्वाधीन
आनंद का
स्थान है,
पर-परिचय
दुःख/क्लेश की
खान है।
- आचार्य विशुद्धसागर मुनि
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
शांतिमय सुख
चाहिये तो
पर कर्त्तापन से
दृष्टि
हटाइये।
कर्त्तापन
पक्षपात का स्थान
नियत है
पक्षपात
जहाँ रहेगा
वहाँ
राग-द्वेष
होगा
पक्षपात से शून्य
राग-द्वेष विहीन भाव
ही है माध्यस्थ भाव।
- आचार्य विशुद्धसागर मुनि
(स्वानुभूति)

विमुक्ति-मार्ग-प्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।

चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ।।6।।

अन्वयार्थः (प्रभो) हे नाथ (विमुक्ति मार्ग-प्रतिकूलवर्तिना) मोक्षमार्ग के प्रतिकूल आचरण करने वाले (दुर्धिया) दुर्बुद्धि वाले (मया) मेरे द्वारा (कषायाक्षवशेन) कषाय और इंद्रियों के वश होकर (चारित्र-शुद्धेः) चारित्र की शुद्धि का (यत् लोपनं) जो विलोप (अकारि) किया हो। (मम) मेरा (तत्) वह (दुष्कृतम्) दुष्कृत (मिथ्या) मिथ्या या झूठ (अस्तु) हो।

सामायिक देशना

हे नाथ! मोक्षमार्ग, रत्नत्रय मार्ग, निर्ग्रन्थ मार्ग के प्रतिकूल मैंने किंचित् भी आचरण किया हो, मुझ दुर्बुद्धि के द्वारा कोई ऐसा काम हो गया हो, कषाय के वश में पता नहीं चलता क्या से क्या कह बैठता है। जब ठण्डे हो, तभी सोच लिया करो। विषय-कषाय के वश में होकर चारित्र शुद्धि का लोप हो गया हो तो हे प्रभु! मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या हो।

आचार्य अमितगति स्वामी परमतत्त्व की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि एकत्व-विभक्त चिद्रूप आत्मा की प्राप्ति चाहिए तो ज्ञानी! निज की निन्दा करना सीखो, आलोचना करना सीखो। लोचन तभीतक सुन्दर रूप दिखा पाते हैं, जब तक उसमें कंकड़ कीचड़ नहीं है। जिसके नेत्र में कंकड़ है उसको दो पुरुष दिखते हैं, धूमिल-धूमिल दिखता है। जब आँख ही साफ नहीं है, तो आत्मा साफ कहाँ से होगी? आँख साफ करो। जिसको पीलिया रोग है, उसको हर वस्तु पीली नजर आती है। वस्तु पीली नहीं है, वस्तु में दोष नहीं है, दोष तो तेरी दृष्टि में है। वस्तु को जो बदलने का प्रयास करता है, वह दुनियाँ का सबसे अज्ञ प्राणी है। वस्तु को बदलने का प्रयास किंचित् भी मत कीजिए। यदि बदल सको तो अपनी दृष्टि बदल लीजिए। वस्तु तो अविकारी है। जितने विकार हैं, दृष्टि से संबंधित हैं। एक जीव को कोई पुत्र कह रहा है, कोई पिता कह रहा है, कोई भाई कह रहा है, कोई जमाई कह रहा है, जबकि वो एक ही है। एक व्यक्ति में इतने धर्म नजर आ रहे हैं। उस व्यक्ति का दोष नहीं है। जिसने जिस संबंध की दृष्टि से देखा है, उसको व्यक्ति उस रूप में दिखाई दे रहा है। व्यक्ति तो व्यक्ति है। किसे सुधारना? वस्तु पर है, व्यक्ति पर है, जबकि दृष्टि तेरी निज है। मोक्षमार्ग पर (अन्य) निमित्तों का नाश करके नहीं बनता। मोक्षमार्ग वस्तुओं का विनाश करके नहीं बनता। मोक्षमार्ग परनिमत्तों से दृष्टि मोड़कर बनता है। यदि कोई अज्ञ यह कहे किलारियाँ न रहें तो मैं ब्रह्मचर्य का पालन करूँ- ज्ञानी! तेरा ब्रह्मचर्य पले या न पले, पर जगत की हिंसा के भाव

क्यों कर रहा है? तू जगत की नारी को माँ के रूप में देखना प्रारंभ कर दे। बस, दृष्टि बदलने की आवश्यकता है, वस्तु बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। हे बाहुबली! जब दृष्टि राग से मिश्रित थी, तब सगे भाई को उठाकर घुमवा दिया था। जल, मल्ल, दृष्टि तीनों युद्ध में पराजित कर दिया था और इतने अहं में डूब गए थे कि सगे भाई भरत चक्रवर्ती को घुमा दिया था। हे मान! तूने अपने सगे भाई को भी नहीं देखा। प्रथम तीर्थेश के पुत्र, प्रथम चक्रवर्ती के भाई, प्रथम कामदेव। और काम क्या था, काम क्या कर रहे थे? संबंध तब तक है, जब तक मान नहीं आया और मान आ गया तो सारे संबंध एक क्षण में विलीन हो गए। भैया तभी तक दिखता है, जब तक कषाय नहीं है। लोभ, मान तो सबको भुला देता है। सबको भुलाये तो भुलाये, शिव तक को भुला देता है। बेटी से माँ की प्रीति कब तक है? जब तक श्री नहीं दिखती है। पुत्र से पिता की प्रीति तब तक है, जब तक धन नहीं दिखता है। विश्वास रखना, सगे पिता को भी पुत्र घर से बाहर निकाल देता है। लोकव्यवहार में बाहर निकाल पाये या न निकाल पाये लेकिन जब सेवा का समय आता है तो पुत्र सेवा करते-करते भी कितनी बार पिता को मार चुका होता है- 'क्या मैं ही सेवा करूँगा?' एक माता-पिता दस पुत्रों को पाल लेते हैं, परंतु दस बेटे एक वृद्ध माता-पिता को नहीं पाल पाते हैं। ऐसे बेटों को धिक्कार हो। जब नौ माह की पीड़ा झेल रही होगी माँ, उस समय ये नहीं सोच रही होगी कि बेटा! तुम जन्म लेकर मुझे ही घर से बाहर निकालोगे। पर हे माँ! तू रुदन मत करना, बेटे का दोष नहीं है। तूने जैसे कर्म का बन्ध किया था, उदय में वैसा आया है। रोने का समय नहीं है। अश्रुपात करके नवीन कर्म का आस्रव करके पुनः संसार की वृद्धि मत कर लेना। हे पिता! यदि तेरा पुत्र तुझे घर से निकाले, तो तिलक कर देना और कहना, बेटा! धन्यवाद, बहुत अच्छा हुआ। तू सेवा करता रहता तो ये राग मुझे बांध कर रखता। आज तूने मेरे साथ बहुत अच्छा किया है। ये घर का राजतिलक तेरे सिर पर है आज। अब मैं बिल्कुल निःसंग होकर जा रहा हूँ। यदि तू सेवा करता होता और मैं मुनि भी बनता, तो मन में यह भाव रहता कि मेरा बेटा कैसा होगा? तूने मुझे पूर्ण मुक्त कर दिया है, बेटा! तू मेरा परम उपकारी है। हे भरतेश! क्षायिक सम्यक्त्व कहाँ चला गया? ज्ञान-विज्ञान तभी तक दिखाई देते हैं, जब तक कषाय नहीं सताती है। सारी समझ तभी तक रहती है, जब तक कषाय नहीं सताती। जिस दिन कषाय भड़कती है, तब सारी समझ पता नही कहाँ पलायन कर जाती है।

तीर्थंकर की आराधना करनेवाला, समवसरण में शीश झुकानेवाला, प्रधान श्रोता बनकर तीर्थंकर की वाणी सुननेवाला, भरतेश! तेरा ज्ञान कहाँ चला गया? जब भरत हार गए बाहुबली से, तब दृष्टि चली गई चक्र के ऊपर। हे नरोत्तम! चक्र ने अपनी मर्यादा नहीं छोड़ी, पर आपने अपनी मर्यादा छोड़ दी। आप नरपुंगव कहलाते हो, चक्रवर्ती कहलाते हो। मनुष्य के सम्राट

नहीं, इन्द्र हो। हे मनुष्यों के इन्द्र! तू क्या कर गया?अपमान क्या नहीं करा देता? मान क्या नहीं करा देता? ज्ञानी! संताप से बड़ा जगत में कोई दु:ख नहीं है। देह की पीड़ा झेली जा सकती है, परंतु मानसिक पीड़ा से बढ़कर कोई पीड़ा नहीं। सारे विश्व में शरीर की पीड़ा से पीड़ित बहुत कम लोग हैं, मानसिक पीड़ितों की संख्या असंख्य है। बच्चे-बच्चे से पूछ लो, मानसिक पीड़ा से पीड़ित हैं। भरत! आप मर्यादा भूल गये। चक्रवर्ती का चक्र अपने वंश के ऊपर नहीं चलता। चरमशरीरी बाहुबली! ये लड़ाई किस बात पर हो रही थी?

पेट की भूख तो थाली से मिट जाती है, परंतु मान की भूख किसी थाली से नहीं भरती। मान जीवन में सबसे खोटी वस्तु है। घोर तपस्वी जीव भी ख्याति, लाभ, पूजादि चाह में संयम को शून्य कर लेता है। संयम के मार्ग पर तुमने सबकुछ छोड़ दिया। घर छोड़ दिया, पुत्र छोड़ दिया, स्त्री छोड़ दी, नगर व देश भी छोड़ दिया, लेकिन मान नहीं छुटा तो कुछ भी नहीं छूटा। आचार्य सोमदेव सूरि ने लिखा है 'चतुर्थकाल का योगी एक हजार वर्ष तक तपस्या करे और पंचमकाल का मुनि एक दिन की तपस्या करे, दोनों का फल बराबर मिलता है। कारण क्या है? वहाँ सब अनुकूलतायें थीं, आज यहाँ प्रतिकूलताएँ हैं। लेकिन दया तब आती है योगियो! तुमने पूरे समुद्र को भुजाओं से पार कर लिया हो और गोष्पद में आकर डूब गया। हे योगीश्वर! गृहस्थी का सागर पार कर लिया और अहंकार, मान, पूजा के गड्ढे में आकर डूब गये। इस युग में सर्वाधिक भूख चल रही है, कि मेरा यश कैसे फैले। आज रिक्शा चलानेवाला, झाड़ू लगाने वाला भी यश चाहता है कि मैं अच्छे से झाड़ू लगाता हूँ- आप ये मत सोचना कि हम ही सब कुछ हैं, क्योंकि राज करने की भूख सबके अन्दर है। पर राज्य करेगा तो नाना पर्यायों में डूबेगा, स्व पर राज्य करेगा तो सिद्धालय का स्वामी बनेगा। बाहुबली ने भैया को उठा लिया और पटकने का विचार किया। वस्तु कहाँ बदली? जब भी बदली, दृष्टि ही बदली। दूसरा क्षण था जब इस धरा के पीछे भैया को उठा तो लिया, लेकिन सावधानी से धरा पर धर दिया। ये अक्षौहिणी छूट जायेगी, पृथ्वी छूट जायेगी।

भैया! ध्यान से सुनना, कितने भी विशाल भूखंड के स्वामी बन जाना, लेकिन जब तुम यहाँ से विदा होगे, तब एक प्रदेश भी लेकर नहीं जा पाओगे। जितने राज्य-वैभव के लिए जीवों की हिंसा चल रही है, उनसे भी कह देना कि तुम क्रूर कर्म करके, कत्लखाने खोलकर, घोर पाप करके नारकी तो बन जाओगे, लेकिन इस धन का कण मात्र भी साथ लेकर नहीं जा पाओगे । आज अहिंसक समाज को विचार करने की आवश्यकता है। अनुमोदना उसी की करना, जो अहिंसा की अनुमोदना करे। जो अहिंसा की अनुमोदना नहीं करता है, उसकी पेटी में कागज मत डालना, बटन मत चटकाना। उनको मना नहीं कर सकते हो, लेकिन अपनी

स्वतंत्रता का प्रयोग तो कर सकते हो। विवेक से काम लो। बनाकर बिठाला किसने? आज नहीं मान रहे हो, लेकिन ऐसा दिन भी आयेगा जब तुम हमारे द्वार पर आओगे मनाने, तब हम भी आपकी नहीं मानेंगे।

जीवन में प्राणों की आहुति दे देना, सल्लेखना-मरण कर लेना पर उन द्रव्यों का उपयोग मत करना यदि महावीर की अहिंसा का पालन करना चाहते हो तो। उनका उपयोग ही जीवों के घात का कारण है। बाहुबली से पूछ लेना, जब राग था तो पूरा पोदनपुर नजर आ रहा था। जब राग था तो भरतेश को छहखंड दिख रहे थे। जीवन के किसी भी पल में वैराग्य उमड़ सकता है। समरभूमि वैराग्यभूमि नहीं थी। वैराग्यभूमि बनाने की आवश्यकता नहीं है, वैराग्य लाने की आवश्यकता है। एक क्षण समरस्थल था, दूसरे क्षण वैराग्यभूमि बन गया। बेटा सोम का हाथ पकड़ा बाहुबली ने और भैया भरत के हाथ में सौंप दिया। 'मेरे भैया! आज से बेटा आपका है।' वस्तु कहाँ बदली? वही पोदनपुर था, वही सोम था, वही भरतेश थे। चल दिये जंगल की ओर। भीतर का बोध हुआ, सो आत्मा का शोध हुआ। जब तक भीतर का बोध नहीं है, तब तक आत्मा का शोध संभव नहीं है। कीर्ति की खाई में मत डूब जाना। भैया! कभी मुनि बनने के भाव आयें तो सबसे पहले ख्याति, लाभ, पूजा का त्याग कर देना। यश, कीर्ति तेरी होगी और तू कमरे के अंदर भी बैठा होगा, तेरा नाम वहाँ भी होगा। हल्ला करने की आवश्यकता नहीं है, सुगंध भरने की आवश्यकता है। हे ज्ञानी! धूपदान की धधकती अग्नि में धूप डालकर, ढँककर, घर के अंधेरे कोने में रख आना। आँख किसी की पहुँचे या न पहुँचे, परंतु सुगंध सबकी नाक में पहुँच जायेगी। ऐसे ही ज्ञानी! तेरे पास यशःकीर्ति की सुगंध है और कितना ही कोई तुमको ढंकना चाहे, छिपाना चाहे, वो छुपनेवाली नहीं है, वह तो प्रकट होगी ही। यश की आकांक्षा मत करो। आप तो पुण्य की धूप बढ़ाओ। हमारे तीर्थंकर भगवन्त गये तो कहाँ पहुँचे? सम्मेदशिखर गये, पारसनाथ टोंक देखी, सुवर्णभद्र कूट पर गये, भगवान् चन्द्रप्रभ के ललित कूट को निहारा क्या? आज तो फिर भी साधन हैं, जब तीर्थंकर भगवान गये होंगे तब बियाबान घनघोर जंगल होगा।

जो जगत से परिचित होता है तो वह स्वयं से अपरिचित हो जाता है। जो जगत से अपरिचित होकर बैठता है, एक दिन ऐसा आता है कि विश्व परिचित हो जाता है। जो दुनियाँ को जानने की भावना रखता है, वह दुनियाँ को जान नहीं पाता है और जो दुनियाँ को भूलकर बैठ जाता है, वह केवली भगवान् बन जाता है। जो जानने के लिए बैठता है, वह जान नहीं पायेगा। जो न-जानने को बैठ जायेगा, विश्वास रखो, वो नियम से सारे विश्व को, सारे द्रव्यों की सभी पर्यायों को जानेगा।

सबसे बड़ी भूल कषाय है। हे प्रभु! मेरे द्वारा कषाय के आवेश में आकर मोक्षमार्ग की विराधना हो गई हो, तो वह मिथ्या हो। स्वप्न में कभी जिनदेव की अवहेलना हो गई हो, स्वप्न में जिनवाणी की अवहेलना हो गई हो, जब तक लोचन खुले हैं, तब तक आलोचना कर लेना। लोचन बन्द हो गये, आलोचना नहीं कर पाये, तो नियम से दुर्गति होगी। इससे तीर्थंकर भी नहीं बचा पायेंगे आपको। भविष्य में ऐसा युग भी आयेगा कि कोई दिगम्बर मुनि कहने को भी नहीं मिल पायेगा। आनंद इस बात का है, हे परमेश्वर! आप हो या न हो, लेकिन आपकी मुद्रा नजर आ रही है, पंचमकाल का चमत्कार यही है।

काले कलौ चले चित्ते, देहे चान्नादिकीटकेछः।
एतद् चित्तचमत्कारः, जिनरूप धरा नराः।। (यशश्तिलकचम्पू)

पंचमकाल में किसी देवी-देवता के चक्कर में, चमत्कार में अपने आप को लुटाकर मत बैठ जाना। पंचमकाल का कोई चमत्कार तो है। कलिकाल में चित्त चलायमान है, देह अन्न का कीड़ा बना हुआ है, ऐसे खोटे काल में भी अरहन्त की मुद्रा धारण करने वाले दिगम्बर नर दिखाई दे रहे हैं, यह पंचमकाल का चमत्कार है। 'नमोऽस्तु शासन' जयवन्त हो रहा है। न गंडा, न ताबीज, न अंगूठी, न मुद्रा। ये कुछ नहीं। सब अयथार्थ हैं, ढोंग हैं। दुनियाँ के शनिग्रह उतारनेवाले से पूछ लेना, ज्ञानी! तूने कितनों को मालामाल कर दिया और तू बाल्टी लिए आज तक घूम रहा है। हमारे पंडित दुनियाँ के नवग्रह उतरवा रहे हैं। हे ज्ञानी! इन ज्योतिषियों से कह दो कि जब तुम सबके उतार देते हो, तो सवा रुपया क्यों माँगते हो? अपना क्यों नहीं उतार लेते हो? दुनियाँ के तन्त्र-मंत्र में डूबकर श्रद्धा के तन्त्र को मत छोड़ देना। सम्यक्त्व एक बार चला गया तो मिलना बहुत दुर्लभ है, अत्यन्त दुर्लभ है।

''चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू शरणं पव्वज्जामि, केवलीपण्णत्तो धम्मं सरणं पव्वज्जामि।''

बस, इनकी शरण में चले जाना जब तक व्यवहार में हो। निश्चय में पहुँचो तो 'अप्पा सरणं पव्वज्जामि।' मैं ध्रुवधाम ज्ञायकस्वभावी भगवान- आत्मा की शरण में जाता हूँ। परंतु जीवन में कभी भी कहीं भी दोष आया हो, निमेष मात्र काल भी दोष आया हो, तो भैया! प्रायश्चित्त लेकर ही जाना। निधत्ति, निकाचित कर्म का बन्ध होता है, तो भगवान भी नहीं छुड़ा पायेंगे। एकेन्द्रिय की रक्षा की बात कर रहे हो, लेकिन घर में पिंजड़ों में पक्षियों को पाल रहे हो। घरों में कुत्तों को पाल रखे हो तो उनकी स्वतंत्रता का हनन कर रहे हो। सीता से पूछ लेना। कबूतर-कबूतरी को पृथक् करा दिया था, उसका बंध ऐसा हुआ कि सीता की पर्याय

में पति का वियोग हुआ था। मंदिरों के जितने ट्रस्टी बैठे हों, इन पदों के राग में आकर स्वपद को मत भूल जाना। कोई मंदिर के दर्शन करने आ रहा हो, आपने देख लिया, मंदिर बंद करने का भी समय हो गया हो तो दर्शन कराके बन्द करना, लेकिन कर्म का बन्ध मत करना। बड़े-बड़े तीर्थों के ट्रस्टी जो मंदिर के द्रव्य पर दृष्टि रखे रहेंगे, उनके परिवार में वंश में कहीं आधे पागल, लंगड़े, कुष्ठी आदि मिल जायेंगे।

बड़े सँभलकर रहना। ये देव, शास्त्र, गुरु अग्नि हैं। जब भी रोटी सिकेगी तो कहाँ सिकेगी? अग्नि पर सिकेगी। जब भी रोटी जलेगी तो कहाँ पर जलेगी? अग्नि पर जलेगी। फेरते रहोगे तो सिक जाएगी और स्थायी रख दिया तो जल जाएगी। ऐसे-ही पंचपरमेष्ठी के पादमूल में आकर श्रद्धाभक्ति कर लेना, लेकिन उनको अपना मत बनाना और उनके बनके मत रहना। उनकी वन्दना मात्र करना, अपना नहीं बनाना। वे राग के स्थान नहीं हैं, वे भक्ति के स्थान हैं। उनके बनकर मत रहना, वे किसी के होते नहीं हैं, तो तुम्हारे क्या होंगे? समझो, ये ध्रुव सत्य है। भैया! क्यों महाराज पर भरोसा करता हैं? जिनने अपने जन्म देने वाले माता-पिता को छोड़ दिया, तुझे क्या अपना बनायेंगें उनकी वंदना करो, मत बंध मत करो। जितना समय मिले, वंदना में लगाओ।

सभी जिनालयों की वंदना कर लेना। क्या मालूम किसी जिनबिम्ब को देखकर निज का बिम्ब झलक जाये, तो जिनबिम्ब गौण हो जायेगा, निजबिम्ब प्रधान हो जायेगा। ताली पीटना भी अनुमोदना है। ये भी तुम्हारी कर्मनिर्जरा का साधन है। अन्दर में आह्लाद आता है। 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' हे प्रभु! मेरे माध्यम से किसी जीव को कष्ट पहुँचा हो, किसी परमेष्ठी की अवहेलना हुई हो, तो 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं।' आचार्यभगवान् कह रहे हैं प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त। महाराज! प्रायश्चित्त दे दो। प्रायश्चित्त, ये कोई प्रसाद नहीं है, अन्दर में ये तो देखो। कि तुमसे कोई दोष हुआ है, वह दोष तुमको महसूस हो रहा है कि नहीं? जिसको दोष महसूस होने लगेगा, वह पुनः प्रायश्चित्त लेने का पात्र ही नहीं बचेगा, क्योंकि एक बार वह प्रायश्चित्त ले लेगा, फिर दुबारा वह पाप करेगा ही नहीं।

चलो, हो जायेगा, ले लूँगा महाराज से प्रायश्चित्त, माला ही तो देंगे। ज्ञानी! तुझे माला दिख रही है, उस जीव के तो प्राण ही चले गये। चींटी खत्म हो गई, दे देंगे कायोत्सर्ग। एक क्षण तू चींटी बनकर तो देख। कैसे फड़फड़ा रही है वो? उसका तो जीवन खो गया। माँ! कहलाती हो, मात्र जन्म देकर तू माँ बन गई तो कौन-सा बड़ा काम किया? वो तो चिड़िया भी बन जाती है। पिता! पिता कहला रहे हो, एक दो को जन्म दे दिया तो पिता बन गए। ये तो पशु-पक्षी भी देना जानते हैं। यदि जनक-जननी के परिणाम तुम्हारे हैं, तो सोचना चाहिये

कि जगत के पक्षी मात्र मेरी सन्तान हैं, मैं उनका सगा हूँ। किसी जीव को कष्ट नहीं होना चाहिए। इधर भगवान की पूजा चल रही है, उधर घर की दीवार में किसी ने धक्का मार दिया तो गाली देने पहुँच गया। दीवाल की ईंटें तो पुनः ठीक हो जायेंगी, पर विशुद्धि की दीवाल ठीक होने वाली नहीं। भवन गिर भी गया तो पुनः बन सकता है, पर विश्वास रखना, कोटि-कोटि द्रव्य के खर्च करने पर भी जो विशुद्धि के अंश तेरी आत्मा में जागृत हो रहे थे, उनका मिलना बड़ा दुर्लभ है। कोई व्यक्ति गरजने बरसने आ जाये, उससे कह देना, तुझे जो चाहिये सो ले जा, परंतु मेरे अंतरंग में अशुद्धि मत फैला, क्योंकि मैंने भव-भव की तपस्या के प्रभाव से आज तक परिणाम विशुद्ध बनाये हैं। यदि तूने वो ही छीन लिये, तो मेरे पास कुछ भी नहीं बचा, मैं तो कंगाल हो गया।

हे श्रावको! योगियों के पास जब भी जाना विशुद्धि की बात लेकर जाना। ये बेचारे तो बुद्धिपूर्वक सब छोड़ बैठे हैं। उन बेचारों के पास कुछ तो बचा नहीं है। कपड़े लफड़े कुछ भी नहीं बचे। जिससे वो मुस्करा रहे थे, यदि वही तूने छीन लिया तो अब उनके पास क्या बचा? निर्धन हो गये। तपस्वी के पास कोई वैभव है तो परिणामों की विशुद्धि मात्र है। यदि परिणामों की विशुद्धि नहीं आ पा रही है, तो वह भिखारी ही कहलायेगा। इसीलिए किसी योगी/मुनि के पास भीख माँगने मत जाना कि कोई तंत्र-मंत्र, गंडा-ताबीज दे दो, समय दे दो। मुनि कैसे बनना पड़ता है? ये समझने के लिए समय ले लेना और कोई समय लेने मत आना। ये मुनि हैं, इनको मुनि ही रहने दो, इन्हें मुनीम मत बनाओ। आज विश्व की पवित्र मुद्रा दिगम्बर मुद्रा ही है। इससे पवित्र मुद्रा जगत में कोई अन्य दृष्टिगोचर होती नहीं है। हजारों लोगों के होने पर भी ये भविष्य के सिद्धभगवान् हैं। इन शरीरों में अशरीरी को निहारो। घर में व्यक्ति रहता है, व्यक्ति 'घर' नहीं होता है। देह में आत्मा रहती है, आत्मा 'देह' नहीं होती है। 'अशरीरी स्वरूपोऽहं'। आँखें बन्द कर चिन्तन करो, मैं अशरीरी भगवान-आत्मा हूँ। उपदेश किसलिए सुन रहा हूँ? मात्र अशरीरी होने के लिए सुन रहा हूँ। कितनी विधियाँ हैं? मौसम के अनुसार विधि बदलती है, वस्तु नहीं बदलती। जीवन में कभी मट्ठा बनते देखा है? गोपिका मथानी से मट्ठे को मथ रही है। मक्खन निकालने के लिए पानी के छींटे मारती है। गर्मी में मक्खन निकालना हो तो शीतल पानी के छींटे मारती हो। शीत में मक्खन निकालने पर गर्म पानी के छींटे मारने पड़ते हैं। निकलता मक्खन है, पर समझो ध्यान की धारा। काल बदलता है तो कला बदलती है लेकिन वस्तुव्यवस्था अभंग है, वह भंग नहीं होती। प्रायश्चित्त बदलता है। शीत-उष्ण काल को देखकर प्रायश्चित्त बदलता है, छींटे बदलते हैं, लेकिन मथानी नहीं बदलती, मटकी नहीं बदलती, गोपिका नहीं बदलती। निन्दा, गर्हा नहीं बदलती।

प्रायश्चित्त बदलता है, लेकिन निन्दा, गर्हा, आलोचना तो पूरी ही करनी पड़ती है। ऐसा नहीं है कि पंचमकाल को देख करके आलोचना में भेद आ गया हो। जैसे बेटा मार्ग में जो-जो देखकर आता है, अपनी माता से सबकुछ कह देता है। उसे मालूम नहीं है कि क्या कहना चाहिये। ऐसे ही शिष्य वही होता है, जो अपने गुरु के चरणों में बालकवत् सबकुछ कह देता है। जिनने छिपाकर रखा, ऐसे तुम घोर-घोर तपस्या कर लोगे, पर समाधिमरण नहीं होगा। कितने ही उपवास कर लेना, नीरस कर लेना, घोर तपस्या कर लेना, लेकिन समाधि फिर भी नहीं होगी।

मार्ग कितना भी अच्छा हो, शरीर ठीक है, पर पैरों में काँच/काँटे घुसे हुए हैं, तो पग मार्ग पर अच्छे से नहीं रखे जाते हैं। मोक्षमार्ग पर चरण तेरा अच्छा नहीं है, क्योंकि तेरे अन्दर शल्य बैठी हुई है दोषों की। जब तक शल्य निकलेगी नहीं, तब तक तेरे परिणाम शुद्ध नहीं होंगे एवं परिणामों की शुद्धि के अभाव में समाधि होती नहीं। एक बात ध्यान रखना, किसी से ऋण लिया हो, देने के परिणाम हों, तो चुका देना। जिस जीव ने दोष होने के पहले ही सोचा था कि मैं अपने जीवन में निर्दोष चर्या का पालन करूँगा, वह शिष्य अपने गुरु से दोष छिपायेगा नहीं। जिसने शुरू से ही शुरू कर दिया कि किसी ने देखा नहीं तो ठीक है, इतना तो चलता है। मोक्षमार्ग भी कहता है कि जब तेरे अपराध चलते हैं, तो मेरा शुद्ध मार्ग चलता है, अशुद्धों के लिए मेरे यहाँ कोई स्थान नहीं है। कुरूप को, कुबड़े को, निर्धन को राजकन्या वरमाला डालेगी क्या? उसे अपना पति चुनेगी क्या? जब कुरूप को राजकन्या नहीं चुनती है, तो ज्ञानी! जिसका मन कुबड़ा/कुरूप हो चुका है, स्व निन्दा/आलोचना से शून्य है, ऐसे पापी को मुक्तिकन्या क्या वरमाला डालेगी? मुक्तिकन्या की वरमाला चाहते हो तो मन को सुन्दर बनाओ। सुमन मत चढ़ाओ सु-मन चढ़ाओ। हे ज्ञानी! सुमन चढ़ाते-चढ़ाते ढेर लगा लिए, सु-मन बना लेता तो सुमन चढ़ाने की क्या आवश्यकता थी? सु-मन नहीं बनाया।

साता का उदय है तो जंगल में मंगल है और असाता का उदय है तो भवन में अमंगल है। वैद्य मंत्र द्वारा विष को अमृत बना देता है। वैद्य कुचला (संखिया) को संस्कारित करके उससे रोगों को दूर करता है। यद्यपि संखिया एक प्रकार का जहर होता है तथापि संस्कारों के माध्यम से वैद्य जहर को निर्विष कर देता है। आचार्य अमितगति स्वामी कह रहे हैं कि ऐसे-ही मुमुक्षु जीव दोषों की निन्दा, गर्हा, आलोचना करके अमृतभूत कर लेता है और दोषों का शमन करके परमात्मा बन जाता है। स्वसाक्षीपूर्वक दोषों की आलोचना करना 'निन्दा' है। धिक्कार हो, दुनियाँ मुझे साधु कहती है, दुनियाँ मुझे महान कहती है, मुझे श्रेष्ठ धर्मात्मा मानती है, पर मेरे परिणामों को किसने देखा?

मुझसे बड़ा पापी कौन होगा?

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

रावण के दोष दुनियाँ को मालूम चल गये, सो तुम उसका पुतला जला लेते हो। अपने मन से क्यों नहीं पूछते कि तुम पुतला जलाने के लायक हो क्या? काला चश्मा लगाकर आँखों की फूली को दुनियाँ की नजरों से बचा सकते हो, लेकिन स्वयं को मालूम होता है कि मेरी आँख में गड़बड़ी है। ऐसे-ही ऊपर से कितना भी दिखा लो, लेकिन स्वयं की आत्मा में गड़बड़ी है, सो है। जो है, सो है।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---XXX---

भो प्रज्ञ!
समत्व की साधना में
परम साधना है -
माध्यस्थ भाव।
माध्यस्थता है
एक महान साधना।
मध्यस्थ साधना के
आलम्बन से
संक्लेषण का
होता है अभाव
राग-द्वेष/पक्षपात से
रहित वृत्ति का
नाम है
मध्यस्थ भाव।
- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
राग-द्वेष भाव
हीनता-दीनता
उत्सुकता
भय, शोक
रति-अरति
ये सभी भाव
कराते हैं
समता का अभाव।
समता/सामायिक को
सँभालकर
चलना
नहीं-तो
दीर्घ संसार का
साधन
हो जायेगा।
- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भावना द्वात्रिंशतिका

विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं, मनो-वचः काय-कषाय-निमित्तम्।

निहन्मि पापं भव दुःख कारणं, भिषग्विषं मन्त्र-गुणैरिवाखिलम् ।। 7 ।।

अन्वयार्थः (भिषक्) वैद्य (मन्त्र-गुणैः) मन्त्र गुणों के द्वारा (अखिल विषं इव) जैसे समस्त विष को नष्ट कर देता है उसी प्रकार (अहं) मैं (विनिन्दनालोचन-गर्हणैः) निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा (मनो-वचःकाय-कषाय-निमित्तम्) मन, वचन, काय और कषाय के निमित्त से (भव-दुःखकारणं) संसार के दुःखों के कारणभूत (पापं) पाप को (निहन्मि) नष्ट करता हूँ।

सामायिक देशना

स्वसाक्षीपूर्वक आलोचना 'निन्दा' है तथा धर्मात्माओं के बीच में जो अपनी आलोचना है, वह 'गर्हा' है। गुरुचरणों में जो निवेदन किया है, वह 'आलोचना' है। पर इतना ध्यान रखना कि हर व्यक्ति के सामने अपने दोषों को मत कहना। भूल तुमने की थी, वो भूल थी। पर महाभूल ये की कि दूसरे से अपनी भूल कही। भैया! गुरु तो गुरु रहता है। आज तुम्हारी पट रही है, तब तक लोग छुपा रहे हैं। जरा कुछ हुआ, तो ढिंढोरा पीटेंगे। जीवन में सबसे अपना दोष नहीं कहना। मात्र जाकर गुरु से आलोचना करना। ये काल अच्छा नहीं है और गुरु भी देख लेना।

आचार्य में आठ गुण होते हैं। प्रायश्चित्त देने का अधिकार आचार्य मात्र को है। आजकल तो सभी प्रायश्चित्त देने लगे है। प्रायश्चित्तशास्त्र हैं, वे आज तक किसी को पढ़ने को नहीं मिल रहे। जब आचार्य अपने शिष्य को आचार्य बनाता है उसके पूर्व एकान्त में सबसे मांगलिक स्थान पर उनको गुप्त रूप में प्रायश्चित्त ग्रंथ पढ़ाता है। जिनका नाम रहस्य ग्रंथ है और मात्र गुरु शिष्य के बीच में रहते हैं वे ग्रंथ। उन ग्रंथों को सुनने का भी अधिकार नहीं है श्रावकों को। और श्रावक तो दूर हैं, सभी मुनिराजों को भी नहीं है। जो आचार्यत्व के नजदीक हैं, उनको ये आगमग्रंथ पढ़ाया जाता है प्रायश्चित्त शास्त्र। इसलिए जिस विद्या का जिसको ज्ञान नहीं है, जिसका अधिकार नहीं है, अनधिकृत चेष्टा कोई न करे। मुनि, आर्यिका, एलक, क्षुल्लक कोई भी प्रायश्चित्त देते हैं, ये अनधिकृत चेष्टा है। उस ग्रंथ का भी तुमको ज्ञान नहीं है, न्यायालय का बोध नहीं है। भैया! आपने अध्ययन किया है, तब वकालत करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। अध्ययन के अभाव में तुम क्या वकालत करोगे? अध्ययन के बाद तुम्हारा अनुभव चलता है।

लेकिन अनुभव तभी चलता है, जब अध्ययन होता है। ऐसे-ही आचार्य पद के पूर्व आचार्यत्व का अध्ययन कराते हैं। आचार्य विरागसागरजी महाराज जब मुझे प्रायश्चित्तशास्त्र पढ़ा रहे थे, तब पूरा कक्ष पैक था, पर्दा पड़ा हुआ था, उस कक्ष में मैंने अध्ययन किया था।

संघ की व्यवस्था में कोई प्रश्न की आवश्यकता नहीं है। 'पंचास्तिकाय ग्रंथ' उठाकर देखो। मुनियों के छह काल आये हैं। पहला काल दीक्षाकाल, दूसरा शिक्षाकाल। जो अभिनव मुनि है, उसको मंचों की ओर नहीं दौड़ना चाहिये, ग्रंथों की ओर देखो। जो ग्रंथों को नहीं देख पाते हैं, वे जीवन में विह्वल हो जाते हैं। मंचों की ओर नहीं, ग्रंथों की ओर निहारिये शिक्षाकाल में। शिक्षाकाल जब पूर्ण हो जाता है तब तीसरा काल आता है, गणपोषण-काल यानी वे संघ का संचालन करें और शिक्षा-दीक्षा दे सकते हैं, परन्तु उलझ कर न रहे जायें। चौथाकाल आता हे आत्मसंस्कारकाल। अब धीरे-धीरे सब व्यवस्थाओं पर न्यूनता करते हुए आगे बढ़े। अब संन्यासकाल सल्लेखना की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। जैसे जितने अच्छे स्कूल खोले जाते हैं उनमें जुलाई के महीने में पूरे वर्ष का सब लेखा-जोखा तैयार हो जाता है कि क्या-क्या करना है साल भर। वैसे ही मेरा सोच है कि जीवन का पूरा लेखा-जोखा दीक्षा के दिन ही कर लेना चाहिए कि कितने वर्ष तक क्या करना है। इसके बाद मौन लेकर सल्लेखना की साधना करना है। बड़ा अपयश है, कलंक है कि एक आचार्य पचासों मुनियों की सल्लेखना करा दे और आचार्य की सल्लेखना न हो। ये तो बहुत बड़ा कलंक हो गया। इस आसन पर ही दृष्टि न रहे, आत्म आसन पर दृष्टि रहे। ये काठ का आसन मेरी समाधि का साधन नहीं है। लगानेवाले जानें, देखनेवाले जानें। आसन मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। आचार्य विरागसागरजी ने बिठाया हे सिंहासन पर। मेरे लिए तो वे गुरुदेव हैं। मैं तो जो हूँ, सो हूँ।

आत्मसंस्कार-काल संन्यासकाल, अब अंतिम काल है उत्तमार्थ काल। 'छाछ त्याग पानी राखे, पानी तज संथारा' धन्य हो उस जीव के लिए बुद्धिपूर्वक वह जीव पानी का भी त्याग कर रहा हो। भगवान्! उस अंतिम दिन की स्मृतियाँ आ रही हैं। देखो, आचार्य आदिसागर महाराज, जिनकी सल्लेखना कराने आचार्य शान्तिसागर महाराज गए थे। धन्य हों वे आचार्य शान्तिसागर महाराज, जिन्होंने छत्तीस दिन तक सल्लेखना की आराधना की हो और धन्य हों आचार्य विमलसागर और ज्ञानसागरजी, जिन्होंने अपने पद को अपने शिष्य को कैसे सौंप दिया हो। बेटा! अब पकड़ो इसको, ये हमारे समाधि का साधन नहीं है। लगता हे वे नयन कितने महान होंगे, जिन नयनों ने ये दृश्य देखा होगा? गुरु अपने शिष्य को पद सौंप कर स्वयं सल्लेखना की ओर बढ़े। इस धरती पर जितने आचार्य भगवन्त विचरण कर रहे हैं, मेरी यही भावना है कि भगवन्। जो आचार्य शान्तिसागर, शिवसागर, आदिसागर, ज्ञानसागर आदि ने

किया है, बस, वर्तमान के आचार्यों की पीढ़ी वह ही करे। यही जैनदर्शन है। पद लेकर चले गए तो समाधि नहीं होती। किसकी हुई, किसकी नहीं हुई, इन विकल्पों में जिओगे तो भी समाधि नहीं होगी। इसलिए जगत की चिंता छोड़ो।

सामायिक में पाठ चलता है। एक बार सामयिक पाठ हो गया तो किसी की निन्दा-आलोचना के परिणाम हो ही नहीं सकते। निज निन्दा करो। जो पर की निन्दा करता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता। जो स्वयं की निन्दा नहीं करता है, वह सम्यग्दृष्टि नहीं होता।

''मन, वच, काय से उपार्जित, संसार के दुःखों के कारणभूत पाप को मैं निन्दा, आलोचना, गर्हा के द्वारा नष्ट करता हूँ। जैसे वैद्य मंत्र के द्वारा समस्त विष को नष्ट कर देता है।''

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी आत्मा की शुद्धि के मार्ग को 'प्रतिक्रमण' कहते हैं। श्रमण-परंपरा में प्रतिक्रमण एक शाश्वत परंपरा है। जब किसी का किसी प्रकार से व्रतों में अतिक्रमण हो जाता है, तब उसका प्रतिक्रमण किया करते हैं। निज की आलोचना, निज की निन्दा। निज निन्दा को स्वीकार कर पाना और निज के दोषों को स्वीकार कर पाना विश्व का बहुत बड़ा चमत्कार है। गलती को गलती स्वीकार कर लेना, दोष मान लेना ज्ञानी! इससे बड़ा कोई प्रायश्चित्त नहीं होता है। बाकी के प्रायश्चित्त बाद के विषय हैं। सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो चित्त की शुद्धि है। जिसकी चित्तशुद्धि करने की भावना होगी, वही प्रायश्चित्त लेने के परिणाय करेगा। जिसकी भव-संसति दीर्ध है जिसका संसार प्रचुर है, ऐसे जीव के परिणाम नहीं हो सकते। भैया! जिसका संसार दीर्घ है, उस जीव के परिणाम अपने दोषों को दोष स्वीकारने के होते ही नहीं है, निर्दोष होने के परिणाम ही नहीं होते हैं। पाप में ही मस्त है, पाप में ही आनन्दित है। आर्त्त-रौद्रध्यान जिसका स्वभाव बन चुका हो, ऐसे जीव के कभी प्रायश्चित्त लेने के परिणाम नहीं होते। ये तो उसी क्षण समझ में आता है। दोष होते ही अंतरंग में शोधन की भावना आ रही है तो समझना कि भवितव्यता पवित्र है। भूल से दोष हो सकता है। भूल से दोष हो जाये, कोई विकल्प मत करना, पर दोष हुआ है, ये भूल मत जाना।

आचार्यभगवान् क्या कह रहे हैं? जैसे विष को मंत्रवादी वैद्य निर्विष कर लेता है, ऐसे-ही हुए-दोष को निन्दा-आलोचना के माध्यम से मुमुक्षु जीव स्वयं निर्दोष कर लेता है। आलोचनाएँ पवित्र नीर हैं। बाहर के पानी से, दुनियाँ के लोग नदियों में स्नान करने जाते हैं। ये नदी के स्नान से शरीर का मैल धुल सकता है, परन्तु इन परिणामों को धोने का नीर निन्दा, गर्हा, आलोचना है। निन्दा कैसे हो? भैया ''हा दुट्ठ कयं'' हे प्रभो! मैंने दुष्ट कार्य किया।

आगे-पीछे कहीं नहीं देखने का। हम इतने गहरे जा चुके हैं पापप्रवृत्ति में, कि दूसरे को देखने का समय ही नहीं है। भीतर जाकर देखो, हाय मैंने दुष्ट कृत्य किया। शिशु अवस्था से लेकर पूर्वापर तक हाय! मैंने दुष्ट किया । हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह पाँचों पापों में लवलीन होकर 'हाय दुट्ठ कयं,' कितना दुष्ट कार्य किया है। एक दोष से बचने के लिए, दोष से ही बचने के लिए नहीं, एक दोष की निन्दा से बचने के लिए कोटि-कोटि दोष और किये हैं। एक असत्य को छुपाने के लिए कोटि-कोटि असत्य का प्रयोग करना पड़ता है। एक असत्य को छुपाने के लिए असत्य का ही आलंबन लेना पड़ रहा है। पर ध्रुव सत्य है कि अग्नि को छुपाने के लिए रुई का लपेटना कार्यकारी नहीं होता। अग्नि को रुई से छिपायेगा तो अग्नि और धधक जायेगी। ऐसे ही दोष को दोष से छिपाना चाहता है तो निर्दोष परमात्मा कब बन पायेगा? 'हा दुट्ठ कयं' यह स्पष्ट स्वीकार किया जाए।

एक अज्ञानी ने काम-कषाय के आवेग में आकर व्यभिचार-जैसा घोर पाप कर लिया। वो तो एक घोर पाप कर ही लिया, पर हे अज्ञानी! ये तूने क्या किया कि उस जीव के टुकड़े कराकर फेंक दिये। हे पापी। तूने पाप पर भी घोर पाप किया। एक पाप असंयम सेवन का किया है। यदि असंयम का सेवन कर ही लिया था, तो जीव को जन्म दे देते। हो सकता था कि ऐसा कोई महापुरुष जन्म ले लेता जो भविष्य में जिनशासन को जयवंत करता। परंतु क्या किया? आज एक जमाना चल रहा है कि दो बेटे दिख रहे हैं या एक बेटा दिख रहा है। इसका तात्पर्य ये नहीं समझना कि तूने एक ही बार पाप किया है। वे लोग अच्छे थे, भैया! बुरा लगे तो क्षमा कर देना, और लगे तो लग ही जाना चाहिए। वे पुराने बुजुर्ग अच्छे थे जिनके घर में दस-पाँच संतानें होती थीं। कम-से-कम पाप के बाद पाप तो नहीं किया और वे संतानें सनातन धर्म को आगे बढ़ा रही हैं। क्या तुमने ही देश का ठेका ले लिया है कम संतान का? यदि संतान नहीं बचेगी, तो सनातन धर्म कहाँ से चलेगा? पुनः घर-परिवार भरा-पूरा सुन्दर होता है। यदि आपके अन्दर धर्म है, तो बहुत अच्छा है कि असंयम का सेवन ही न करो, ब्रह्म के साथ जीवन जियो और ब्रह्म के साथ जीवन नहीं जी पा रहे हैं तो ज्ञानी! जीव को जन्म दो। पाप के बाद तो पुनः पाप मत करो। एक बार के असंयम में नौ कोटि जीवों का घात होता है। अब सोचो, हमने जीवन में क्या किया है? कम -से-कम जिनालय में अरहन्त देव के पादमूल में बैठ करके प्रतिक्रमण ही कर लिया करो कि स्वामी! मैंने दुष्ट कृत्य किया है।

ऐसी मैत्री भी मत करना जिससे मित्रता के राग में किसी बालक की हिंसा करना पड़ जाये, क्योंकि समयसार की रक्षा तभी होगी, जब चारित्र की रक्षा होगी और चारित्र की रक्षा

नहीं है तो समयसार की रक्षा कहाँ होगी? कृत, कारित, अनुमोदना को समझो । माँ! पता नहीं कितने भवों में बिलख जाओगी माँ बनने के लिए। यदि आपने किसी बहू-बेटी का गर्भपात में सहयोग भी किया है, अनुमोदना भी की है, प्रेरित भी किया है, तो विश्वास रखना, एक मनुष्य के बेटे के तुमने टुकड़े-टुकड़े करके फिंकवाया है, उस पाप का बंध कहाँ जायेगा? भैया! ध्यान रखना, किसी के घर में किसी ने आत्मघात कर लिया हो तो छह महीने का सूतक लगता है। ये कोई समझौते की बात नहीं है। पाप लगता है यानी लगता है। आजकल विद्वानों ने बदल दिया, मात्र माता-पिता को कह दिया, बाकी का सब गोल कर दिया भैया! ऐसा जिनवाणी में कहीं लिखा नहीं है। ये निजी सोच है। अध्ययन करें। छह महीने का सूतक लगता है, और सहज मरण हो तो बारह दिन का सूतक लगता है, तेरहवें दिन शुद्धि होती है। ये विषय अलग है कि तुम तीन दिन में निपटा लेते हो, लेकिन सूतक तो बारहवें दिन तक ही रहेगा। शुद्धि तेरहवें दिन ही होगी। ये शुद्धि की परंपरा का नाश मत कर देना। आगमिक व्यवस्था को खंडित मत कर देना। भावों की शुद्धि तभी संभव है जब द्रव्यशुद्धि होगी। बिना द्रव्यशुद्धि के भावों की शुद्धि नहीं होती है। अभिनव परंपराएँ मत निकाल लेना। अग्नि की आयु तीन दिन की होने के कारण तुम तीन दिन की शुद्धि करते हो, लेकिन ध्यान रखना कि ग्रंथों में मरण का सूतक बारह दिन का है। भगवान का पूजन-विधान का समय तो तेरहवें दिन ही होगा, तीसरे दिन नहीं होगा। बाकी शुद्धियाँ तीसरे दिन हो जायेंगी। जिसके यहाँ अपघात करके मरण हुआ है, उनकी छः माह बाद ही शुद्धि होगी।

ज्ञानी! थोड़ी मर्यादा रखो। मर्यादा बहुत आवश्यक है। समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर देगा तो पता नहीं क्या हो जायेगा। शुद्धि का पूरा ध्यान रखो। चार-पाँच दिन की जो माताओं की अशुद्धि है, उसका पूर्ण पालन होना चाहिए। सूतक-पातक का पूर्ण पालन होना चाहिए। यदि इनका पालन नहीं करता है तो मूलाचार, तिलोयपण्णत्ति में लिखा है कि वह जीव यदि धर्मकार्य भी करता है तो कुभोगभूमि व भवनत्रिक का पात्र बनेगा, लेकिन उच्च जाति का देव नहीं बन सकता है। कभी लोगों को लगता है कि मुझे दान देना ही है, आहार कराना ही है, और सोले का ध्यान कुछ नहीं है, तो उसके लिए स्पष्ट लिखा है कि अशुद्ध द्रव्य को अशुद्ध अवस्था में यदि आपने पात्रदान आदि किया है तो पुण्य तो मिलेगा, लेकिन वह पुण्य तुम्हारे लिए भवनत्रिक में ले जायेगा। भवनवासी या व्यन्तर बनायेगा, स्वर्ग का देव नहीं बन पायेगा। ज्ञानी! ये तो ठीक है, बारह दिन का सूतक, छः महीने का सूतक। लेकिन जिस कुटुम्ब में जिस परिवार में भ्रूण हत्या हुई हो, गर्भपात हुआ, हो उस कुटुम्ब में सूतक कभी भी समाप्त ही नहीं होता। प्रायश्चित्त लो जाकरके। श्वास निकलने के पहले प्रायश्चित्त ले लेना। लेकिन ऐसा भी

मत करना कि लालों का घात कराके कहूँ कि प्रायश्चित्त ले लूँगा। कभी भूल से दोष हो गया हो तो प्रायश्चित्त ले लेना। भावनात्मक ग्रंथ का वाचन नहीं होगा तो भावशुद्धि नहीं बनेगी। उपदेशों में हजारों की भीड़ लग जाती है, ताली पीट-पीट करके लोग चले जाते हैं और फिर ठेले पर खड़े होकर चाट खाते हैं 'हा दुट्ठ कयं'। नियोग मिला है, जितना मिला है उसका उपयोग कर लो।

एक आलू के अन्दर विराजे ''एगणिगोद सरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा। सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीद कालेण।।16।। (गो.जी.)'' अतीतकाल में जितने सिद्ध हो चुके हैं, उससे अनन्तगुणे जीव एक आलू के अंशमात्र में हैं। ज्ञानियो! वे जीव सिद्धत्व शक्ति से सम्पन्न थे। उनमें भव्य भी हो सकते हैं, ऐसे जीवों को तुम मुख में डालकर पेट में ले गये और ज्ञानी यहाँ कह रहा है कि मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ। ये शुद्ध-बुद्ध दशा कहने मात्र की नहीं है, करुणा भी तो आना चाहिए। द्रव्यानुयोग का अर्थ करुणा से रहित नहीं है। जीवदया तो धर्म का मूल है। धन्य हो श्रमणसंस्कृति, जयवन्त हो ऐसी वीतराग संस्कृति, जिसमें श्वास लेने को भी कहा कि सँभल कर लेना। यदि मंद श्वास से काम चल रहा हो तो ज्यादा श्वासें मत खींचना, क्योंकि श्वास लेने में भी जीवों की हिंसा होती है। लेकिन उसके बिना तुम जी नहीं सकते हो इसलिए कम-से-कम श्वासें लो, अधिक श्वासें तो मत खींचो। जितना ध्यान करेगा, श्वासें उतनी मंद होंगी। विश्वास रखना, निष्कषाय परिणाम जैसे-जैसे होते जायेंगे, आपकी श्वासें मंद होती जायेंगी। जंभाई, छींक में क्या है जैन परम्परा? जहाँ एक मुनिराज को जंभाई आये तो उसका भी प्रायश्चित्त लेते हैं, क्योंकि अँगड़ाई या जँभाई लेने में उष्ण श्वास बाहर निकला था और प्रमाद झलक रहा था। उसका भी प्रायश्चित्त होना था। छींक आ जाती है तो जो श्लेष्मा बाहर निकला, अन्दर के कीटाणु बाहर फिंके हैं। बाहर जहाँ पहुँचा, वहाँ सूक्ष्म जीवों की विराधना हुई है। भगवन्! मेरे शरीर के माध्यम से उत्पन्न हुए द्रव्य से इन जीवों का घात हुआ है। छींक आने पर जैनमुनि प्रायश्चित्त लेते हैं। जैनशासन में छींक का भी प्रायश्चित्त होता है, उस समय की करुणा कितनी विशाल होगी। अरिहंत मुद्रा को, जैनमुनि को मात्र पिच्छी कमण्डल लिए ही मत देखा करो। ये तो आँखों का विषय है। उनकी अन्दर की बात तो सुनो, तब कितनी श्रद्धा उमड़ती है। 'हे भगवन्। छींक तो सहज क्रिया है, मैंने नहीं ली है।' ज्ञानी! सहज क्रिया नहीं है ये, शरीर का विकार है और भैया! कीटाणु के कोई बल होता नहीं है। लघुशंका को जायें तो प्रायश्चित्त लें, दीर्घशंका को जायें तो प्रायश्चित्त लें। इनका तो कायोत्सर्ग करते-करते पूरा दिन निकलता है, शुभ क्रिया तो छूटती ही नहीं है सच्चे योगी की।

इन श्रावकों को जनेऊ क्यों धारण करना चाहिए? आप लघुशंका गये, चले गये। जिसने यज्ञोपवीत धारण किया है, वह कान पर रखेगा। ज्ञानी शुद्धि के बाद कायोत्सर्ग करेगा, बिना कायोत्सर्ग के नहीं उतारेगा। और जो व्रती मलमूत्र के विसर्जन/क्षेपण करते हुए भी मुख से बोल रहा है, वो ज्ञानावरणी कर्म के तीव्र बंध को प्राप्त होता है। आप लोग सब अच्छे से सुनना, क्योंकि ये बातें कभी-कभी प्रकट होती हैं। जिनको स्मरण नहीं आ रहा है, बुद्धि काम नहीं कर रही है, क्षयोपशम काम नहीं कर रहा है, याद नहीं हो रहा है, उसका कारण यह है कि आपने जिनवाणी का अविनय किया है। अशुद्ध अवस्था में मुख से बोलना जिनवाणी का अविनय है। आप कह सकते हैं कि शास्त्र की बात थोड़े ही बोल रहा था।

भैया! कुछ भी बोलो, जो भी आप बोलेंगे वह स्वर-व्यंजन से रहित तो होगा नहीं। यदि गाली भी दे रहे हो तो ज्ञानी! वह भी शब्द से बनी हुई है। अच्छा भी तो बोल सकते हो। ''हा दुट्ठ कयं'' मैंने दुष्ट कार्य किया है। आप लोगों ने तो कभी दुष्ट कार्य किया ही नहीं है ना? अब मत कहना किसी को कि तू दुष्ट है। हे ज्ञानी! एक लक्ष्य अपनी ओर ले जायें। मैंने जो दुष्ट कर्म किये, वही तो दुष्ट है। कौन दुष्ट है? ये सूत्र गौतमस्वामी कृत है। जरा अपने नेत्र बंद करके तो निहार लो कि मैंने अपने जीवन में क्या-क्या किया है? अंतर इतना है कि पूर्व के धर्म के संस्कार रहे, सो श्री जिनालय भी आते रहे, देव-शास्त्र-गुरु वंदना भी करते रहे और साथ में बंध भी करते रहे। ये तो परम पुण्य का उदय है कि कम-से-कम तेरे अंदर संस्कार तो रहे, सो यहाँ तक आ गये। जिनके ये भी संस्कार नहीं हैं, वे तो बेचारे निमग्न हैं पाप में। ये मत सोचना कि ये जैन नहीं है, उनको पाप-पुण्य नहीं लगता है, यह तुमको ही लगता हो। वे जानते नहीं हैं, इसलिए अज्ञानता में पापबंध को प्राप्त हो रहे हैं। जिस दिन उनको बोध हो जायेगा, तब उनको भी समझ में आ जायेगा 'हा दुट्ठ कयं।' इस भ्रम को भी निकाल देना, महाराज! हम तो जानते ही नहीं थे तो हमको क्यों पाप लगेगा? ज्ञानी! सुन ध्यान से- अचानक-अचानक तुझे पता नहीं था, किसी के मकान में तू गया और उनकी नल के पाइप में कहीं छेद था, आपके ऊपर पानी गिर गया, तुझे मालूम ही नहीं चला। तूने कहा भी नहीं था कि तेरे ऊपर पानी गिरे। किसी ने कहा भी नहीं था कि मैं तुम्हारे ऊपर पानी डालता हूँ। अज्ञानता में तेरे शरीर पर पानी आ जाये, ज्ञानी! शरीर गीला होगा कि नहीं, कपड़े गीले होंगे कि नहीं? हे मुमुक्षु! पानी चाहे अज्ञानता में गिरे या जानकर गिरे, पाप चाहे अज्ञानता में करो ज्ञानी! आत्मा तो पाप से गीली होगी-ही-होगी। बंध को प्राप्त होगी। कुछ लोगों का ऐसा उल्टा चिन्तन चलता है कि मैं तो नहीं जानता था, तो मुझे क्यों होगा? पाप-पुण्य की बातें वे लोग करें जो ज्ञानीलोग हैं। बातें तो ज्ञानी कर लेगा, लेकिन पाप-पुण्य न ज्ञानी को देखता है,

न अज्ञानी को देखता है। वह कहता है कि मैं तीर्थंकर तक को भी नहीं छोड़ता हूँ, तुम कौन होते हो? आस्रव होता है। जिनता विवेक विषाक पर आता है, उतना विवेक आस्रव पर आ जाये, तो विपाक पर क्यों रोना पड़े? विपाक का अर्थ होता है फलदान, अनुभाग। आस्रवभाव, आत्मभाव। किन-किन माध्यम से आस्रव किया है? इतने जीव बैठे हैं, इनके बारे में अच्छा सोच लो तो तुम्हारा क्या चला जाएगा? कुछ भी नहीं जायेगा। पर विश्वास रखना, बहुत-कुछ चला जायेगा। जो-जो भगवान बने हैं, वे सबके बारे में अच्छा सोचते रहे, सो उनका बहुत-कुछ चला गया। एक सौ अड़तालीस कर्म चले गये। तीर्थंकरप्रकृति का बंध अच्छा सोचनेवाले को होता है। जगत् के प्राणिमात्र के प्रति करुणाबुद्धि रखते हैं, वात्सल्य का भाव रखते हैं, सो उनके 148 कर्म नष्ट हो गये और वे सिद्ध बन गये। अच्छा सोचने में क्या जाता है? ज्ञानी! पाप चले जायेंगे पर, विश्वास रखो, पुण्य आयेगा। बुरा सोचनेवाले को क्या मिलता है? प्रातः के मांगलिक नगाड़े बजते हैं, मंदिरों में मांगलिक घंटियाँ बजती हैं, लोग भगवान् का अभिषेक करने पहुँचे होते हैं। उस समय में उनके गले जोर से चिल्लाने के कारण बाहर निकले मिलते हैं। क्या हो गया? कुछ भी तो नहीं हुआ, भैया! ये वही हैं जो प्रेम से, वात्सल्य से धर्मात्मा को गले नहीं लगा पाये। जो कानों से जिनवाणी नहीं सुन पाये, आज इनके कान पकड़कर कटघरे में खड़ा कर दिया गया है।

हाय भगवन्! ये क्या? जितने काँटेदार वृक्ष हैं, मालूम ये कौन हैं? जो तीर्थ भूमि में पहुँचे, निर्वाणभूमि में पहुँचे, धर्मक्षेत्र में पहुँचे, निर्ग्रन्थ-मुद्राओं को भी धारण कर लिए, लेकिन जिन्होंने कानों को काटना नहीं छोड़ा, दूसरे की निन्दा करना नहीं छोड़ा था, ये वे ही काँटे हैं। ज्ञानी! जो पहले कोई मुख से काटता था, कोई कानों में काटता था, आज उसके सर्वाङ्ग में काँटे-ही-काँटे हैं। वे बबूल के वृक्ष बने खड़े हुए हैं। 'प्रत्यक्षं किं प्रमाणम्?' देख लो, ये काँटों का वृक्ष है। ये जो जूही है, चम्पा-चमेली है, केतकी है, ये सामान्य जीव नहीं है। ये स्वर्ग से च्युत हुए जीव हैं। स्वर्ग के देव एकेन्द्रिय बने हैं। रौद्रध्यान से, आर्त्तध्यान से 'तहँ ते चय थावर तन धरे।' वे एकेन्द्रिय बने हैं। वे आज पुष्प के रूप में खिले हैं, क्योंकि इन्होंने जो निदानबंध कर लिया कि हे भगवन्! मैं मध्यलोक में जाऊँगा, तो नौ महीने गर्भ में कैसे रहूँगा? उन्हीं के फल से पुष्प बन गये। माताओ! इस पुण्यभूमि में बैठकर किसी के बारे में अशुभ मत सोचो।

एक बात पूछूँ? जिस परिसर में आप बैठे हैं, माना कि आज ही निर्णय हो जाए कि इस भूमि पर मंदिर का शिलान्यास होनेवाला है। तू जरा भी धर्मात्मा होगा और मुझे मलविसर्जन की जरा भी पीड़ा होगी, तो इस मुहूर्त में तू मलविसर्जन यहाँ नहीं करेगा। इतना पापी तो नहीं

है ये जीव, जिसे मालूम चल जाये कि यहाँ मंदिर बननेवाला है, वहाँ मलविसर्जन करें। नहीं करेगा। भैया! जिस भूमि पर जिनमंदिर बननेवाला हो, उस भूखंड को भी हम पवित्र मानकर मलविसर्जन नहीं करते। हे माँ! जिस भूमि पर जिनबिम्ब की रचना का प्रस्ताव आ जाये और आपको मालूम चल जाये, तो उस भूमि पर तुम कचरा नहीं फेंकती हो, मलविसर्जन नहीं करती हो। तो आज मैं आपसे कहता हूँ, कि ये मेरा भगवान्-आत्मा प्रस्तावित श्री जिनेन्द्र भगवान है। इस प्रस्तावित निज अंतरंग जिनालय में ज्ञानी! किसी प्रकार का पापपंक मत रखना। मालूम चल गया ये प्रस्तावित भूमि है, हे ब्रह्मचारियो! ये तेरा प्रस्तावित भेष है, तेरी आत्मा भगवान बननेवाली है। जब ज्ञानी! प्रस्तावित भूमि पर मल का विसर्जन नहीं हो सकता है, तब प्रस्तावित जिनदेव पर पाप का विसर्जन कैसा? भैया! कभी तुझे पाप करे का विकल्प आये तो प्रस्तावित जिनालय में नहीं करना, बाकी तू जाने। अब कहाँ करने जायेगा? मिथ्यात्व के मंद उदय आते ही, सम्यकत्व प्रकृति के प्रकट होते ही 'ज्ञानी' संज्ञा प्रारंभ हो चुकी है। आचार्य ब्रह्मदेव सूरि ने 'वृहद् द्रव्यसंग्रह' की टीका में स्पष्ट लिखा है कि सम्यग्दृष्टि जीव एकदेश जिन है- चतुर्थ गुणस्थानवर्ती। भैया! इन जिनों को देखकर मुस्करा देना, इन जिनों की अवहेलना नहीं करना। प्रतिमाधारी तो बहुत ऊँची बात है, जिसको देव-शास्त्र-गुरु पर श्रद्धान आ चुका है, वह देशजिन हो चुका है क्योंकि इसने मिथ्यात्व को जीत लिया है। मंदिर की भूमि में नींव खुद चुकी है, सम्यक्त्व प्रकट हो गया है और प्रतिमा धारण कर ली, एक मंजिल खड़ी हो चुकी है। फिर तो ग्यारह प्रतिमा में...। और फिर निर्ग्रन्थ अवस्था धारण कर ली, तब तो मंदिर में कलश चढ़ गया और जिसने सल्लेखना मरण कर लिया, उसने तो ध्वजा ही चढ़ा दी। ध्वजा फहरा गई उसके मंदिर पर। इसलिए भैया! जितने जीव यहाँ विराजते हैं, वे सब प्रस्तावित जिनदेव हैं। इनके प्रति अशुद्ध भाव मत लाना। कभी भी निन्दा/अवर्णवाद नहीं करना। उनके अगले भाव पवित्र हैं।

भैया! आज तो एक काम करो, तुम रागी तो हो ही, कोई तिलक वगैरह का त्याग तो है नहीं। भैया! केशर या चंदन का घोल बनाकर पकड़ा दो और सभी के माथे पर लिखवा दो, प्रस्तावित अरहन्त देव। व्यवहार में आप 'प्रस्तावित कॉलेज' ऐसा क्यों लगा देते हो? जिससे कोई दूसरे उपयोग में न लें, कोई कब्जा न कर ले। ऐसे ही मैं क्यों लिखवा रहा हूँ 'प्रस्तावित जिनदेव'? जिससे फिर कोई जीव दूसरे काम में न ले-ले इसको। कोई शादी न करा ले, कोई व्यभिचार न कर ले, कोई खोटे काम न कर ले। ये प्रस्तावित जिनदेव हैं। युवा व्यक्तियों के चेहरे पर भी लिख देना भैया! लोग पढ़ेंगे तो कहेंगे कि इनसे कुछ मत बोलो, भैया! ये प्रस्तावित जिनदेव हैं। ऐसे पवित्र परिणाम जिसके हो जायेंगे, भैया! भगवत्ता का आनन्द जब आयेगा,

तब आयेगा, लेकिन ध्रुव सत्य है कि तेरे घर में ही भगवत्ता की ध्वनि प्रकट हो जायेगी। ये अद्‌भुत पवित्र परिणाम है। जिस संस्कृति में एक भटकते तिर्यंच को भी प्रस्तावित जिनदेव कहा जाता है, उस संस्कृति में बन गये इन देवों को जिनदेव न कहा जाये तो वे देखनेवाली आँखें ही खोटी हैं। हा दुट्‌ठ कयं, हा दुट्‌ठ चितयं। जितना पाप कर नहीं पाता, उतना पाप सोच लेता है। सही बताना, जीवन में पाप कितना किया है और सोचा कितना है? अल्प दिनों के अन्दर, क्षण मात्र में कषाय बदल जाती है, परिणाम बदल जाते हैं। लेकिन उद्रेक में आपने हाय! कितना किसके-किसके बारे में बुरा सोच लिया? जरा-सा इच्छित काम नहीं हुआ तो पता नहीं कितना-कितना सोच लेते हैं। मेरे से मत कहो, अपने से कहो 'हा दुट्‌ठ चिंतयं'- हाय मैंने दुष्ट चिंतन किया है।

मालूम, मुनि क्यों बनना चाहिए? न घर छोड़ने के लिए मुनि बनना पड़ता है, न परिवार छोड़ने के लिए मुनि बनना पड़ता है। न किसी से मिलने-जुलने के लिए मुनि बनना पड़ता है, तो मुनि बनना क्यों पड़ता है? दुनियाँ में सबसे बड़ा तनाव भोजन है। एक चींटी को देखो, प्रातः वह पाताल के छेद से निकलती है और शाम को रात्रि तक घूमती रहती है, कितना-सा पेट होता उसका। मात्र खाने-खाने के लिए उसका काम चलता रहता है। देश का कोई विशिष्ट वैज्ञानिक है वह यदि अपने भोज की व्यवस्था करे तो कभी कोई खोज नहीं कर पायेगा। जितने बड़े-बड़े विद्वान हुए उच्च कोटि के, चोटी के, ये सब गरीब रहे हैं। यदि पैसा कमाने जायेंगे तो विद्या को समय नहीं है और विद्या को समय देंगे तो पैसे को समय नहीं है। उनको विद्या भा गई। लेकिन सुख जो है, न पैसे में है न विद्या में है। ज्ञानी! सुख तो जिसको जिसमें संतुष्टि है, उसमें है। जिसको पैसे में संतुष्टि है, उसको पैसे में सुख दिखता है। जिसको विद्या में संतुष्टि है, उसको विद्या में सुख दिखता है। वे गरीब होकर भी मुस्कराते रहे, क्योंकि उनको विद्या में संतुष्टि है। मुनि लोग क्यों मुस्कराते हैं, क्योंकि छोड़ने के बाद इनको इसमें ही संतुष्टि महसूस हो रही है, इसलिए आनंद है। और संतुष्टि नहीं महसूस होगी तो विश्वास रखना, इन मुनियों से बड़ा दुःखिया इस जगत में कोई नहीं मिलेगा। यदि संतुष्टि नहीं है तो आपको तुष्टि होनी चाहिए। किसी भी देश का वैज्ञानिक होगा, रिसर्च कर रहा, खोज कर रहा, अन्वेषण कर रहा है तो शासन सामान्य लोगो ंकी अपेक्षा वैज्ञानिक को अधिक वेतन देता है। भारत की भूमि पर जितने ऋषिगण विचरण कर रहे हं, ये हमारे धरती के देवता हैं।

पूरे देश की आँखें अपने वैज्ञानिकों पर लगी हैं। गद्‌दी पर बैठा शासक, उसके बैठने से देश का उत्थान नहीं है उत्थान तो ध्यानियों से वैज्ञानिकों से, खोजियों से है, इंजीनियरों-

डॉक्टरों से है। वह अकेला गद्दी में बैठकर क्या करेगा? एक वैज्ञानिक के लिए खोज कितनी? जो जितनी गहरी खोज करता है, उतना अधिक वेतन देना पड़ता है। क्यों? यदि इसका मन भोजन और पैसे में चला गया, तो इसकी खोज में न्यूनता आ जावेगी, काम को अच्छे से नहीं कर पायेगा। जब बाहर भौतिक खोज के लिए शासन ने व्यवस्था की है, तुम्हें भोजन की भी चिन्ता नहीं है, तो हे वीतराग वैज्ञानिक! तुम आत्मदेव की खोज करो। तुमको भोजन की भी चिन्ता नहीं है। तुम अंजलि लगाकर निकल जाना, आहार कराने वाले मिल जायेंगे। यदि शासन भरपूर वेतन दे, तब भी वैज्ञानिक खोज न करे, तब उसको धिक्कार कहा जायेगा। जिनशासन में किसी भी त्यागी को ये नहीं कहा जाता कि तुम कमाओ तब तुम्हें भोजन मिलेगा। व्रती क्षुल्लक बनते हैं, दशम प्रतिमा लेते ही उसके आहार के लिए समाज पुकारने लगता है। दो तीन प्रतिमाधारी को भी सम्मान से अपने घर में भोजन कराती है। 'आओ भैयाजी! मेरे घर चलो।' फिर भी ये वीतरागी जैसे वैज्ञानिकों की ड्रेस होती है। प्रयोगशालाओं के आसपास जनसामान्य को जाना वर्जित है। विशेष ड्रेस में बैठे हैं। अब ज्ञानियों! ये निर्ग्रन्थ योगी जो वीतरागी वैज्ञानिक हैं, इनकी प्रयोगशाला में स्त्रियों का स्थान नहीं होना चाहिए, नपुंसकों का स्थान नहीं होना चाहिए, तिर्यंचों का आना-जाना नहीं होना चाहिए, कोई बच्चे-बूढ़े नहीं आना चाहिए। यहाँ पर इनको एकान्त में प्रयोग करने दीजिये। ये भगवती रसायन चैतन्य धातु की खोज कर रहे हैं। उस खोज में जब ये निष्णात हो जायेंगे, तब स्नातक बनकर अरहन्त बन जायेंगे।

तीर्थंकर भगवान् के एक हजारआठ नाम होते हैं। दृष्टि को विशाल बनाइये। वैज्ञानिक की बातें कर रहे हो और संकुचित विचारधारा? मुख को बांधना नहीं है, खोलकर रखना है। जयवन्त हों आचार्य विरागसागर, जयवन्त हों आचार्य विद्यासागर, विमलसागर, महावीरकीर्ति। इस भारत की भूमि पर जितने योगी हैं, कुन्दकुन्द-जैसे महायोगी जयवन्त हों। किसान जब गाय से दूध निकालता है तो दो में से एक काम करता है। या तो बछड़े को सामने खड़ा करेगा या फिर उसे खाना डालेगा। जैसे-जैसे वह खाती जाती है, वैसे वह दूध निकालता जाता है, क्योंकि उसके भाव बदले हुए हैं, प्रीति बनी हुई है। प्रीति से दूध निकलता है। और बछड़ा सामने होता है तो प्रीति बढ़ती है व दूध निकलता है। ज्ञानी! तत्त्व का लाभ तभी होता है, जब मन की विषमताएँ हटकर गाय-जैसे शुद्ध परिणाम होते हैं, तब वात्सल्य का क्षीर झरना प्रारंभ होता है, तब तत्त्व का बोध होता है। यदि गाय को रुष्ट कर दोगे, तो फिर दूध न निकाल पाओगे। ऐसे ही आपने परिणामों को रुष्ट कर दिया या संतुष्ट कर लिया कि अब मैं जय बोलूँ कि नहीं बोलूँ, ज्ञानी! उनको तो आनन्द आ ही नहीं सकता है।

मैं तीन कम नौ कोटि मुनियों का भक्त हूँ, क्योंकि तीन कम नौ कोटि मुनिराज द्रव्यलिंग सहित भावलिङ्गी हैं। वे वीतरागी श्रमण वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं। 'वन्दे तद्गुण लब्धये।'

त्यागी को सामायिक आनन्द देती है। योगियों का विहार/गमन भी बड़ा आनन्द देता है। कभी आनन्द लूटना हो तो इनके विहार में चलना चाहिये। विहार में शरीर व पैर चलते हैं, सो चलते हैं, मस्तिष्क से नवीन-नवीन सोच निकलता है। नवीन द्रव्य दिखाई देते हैं। देश की वेशभूषा, देश का भोजन, देश का भाषण तब समझ में आता है। ज्ञान रखना, ध्यान रखना, सारे विश्व में बोलने की भाषा नानारूप हो सकती है, परंतु सोचने की भाषा, लड़ने की भाषा, रोने की भाषा, खाने की भाषा एक-सी है। संकेतों की भाषा बहुत विशाल है। जिस देश में जाओ और बोलते न बने तो उस देश की भाषा तो उल्टी-सीधी बोलकर गाली मत खाना। कुछ नहीं करना। क्योंकि वाच्यभूत शब्द न्यून हैं, जो अवाच्यभूत हैं वे विशाल हैं। भूख लगे तो यूँ (विशेष आकृति) कर देना। संकेत की भाषा विशाल है। संकेत की महिमा देखो। निर्ग्रन्थ पूरे देश में जाने के लिए स्वतंत्र हैं। जरूरी नहीं है कि उनसे सभी देश की भाषायें बनती हों। मुनि को आहार तमिल प्रांत में कैसे मिलेगा? हमारे आगम ने मुनि की परंपरागत व्यवस्था कर दी है। किसी भी प्रांत में चले जाना, अंजुलि लगाकर कंधे पर रख लो। सब जानते हैं, जैनमुनि आहार को जा रहे हैं तो, सभी लोग नमोऽस्तु करते मिलेंगे। अरहन्त की प्रतिमा को विराजमान करने के लिए हर समय तैयार रहना। पता नहीं क्यों गद्‌गद् भाव आते हैं। मुझे मालूम है कि मैं नहीं बचूँगा,अपन नहीं बचेंगे, लेकिन वह बिम्ब बचेगा तो नमोऽस्तु शासन जयवन्त रहेगा, अरहन्त शासन जयवन्त रहेगा।

वैज्ञानिक के लिए भोजन का तनाव नहीं होता, तो जो आत्मवैज्ञानिक है, इसके लिए व्यवस्था बनाई गई है। मुनि क्यों बनना? देखो, आपको एक लाख बच जायें तो खुशी क्षणिक, संक्लेशता दीर्घ। अब एक लाख की सुरक्षा के भाव। अभी तक तेरा कोई शत्रु नहीं था, लेकिन अब लाख दिख गये सो लाख शत्रु बन गये। मुनि इसलिए बनना, विहार इसलिए करना कि अपरिचित रहने से तनाव नहीं बनता, अपरिचित रहने से संबंध नहीं बैठते, अपरिचित होने से विशुद्धि बनती है और राग की न्यूनता होती है और विशुद्धि बनती है, जबकि परिचितों में राग बनता है।

अपने यहाँ विद्वान भी हैं, लेखक भी हैं, कवि भी है, सब लोग हैं। इनसे एकान्त में पूछना कि सत्य बताना आपकी बुद्धि अच्छी कब चलती है? ज्ञानी! लेखनी कब बढ़िया चलती है? मस्तिष्क ठंडा होना चाहिये, कोई तनाव नहीं होना चाहिये, उस समय लेखनी चलती है और

जो कभी नहीं सोचा होगा वह विचार वहाँ आता है, सुन्दर-से-सुन्दर। सुन्दर लिखने बैठेगा तो कभी नहीं लिख पायेगा और सुन्दर लखने बैठेगा तो नियम से सुन्दर लिख लेगा। जो तैयारी करके प्रवचन करने जायेंगे, उनको प्रवचन की तैयारी नहीं करनी चाहिए। तैयारी भाषण की हो सकती है। प्रवचन तो भावों की विशुद्धि से उद्घाटित शब्द हैं। उसका नाम प्रवचन है। तैयारी करके नहीं जाना, तैयार होकर रहना। वही उपदेश है, वही प्रवचन है। इसलिए ध्यान दो। हे भगवान्! वे निर्ग्रन्थ योगी बाहर विचरण करते हैं, भीतर रमण करते हैं। भीतर के रमण का आनन्द अद्वैत का है, ब्रह्मभाव है। जो ब्रह्मसत्ता है, अद्वैतसत्ता है। ज्ञानी! विश्व की सम्पूर्ण सत्तायें जब गौण हो जाती हैं, तब आत्मा की ब्रह्मसत्ता का उद्घाटन होता है। आप इस परिसर में बैठे हो तो, परिसर में आते ही अनुभूति ले रहे हो। आप शब्दब्रह्म से स्पर्शित हो, आत्मब्रह्म की ओर जा रहे हो, इसलिए आप इतने शान्त बैठे हो। और क्या कारण है कि सबके परिणाम बदल रहे हैं? ब्रह्म शब्द कहता है कि शान्त हो जाओ। लोटा में पानी लिया, सिर पर डाल लेना। जब लोटे में पानी ले रहे थे, सिर पर डाल रहे थे, तब चंचलता थी, अनुभूति नहीं थी। जब सिर पर पानी डल चुका था, तब पानी नहीं डाल रहे थे, लोटे में पानी नहीं भर रहे थे, शीतल अनुभूति चल रही थी। शास्त्र खोलना, शास्त्र पढ़ना आनन्द नहीं है। शब्द पढ़ने के बाद जो अनुभूति आ रही है, वह शब्दब्रह्म नहीं बचा, वह आत्मब्रह्म में चला गया।

कभी-कभी मन कहता है कि कुछ मत कहो, सिर्फ एक दूसरे को देखो, प्रस्तावित भूमि-खण्ड को देखो और सोचो कि कैसे-कैसे बनेगा? 'हा दुट्ठ भासियं' मैंने दुष्ट भाषण किया है। भैया! देखो, जनक-जननी होंगे तो बोलना तो पड़ता है, लेकिन ऐसा बोलना कि मिश्री-जैसा घुले। ऐसा मत बोलना कि जहर बन घुले। वाणी हमारी बाण न बने, वाणी हमारी बाँस की लाठी न बने, वाणी हमारी वीणा बनकर गुंजायमान हो। उसी बाँस से लाठी बनाते हो, उसी बाँस से बाँसुरी बनती है ना? वाणी में तुम्हारी बाँसुरी बनकर संगीत के स्वर निकले, वाणी तुम्हारी लाठी बनकर किसी की पीठ न तोड़े। वाणी को बाँस की लाठी मत बनाना, वाणी को ज्ञानी! बाँस की बाँसुरी बनाना। 'हा दुट्ठ भासियं'। 'अन्तोअन्तो', मैं अंतरंग-अंतरंग में झुलस रहा हूँ पश्चात्ताप से। हे स्वामी! मेरे दुष्कृत मिथ्या हो। 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं।' हे प्रभो! मैंने दुष्ट बोला हो, मैंने दुष्ट किया हो, मैंने दुष्ट भाषण किया हो, वे मेरे सारे दोष मिथ्या हों। तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

चैत्यभक्ति में भगवान् गौतम स्वामी ने भगवान् की वाणी को 'महानद' की उपमा दी। 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं।' क्यों? मैंने दुष्ट किया हो, दुष्ट बोला हो, दुष्ट चिंतन किया हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भैया! अपन लोग घर में नाली भी तो बनाते हैं। कितनी सुन्दर होती है जब बनकर तैयारी होती है और फिर सप्ताह में एक बार साफ भी तो करता है। जब नाली बनाई जाती है, तब कोई गंदगी नहीं होती है। बनने के उपरांत गंदगी हो ही जाती है, तो साफ भी तो करना पड़ती है। कोई भी जीव व्रत धारण करता है तब कोई अशुद्धि नहीं होती है। लेकिन फिर भी दोष लग ही जाते हैं। यदि नाली को साफ नहीं करेगा तो घर कीचड़ से भर जाएगा। ऐसे ही यदि प्रतिक्रमणन हीं करेगा तो तेरा चारित्र का घर भी कीचड़ से भर जायेगा। इसलिए प्रत्येक श्रावक के, योगी के तीन बार प्रतिक्रमण में कमी नहीं आनी चाहिए। यदि प्रमाद है, जागृति नहीं है, तो पल-पल में दोष है। श्रुतानुष्ठान में सबसे बड़ा दोष है, महापाप है, तो वह प्रमाद है और प्रमाद सबसे बड़ी हिंसा है।

हे जिनेन्द्र भगवान्! मैंने उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का प्रमाद से जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया हो, उसकी शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ।

'आत्मस्वभावंपरभाव भिन्नम्।'

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
संसार में
स्वहित-चाहक
अनेक हैं,
स्व-पर हित-चाहक
अल्प हैं।
सर्व प्राणियों के
हित-भाव की भावना
दुर्जन में नहीं
सज्जनों में ही
आती है।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
मैं
एक हूँ
शाश्वत
ध्रव
अखण्ड
चैतन्य धाम।
निज में
चलता है
विचरण
अविराम
माया-मिथ्या-निदान
शल्य जय का
है मेरे में
पूर्ण विराग।
मैं
एक हूँ
चैतन्य-धाम।

भावना द्वात्रिंशतिका

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनाऽतिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ।।8।।

अन्वयार्थः (जिन) हे जिनेन्द्र भगवन्! (अहं) मैंने (सुचरित्रकर्मणः) उत्तम चारित्र के अनुष्ठान का (प्रमादतः) प्रमाद से (यत्) जो (अतिक्रमं) अतिक्रम (व्यतिक्रमं)व्यकिक्रम (अतिचारम्) अतिचार और (अनाचार अपि) अनाचार भी (व्यघाम्) किया (तस्य) उसकी (शुद्धये) शुद्धि के लिए (प्रतिक्रम) प्रतिक्रमण (करोमि) करता हूँ।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी 'द्वात्रिंशतिका' में आत्मशुद्धि के साधन 'प्रतिक्रमण' का व्याख्यान कर रहे हैं। हे परमेश्वर! जितने दोष इस जीव ने ज्ञातभाव से किये हैं, उससे कोटि-कोटि अधिक दोष अज्ञातभाव से किये हैं। पर हम यही समझ रहे थे- क्या आस्रवबंध ज्ञात का ही होगा? अज्ञात का क्या बंध नहीं होगा?

'तीव्र मन्द ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य विशेषेभ्यस्तद्विशेषः' आचार्य उमास्वामी ने ये सूत्र दिया है। सूत्र छोटे होते हैं, परंतु रहस्य बड़े होते हैं। वट का बीज बहुत छोटा होता है। यदि कोई मुख से भी फूँक दे तो उड़ जायेगा, परंतु जब अंकुरित होता है तब पहाड़ को फोड़ देता है। दोष छोटा हो, लेकिन मुमुक्षु! वट के बीज के समान मान कर चलना। आज जिसे तुम छोटा मान रहे हो, वही जब बड़ा दोष हो जायेगा, तब चारित्र के पहाड़ को क्षत-विक्षत कर देगा। मोक्ष के मंजिल नष्ट हो जायेंगे। आज जितने मंदिर धराशायी मिल रहे हैं, हमारा ये सोच बन गया है कि विधर्मियों ने नष्ट किये हैं, पर कुछ नष्ट हुए हैं प्रमाद से। मंदिर के नीचे दर्शन करने आते हैं, परंतु ज्ञानी! छत पर कब जाते हो? एक पक्षी आया, उसने पीपल या बरगद के फल को खाया और मंदिर के शिखर पर बीट किया, वही अंकुरित हुआ दाना और फिर पूरे मंदिर के शिखर को फाड़ दिया और हम ये ही कहते रहे कि किसी ने तोड़ दिया होगा। प्रकृति के प्रकोप से भी हमारे मंदिर धराशायी हुए हैं। आपके प्रमाद से भी हुए हैं। दोष छोटा हो, लेकिन प्रमाद को कभी छोटा मत समझना, पाप को कभी छोटा मत समझना। छोटा-छोटा पाप भी बहुत बड़ा हो जाता है। छोटे-छोटे नियम भी, अणुव्रत भी महाव्रत में बदल जाते हैं। छोटे से शिशु को दुलार तो देना, प्यार तो देना, लेकिन ज्ञानी! सिर पर मत बिठाल लेना। आपने प्यार दिया, दुलार दिया और विद्या नहीं दी माता-पिता के इस अज्ञानमय दुलार का ही प्रभाव हुआ कि देश में बड़े-बड़े डाकू, खूंखार डाकू बनकर आ गये। दुलार देना, लाड़ देना, परंतु

लाड़ के साथ-साथ विवेक भी देना। लाड़ ही देते रहे, दुलार ही देते रहे और विवेक नहीं दे पाये, तो उसका सत्काल लंबा नहीं है। कुछ दिन बाद वह बिगड़ा होगा। तब आपके घर में शिकायतें आना प्रारंभ होंगी। तब तुझे ही वो दिन याद आने लगेंगे कि हाय! मैंने क्या किया? एक दिन की मृदुलचर्या, एक दिन का शिथिलाचार ज्ञानी! भविष्य में पूरे नमोऽस्तु शासन को, जिनशासन को नीचे दिखा देता है। एक जीव तीर्थंकर एक क्षेत्र, एक काल में एक होता है। दो तीर्थंकर एकसाथ नहीं होते। ज्ञानी! एक तीर्थंकर भगवान पूरे विश्व में हलचल कर देते हैं। तीनों लोक में आनन्द की एक लहर दौड़ती है। धन्य हो उस जीव के पुण्य के लिए। कितना प्रबल पुण्य का बंध किया होगा इस जीव ने कि एक जीव ने तीनों लोकों में आनन्द की एक लहर उत्पन्न कर दी? अपने भावों से कहना कि जो जीव तीर्थंकर बना है, वह भी मेरे-जैसा जीव था। अपने जैसा ही था। उस जीव ने पुण्य की सत्ता को इतना दीर्घ किया चारित्र की निर्मलता के माध्यम से। विश्वास रखना, ज्ञान का क्षयोपशम चारित्र की विशुद्धि से होता है। जितना विशद, निर्मल, निर्दोष संयम होगा, उतनी ही विशुद्धि होगी। जितनी विशुद्धि पवित्र होगी, उतना क्षयोपशम पवित्र होगा और यही क्षयोपशम क्षायिक में बदल जायेगा। कैवल्य को प्रकट करानेवाला श्रुतज्ञान ही है। जरा-सा वट का दाना पर्वत भी फाड़ सकता है। जीवन में कभी भी संयम में कमजोरी आने लग जाये तो उसे छिपाने का प्रयास मत करना, ढँकने का प्रयास मत करना, अन्यथा बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा।

उमास्वामी महाराज कह रहे थे- ज्ञाताज्ञात... और यदि जानकर के दोष किया-

अज्ञानात् कृतं पापं, सज्ज्ञानात् विमुच्यते।
ज्ञात्वा ज्ञानं कृतं पापं, वज्रलेपो भविष्यति।।

सूत्र पर ध्यान देना- हे ज्ञानी! यदि अज्ञान से पाप हो जाये तो सद्ज्ञान से छूट सकता है। परंतु निज ज्ञान से जानकरके दोष कर रहा है, तब भी लीन हो रहा है, उसके कर्म का बंध वज्रलेप होता है। किसी की वंचना करना मायाचारी है। किसी को धोखा देना मायाचारी है कि नहीं? विश्व के प्राणियों में तू स्वयं एक प्राणी है कि नहीं? स्वयं को धोका देना महामायाचारी है। दो के बीच का मायाधर्म तो दिखाई देता है, परंतु निज का निज में मायाधर्म किसी को दिखाई नहीं देता है। उसके लिए नेमिचंद स्वामी कह रहे हैं, जैसे बाँस की जड़ इतनी घुमावदार होती है कि मालूम ही नहीं चलती कि कहाँ से कहाँ निकल गई है। ऐसे-ही कुछ जीवों के इतने कुटिल परिणाम होते हैं कि उनको अपनी माया खुद ही समझ में नहीं आ रही है कि घोर माया होती है। इसका नाम अनन्तानुबंधी माया है। यह अनन्तानुबंधी माया तिर्यंचगति का ही कारण नहीं है, वह तो नरक का भी कारण है। धन्य हैं वे योगीश्वर। जब-जब मुनियों की याद

आती है, तब आँखें नम होती हैं। हे प्रभो! धन्य हो आपकी निर्मलता को। ज्ञानी के यहाँ मुनिराज पधारे, उनका नमक का त्याग था, किसी सामग्री में नमक पड़ा हुआ था। उनके मुख में ग्रास पहुँच गया, किसने देखा? वह तो मुख के अन्दर था, अन्दर ले जाते मुख के ग्रास को। जीव एक-एक दाने को तरस रहा है। ऐसे भी जीव हैं जो दूसरे के मुख का छीनकर रख रहे हैं। आप देखो, गलियों में तिर्यञ्चों को एक रोटी डाली हो, कोई कुत्ता उठा ले जाये, तो दूसरा कुत्ता मुख में रखा ग्रास नहीं छीनता। ईमानदारी तो ईमानदारी है। संयम का पालन वहीं हो सकता है जहाँ ईमानदारी होगी। संयम का पालन वहीं हो सकता है जहाँ शुद्ध हृदय होगा। वक्र परिणति में संयम पलता नहीं। श्रावक देखने नहीं खड़े थे, वे तो प्रसन्न हो रहे थे कि अहोभाग्य मेरा है कि मेरे घर में निर्ग्रन्थ तपोधन के आहार हो रहे हैं। परंतु मालूम नहीं चला, मुख में नमक चला गया। उन योगीश्वर की निर्मलता देखो, मुख के ग्रास को बाहर निकालकर अन्तराय करके बैठ गये। इसका नाम संयम है। श्रावक पूछते हैं - स्वामी! क्या हुआ? वह कहते कुछ भी नहीं और मुस्कुराकर चले गये। क्या हुआ? अन्तराय कर्म का उदय आ गया है, कुछ भी तो नहीं हुआ। जो ऋण लिया था, वो ही तो चुकाया है।

वे तपोधन क्या चिन्तन कर रहे हैं-

रिण-मोयणं व मण्णइ जो उवसग्गं परीसहं तिव्वं।
पाव-फलं मे एदं मया वि जं संचिदं पुव्वं।।110।। (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

जैसे किसी पुरुष के सिर पर ऋण रखा हो तो कितना भार लगता है और ऋण चुका देता है तो प्रसन्न होता है। वे मुनीश्वर क्या चिन्तन करते हैं? हमने पूर्व में कर्म का बंध किया था, ऋण लेकर रखा हुआ था, आज उस ऋण को चुकाकर आया हूँ। एक अन्तराय कर्म के भार से मैं मुक्त हो गया हूँ। तपोधन ऐसा चिन्तन कर रहे हैं। आपका दोष नहीं था। ये मेरे कर्मों का दोष था, ऐसा चिन्तन करने के लिए बहुत दीर्घकाल की साधना चाहिए। पवित्र चिन्तवन के लिए पवित्र पुण्य चाहिये। यदि पुण्य पवित्र नहीं है, प्रशस्त नहीं है, तो क्या निर्मल परिणाम होते हैं? खाली बैठेगा जीव, अशुभ करने के ही परिणाम आ रहे हैं। विष, पंजर, गुलेल, तीर कमान इत्यादि जो अशुभ द्रव्य हैं, ऐसे द्रव्यों के संग्रह के परिणाम हों, रक्षण के परिणाम हों, रखने के या बनाने के तो समझ लेना कि मेरा ज्ञान मिथ्याज्ञान है। समझ लेना कि मेरा मिथ्यात्व काम कर रहा है। बिल्कुल सहज बैठकर चिन्तन करना। पूजन के भाव नहीं आ रहे, प्रक्षाल के भाव नहीं आ रहे, मुनि को दान देने के भाव नहीं आ रहे, किसी धर्मात्मा से बात करने के भाव नहीं आ रहे, सहज परिणामों में आ रहा है, (किसी से बोलना नहीं क्योंकि विषय अपना चल रहा है) आठ पंद्रह दिन में आपके सामने घटित होता है, चेहरे पर उदासीनता छा रही है।

अच्छे काम करने के परिणाम नहीं आ रहे हैं, ज्ञानी! विश्वास रखना, अशुभ कर्म की प्रकृति का उदय काम कर रहा है। यदि अशुभ आयु का बंध हो गया तो उम्र ढलते-ढलते परिणाम अशुभ-ही-अशुभ होना प्रारंभ हो जायेंगे और विश्वास रखना, अशुभ कर्म ही करने के भाव आ रहे हैं। सँभलो, यदि तेरे घर में सम्पत्ति भी होगी तो उसका दुरुपयोग होगा। ज्ञानी! एक समय था जब भाव आते थे कि चलो श्रीजी स्थापित कर दूँ, मंदिर बनवा दूँ, साधुओं की सेवा में द्रव्य लगा दूँ। अब वह द्रव्य लगाने के भाव भी बदल चुके। वह कह रहा है कि नगर में ऐसा व्यापार खोलूँ, सिनेमा हाल खुलवा रहा है। ये क्या हो रहा है? पुण्य क्षीण हो चुका है जीव का। यांत्रिक कत्लखाने खुलवाने के भाव आ रहे हैं, तो आप समझ लीजिये कि उस जीव का पुण्य क्षीण हो चुका है। क्योंकि ऐसे अशुभ परिणाम आ रहे हैं, सत्ता डगमग होने का समय आ चुका है। जिसका सत्य डगमग होने लगता है, उसकी सत्ता डगमगा जाती है। हे लंकेश! जब तेरे विनाश का काल आया था, तब तेरा सत्य डगमग हो गया, तो सत्ता विनष्ट हो गई।

नारियल के वृक्ष में पानी भरने कौन जाता है? और नारियल के वृक्ष से पानी निकालने कौन जाता है? वृद्धि का काल होता है तो नारियल के अन्दर पानी लबालब भरा होता है। ये पुण्य का नीर है। और ज्ञानी! जब समय पक गया, तो नारियल के अन्दर का पानी भी सूख जाता है।

प्रशस्त परिणाम ही करना। अशुभ करनेवाले के प्रति भी अशुभ भाव मत लाना। यह तो सोचना कि ये जीवों के घात करने के यंत्र क्यों तैयार कर रहा है ? हे प्रभो! इसके अंदर सद्बुद्धि का जन्म हो। लेकिन उस जीव के बारे में भी अशुभ मत सोचना, क्योंकि हमारा धर्म तो प्राणिमात्र के प्रति शुभ सोचता है। सम्यक् सोचना कि इसकी बुद्धि सम्यक् हो जाये। कोटि-कोटि जीवों का वध करके यह दुर्गति का भाजन न बने। यही तो जैनधर्म है। कर्म की विचित्रता देखो! फुदकता मेढ़ा देखकर निकल गया था और जब वापस लौट रहा था तो उल्टा लटका मिला। कोई बचा भी नहीं सका। मार्ग पर सब चल रहे हैं, लेकिन क्या करूँ? आप विपाकविचय धर्म्यध्यान ही कर पाओगे। हे भगवान्! इस जीव ने कौन-सा ऐसा कर्म किया कि जीते-जी इसको नष्ट कर दिया है। इसके परिणाम प्रशस्त हों, वह सद्गति को प्राप्त हो। जो नष्ट कर रहा, उसके बारे में भी सोचना कि यह मनुष्यगति को प्राप्त करके भी मानवता नहीं सीख पाया है। इसके परिणाम प्रशस्त हो जायें, ये हिंसाकर्म छोड़ दे और अपनी गति को सुगति कर ले। दोनों जगह से शुभास्रव करना। घर में क्रूरपरिणामी सदस्य भी हो, उनके बारे में भी नहीं सोचना। क्रूरपरिणामी जीव के पूर्व कर्म की सत्ता का कारण ढूँढ़ लेना, परन्तु तेरे घर में जो आया है वह तेरे पाप कर्म का उदय है। बेटा बनकर आया हो या पिता बनकर आया

हो, कोई भी सगा बनकर आया हो, लेकिन आया है। उग्रसेन से पूछना, कि बेटे ने छींके पर टांग दिया। महाराजा श्रेणिक से पूछना, कुणिक ने आप को जेल में डाल दिया।

जरा सँभलके रहना। अपनों को अपना मानना बंद कर दो, तो बहुत अच्छे से रहोगे। अपनों को अपना मान बैठते हो तो उस अपनेपन में कुछ-कुछ कर बैठते हो। और बस, अपनेपन का राग भविष्य का शत्रु बनकर आता है। कुणिक शत्रु नहीं था, श्रेणिक का मित्र था। मित्र बन गये थे मुनिराज। इनका आहार मेरे घर में होना चाहिए, ऐसा राग आ गया और सारे नगर में पाबंदी कर दी कि महाराज को कोई चौका नहीं लगायेगा, मेरे यहाँ आहार होंगे और कोई लगा लेगा तो मेरे यहाँ आहार नहीं हो पायेंगे। भैया! आप भी जीवन में मुनिराज का पड़गाहन तो करना, चर्या कराना, परंतु ऐसा कभी मत सोचना कि मेरे ही घर में हो, किसी अन्य के घर में न हो, अपन को तो इतना काम करना ही है। मेरा पुण्य होगा तो मेरे घर में आयेंगे, नहीं होगा तो नहीं आयेंगे, मैंने अपना काम किया है। जो तीन कम नौ कोटि मुनिराज हैं, उनके पड़गाहन का पुण्य मिलेगा। भूल क्या कर ली? मासोपवासी मुनिराज थे, वो मासोपवास का राग लग गया, ये तपस्वी मेरे घर आ जायेंगे। तो सभी को मना कर दिया। एक माह बाद जब मुनिराज आ रहे थे, तो राज्यकार्य में व्यस्त हो गया, पड़गाहन नहीं कर पाया, वह वीतरागी तपोधन चले गये। उन्होंने एक माह का उपवास पुनः कर लिया। दूसरे माह जब चर्या को निकले, तब राजा के हाथी ने बंधन तोड़ दिया, उस व्यवस्था में लग गया। महाराज अन्तराय मानकर पुनः चले गये। दो माह के उपवास हो चुके थे। तीसरे माह जब चर्या के लिये नगर में आये तो नगर में आग लग गई। राजा श्रेणिक उस काम में व्यस्त हो गया, आग बुझाने में। लेकिन महाराज का ध्यान नहीं दिया। तपस्वी से ज्यादा चेंटना (आग्रह करना) नहीं चाहिए।

साधक की वैयावृत्ति तो करना, लेकिन मना कर दें तो नहीं करना। यही वैयावृत्ति है। हो सकता है कि मुझे लग रहा कि ये वैयावृत्ति कर रहा हूँ, मगर उनको उसमें संकट रूप दिख रहा है तो अवैयावृत्ति हो गई। सबसे बड़ी वैयावृत्ति यह देखना कि साधक की विशुद्धि का हरण न हो पाये। परिणामों की विशुद्धि का क्षरण न हो पाये। उनकी आँखों पर वीतरागता ही टपकती दिखाई दे, रोष की लालिमा दिखाई न दे, ये हमारा धर्म है। यदि हमने ज्यादा दबाव दिया तो उनके चेहरे पर लालिमा दिख गई तो ज्ञानी! आपने यति के परिणामों की हिंसा की है। परिणाम-विशुद्धिरूप ही मुनि हैं, वह भाव है। कहीं हमारे निमित्त से उस योगी के परिणामों में खिन्नता आ रही है, तो ज्ञानी! विश्वास रखना, हमारे निमित्त से योगी के परिणामों का हनन हो गया है और विश्व में यति-हिंसा से बड़ी कोई हिंसा नहीं होती। इसलिए भैया!

साधुओं के पास बड़े सँभल कर जाया करो। भगवन्! हम तो रागी-द्वेषी हैं ही, परंतु आप विरागियों को मैं राग में नहीं डालना चाहता। आप अपने वीतराग भाव में जिओ। भक्ति भी करना तो भक्ति तक ही करना। भक्ति को राग में नहीं बदलना।

'पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः' पूज्यपुरुषों के गुणों में अनुराग करना भक्ति है। 'गुणों में अनुराग' शब्द लिखा हुआ है। पूज्यपुरुष के शरीर में राग 'भक्ति' नहीं है। पूज्यपुरुष के संबंध में भक्ति नहीं है कि ये मेरा बेटा मुनि है। ये भक्ति नहीं है, ये राग है। हाँ, भाव होना चाहिये, लेकिन जब उनके पास जाना तो बेटा मुनि नहीं देखना, मुनि महाराज ही देखना। बिटिया मत देखना, आर्यिका माताजी देखना। आर्यिका माताजी देखोगे तो सारी माताजी नजर आयेंगी और बिटिया माताजी देखोगे तो एक माताजी नजर आयेंगी। यह जैनदर्शन नहीं है।

'पूज्येषु गुणानुरागो भक्तिः' आत्म-प्रसाद, आत्म-आह्लाद यानि जो पूज्य दिखाई दे तो अन्तर में आह्लाद जग जाए, हर्ष आ जाये। बस, इतना ही भक्ति का काम है।

श्रेणिक भूल कहाँ कर गया? ये मेरे मित्र हैं, इनको तो आहार मैं ही दूँगा। तीसरे माह अग्नि लगने से मुनिराज वापस हो गये। वे क्या करें? साधना तो सँभाल रहे थे, परंतु देह का परिणमन कौन सँभाले? गुब्बारे में यदि हवा नहीं भरोगे तो वो भी कैसा लगता है? चिपका रहता है। और यदि उसमें हवा भर जाये, तो फूल जाता है। ये देह गुब्बारा है, इसमें भोजन पानी डाल दिया सो फूला दिखाई दे रहा है और भोजन पानी न मिले तो पिचक जाता है। ज्ञानी! देह कुम्हला गई, परंतु अभी तक देही नहीं कुम्हलाया था। मात्र शरीर ही कुम्हलाया था, परंतु आत्मा की विशुद्धि नहीं कुम्हलाई थी। देखो श्रावको! आहार नहीं मिला, परंतु इतना बड़ा तनाव नहीं था भूखे रहने से। शरीर तो कमजोर हुआ था, लेकिन भावों की विशुद्धि में कमी नहीं आई थी। देखो, एक श्रावक के शब्दों ने पूरी कमजोरी भर दी। मुनिराज जब वापस आ रहे थे, तब एक नव-प्रसूता गाय का धक्का लग गया। देखो, इतिहास साक्षी है जितने मुनियों पर तिर्यञ्च-कृत उपसर्ग आये, उसमें सबसे ज्यादा गायों के द्वारा आये। ये ऐसी जाति है, जो बिचकती है और यदि गुस्सा आ जाये तो त्यागी के ऊपर वार करती है। नवप्रसूता गाय ने धक्का मार दिया। अभी तक भी कुछ नहीं हुआ। अभी तो देह ही जमीन पर गिरी थी, गुणस्थान नहीं गिरा था।

माताओ! कोई त्यागी पर दया आ रही हो तो उपचार तो कर देना, परंतु 'बहुत कष्ट है महाराज को' ये शब्द मत बोलना। वे तो अपने अरस, अरूप, अगंध स्वभाव में लीन थे, विदेह की ओर झाँक रहे थे, लेकिन तूने कहकर देह की ओर डाल दिया, देह पर रख दिया। ये दया नहीं है, ये आपकी विवेकविहीन अदया है। यदि दया थी आपको, तो वैसी करना जैसे नारायण

श्रीकृष्ण ने मुनिराज पर दया की थी। मालूम ही नहीं चलने दिया। आज कोई दवाई लेकर आता है तो हल्ला करेगा 'ऐ भैया! पुड़िया लो, महाराज को दवाई चला दो।' दवाई तो दबा कर दो, वह तो हल्ला करके दे रहा है। यथार्थ तो ये है कि साधु को मालूम नहीं चलना चाहिए। आप प्रासुक औषधि का उपयोग करो। और भैया! ऐसा भी नहीं कहना 'महाराज जी! मेरे यहाँ आपकी दवाई बनी है, मैं पड़गाहन करूँगा, आप आ जाना। हे ज्ञानी! वे वीतरागी तपोधन निश्चित स्थान पर नहीं जाते। अतिथि हुआ करते हैं। जिनकी तिथि नहीं है, वे अनगार हैं। नारायण कृष्ण ने क्या किया? क्या मालूम महाराज कहाँ जायेंगे, इसलिये नगर में जितने चौके थे सभी के यहाँ औषधि के लड्डू बनाकर भेज दिये। जहाँ भी महाराज पहुँचेंगे, उनको निर्दोष औषधि मिलेगी। लड्डू की महिमा देखो, औषधि दान दिया और तीर्थंकरप्रकृति का बंध किया। दवाई का अर्थ समझ गये क्या ? जो दबाकर दी जाये, वह दवाई है। हल्ला करके नहीं देना।

ज्ञानी! कुछ बातें सीख लेना चाहिए। चाहे चिरकाल-दीक्षित साधु क्यों न हो, परंतु कष्ट की बेला नाजुक होती है।

ज्ञानी! जबलपुर में 200-200 वर्ष पुराने वृक्ष भी होंगे। उनका स्कन्ध कितना ही दृढ़ होगा, जड़ कितनी ही मजबूत होगी, परंतु उसकी कोंपल नाजुक ही होगी। वृद्ध दादाजी कितने ही कठोर होंगे, लेकिन भारों की बेला नाजुक ही होगी। उनके ऊपर भी उपसर्ग आ जायेगा तो पिघल जायेंगे। ऐसे ही चिरकाल से दीक्षित साधु क्यों न हो, बुंदेलखंड की कहावत को भूल मत जाना। कहावतों में भी रहस्य भरे होते हैं। बहू घर में रोने बैठी थी, पर मौका नहीं मिल रहा, झेल रही थी सहिष्णुतापूर्वक। लेकिन उसी समय में भैया आ जाये तो अन्दर भरे हुए आँखों के आँसू अपने आप टपकना प्रारंभ हो जायेंगे।

पूर्व में राजा श्रेणिक और तीन मास के उपवासी महाराज के बारे में ज्ञातव्य है। जब मुनिराज गाय के धक्के से गिर गये थे, तब उन मुनिराज के पास कोई श्रावक पहुँच गया, बोला- महाराज! हम तो चाहते हैं कि आपकी अच्छे से चर्या हो, लेकिन राजा कैसा पापी है जो न चर्या करा रहा है, न किसी को कराने दे रहा है? जैसे ही वे शब्द कान में पहुँचे तो यतिराज का गुणस्थान गिर गया, उन्होंने निदानबंध कर लिया कि मेरी तपस्या का फल कोई हो तो मैं इसको आगे देखूँगा। हे महाराज! तुम्हारी तीन माह की लंघन हो गई या तीन माह के उपवास, कोई छोटी-मोटी बात नहीं होती। एक समय का पानी न मिले तो व्यक्ति तड़प जाता है। जिनने तीन माह के उपवास किये हैं और तीन समय मात्र में, क्षणमात्र में आपने नष्ट कर दिये। श्रावकों! संभलकर रहना। ग्रीष्मकाल में एक दिन भोजन न मिले तो कैसा लगता है? उसको

दिन में तारे दिखते हैं। जब भोजन नहीं मिलता तब पूछो इनसे। अल्प आहार किया, तब मेरी हालत बिगड़ने लग गई, तो जो निराहार रहते हुए भी कुछ नहीं कह रहे हैं। धन्य हैयोगीश्वर की तपस्या। भैया! श्रावक ने जो यूँ कहा था, उसके भाव तो अच्छे थे, परंतु विवेकहीन थे। इन शब्दों की परिणति में 'न आहार देता है, न देने देता है।' उस त्यागीजीव के परिणाम कहाँ जा रहे थे, परंतु कहाँ उतार दिया? उतरने में देर नहीं लगती।

यदि आपको ऊपर की मंजिल में पानी ले जाना पड़ता है तो टुल्लू पम्प लगाते हो और जब पानी नीचे गिराते हो तो वह तो अपने आप बह जाता है। तेरे परिणाम पानी की धार है। ऊपर ले जाने को बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है। नीचे की ओर तो वह सहज हो जाता है। अशुभ में जाने के लिए कोई टुल्लू पम्प नहीं लगाना पड़ता, तपस्या नहीं करनी पड़ती है। परंतु ज्ञानी! ऊपर की ओर परिणामों को ले जाने के लिए दीर्घकाल तपस्या करनी पड़ती है। तीर्थंकर-जैसी आत्मा को दस-दस भव तक मुनि बनना पड़ता है, तब कहीं तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त कर पाते हैं। उसी भव में भरतक्षेत्र में कोई तीर्थंकर मोक्ष नहीं गया। आप उठाके देख लो पुराणग्रंथों को। तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी से पूछो, आदिनाथ स्वामी से पूछो, महावीर स्वामी से पूछो, चौबीसों भगवन्तों से पूछो। भावों की स्थिति को सँभालकर रखना। देखो, सबसे नाजुक बच्चा मनुष्यनी का होता है। जितनी सेवा मनुष्यनी के बच्चे को लगती है, उतनी सेवा जगत के किसी के बच्चे को नहीं लगती। जितना नाजुक है, उठने में उतना समय लगता है। उतना ही समय इसको सम्यक्त्व प्राप्त करने में लगता है। एक तिर्यंच अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, लेकिन मनुष्य आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। माँ! कितना सँभाल-सँभाल कर उठाकर खड़ा कर लेती है, वही दौड़ने लगता है। ऐसे ही जिसने प्रथम गुणस्थान से परिणाम सँभालना शुरू कर दिया हो, वही ज्ञानी तेरहवें गुणस्थान में अरहन्त बनकर दौड़ेगा, चौदहवें गुणस्थान में रहेगा। लेकिन आपने प्रथम गुणस्थान से ही परिणाम नहीं सँभाले तो भविष्य में नहीं सँभाल पाओगे।

शत्रु कौन था? वही मुनिराज का जीव कुणिक बनकर आ गया। वर्तमान की पर्याय कहेगी कि हे श्रेणिक! तुझे बेटे ने जेल में डाल दिया, लेकिन कर्मसिद्धांत कहेगा कि बेटे ने नहीं, तेरे पूर्व के अन्तराय कर्म ने जेल में डाला, क्योंकि तुमने एक योगी को तीन महीने तक आहार नहीं होने दिया। भैया! राग के काल में समझ में नहीं आता। जब राख हो जाता है, तब सब समझ में आता है। घर में बहुत सारी सामग्री रखी हो तो भूल जाता है। किसान खलिहान में बहुत सारी सामग्री रखे रहता है। क्यारियों के बीच में फावड़ा आदि भूल आता है। खोजता है तो उसको मिलता ही नहीं है। अचानक आग लग जाये, राख हो तो फावड़ा अलग दिखाई

देता है। समझना मैं क्या कह रहा हूँ। राग के काल में सामग्री दिखाई नहीं देती। जब राख हो जाता है, तब साफ दिखाई देती है। ज्ञानी! पापों से उदास हो जाना। यहाँ धार्मिक क्षेत्र में उदास मत होना, पापों से उदास हो जाओ।

तीव्र मंद। एक-जैसा आस्रव नहीं होता। तीव्र भावों से किया, तो मंद बंध होगा। 'ज्ञाताज्ञात' ज्ञातभाव से किया तो अधिक होगा, अज्ञात भाव से किया तो अल्प होगा। आस्रव तो होगा ही। यदि ये कहते हो कि हम तो जानते ही नहीं कि ये हमारे पाप हो गया। तुम जानते नहीं थे, इससे काम नहीं चलेगा, बंध तो होगा। और जैसा अधिकरण होगा, वैसा आस्रव होगा। जितनी ताकत से पाप करोगे, उतना ही बड़ा पाप का बंध होगा। जितने रुच-रुचकर भोग रहे हो, उतने रुच-रुचकर भोगने की तैयारी कर लेना। 'स्वरुचि भोज।' जो जो पापबंध कर रहा, स्वरुचि से कर रहा है, बाद में रोता है- महाराज! मैंने क्या किया? अरे भैया! उस दिन की याद करो जब स्वरुचिपूर्वक चल रहा था। सँभलकर रहा करो। भगवान् और कुछ कह रहे हैं- अतिक्रम पर ही सँभल जाओ तो अतिचार से बच जाओगे। अतिचार में सँभल गये तो अनाचार से बच जाओगे। जो अतिचार में नहीं सँभल पाया, वह अनाचार में चला गया। व्रत के जाने को, बिगड़ने को देखते रहना। व्रत लेना सरल है। आ गया एक श्रीफल लेकर- ओ स्वामी! नियम चाहिये। उन्होंने आशीर्वाद दे दिया। एक क्षण में व्रत होता है, लेकिन एक क्षण के लिए नहीं होता है, जीवनपर्यंत के लिए होता है। दीक्षा अड़तालीस मिनिट में हो जाती है। बहुत समय नहीं लगता। दीक्षा तो पवित्र काम है। यथार्थ ये है कि इस क्रिया में नेता/अभिनेता की जरूरत होती नहीं है, क्योंकि जिनको वैराग्य होगा, वह स्वयं आकर बैठ जायेगा।

दीक्षा तो चन्द समय में हो जाती है, लेकिन चन्द समय के लिए नहीं होती है, जीवनपर्यंत के लिए होती है। बहुत बड़ी तैयारी चाहिये होती है। जैसे एक सुधी श्रावक चैत के महीने में धान्य को घर में भर लेता है साल भर के लिए। अब तो चाहे ओले पड़ें, बारिश हो, ठंडी पड़े, कोई तनाव नहीं है, क्योंकि हमारे घर में तो रखा है। जितनी चाहिए पड़ती है, सब सामग्री रख लेता है और चैन से रहता है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि साधु अपने अन्दर दीक्षा लेते ही समता की सामग्री भरकर रख लेता है और कहता है वह कि जो होता हो, वह होने दो, मेरे घर में तो व्यवस्था है। लेकिन जो नहीं रख पाता है, उसकी हालत देखो। साधु तो बाद में बने, पहले तो श्रावक रहे ना ? अपन ने देखी है जगत की लीला। जिनके घरों में व्यवस्था नहीं होती है, बारिश में जब सेठ लोग घर में बैठे होते हैं, वे बेचारे हाथ जोड़े आते हैं और कहते हैं - सेठजी! तीन दिन से चूल्हा नहीं जला। तब लगता है कि आज तू रो रहा है, जब बारिश नहीं थी, तब तूने अपना काम क्यों नहीं किया? सुनो ज्ञानी! ये मोक्षमार्ग है, कवच धारण करने का मार्ग है। देश

कोई आक्रमण करेगा तो एक ही समय में एक ही पर करेगा। लेकिन जब जीव पर कर्म का उदय आता है और चारों तरफ से कर्म घेरते हैं, उस समय देखना। एक कीड़े को मैंने आँखों से देखा। उसमें पचासों चींटी लगी थी। जीवित कीड़ा बेचारा तड़प रहा है। सामने वाला फूँक भी रहा है, लेकिन कितनी क्रूर परिणामी चींटियाँ होती हैं, छोड़ नहीं रही हैं। टूट जाती है, लेकिन छोड़ती नहीं हैं। हे भगवान्। ये क्या हो रहा है? बेचारा, इधर भी पीड़ा, उधर भी पीड़ा। बस ज्ञानी। निहारना जिस जीव ने चारों ओर से पाप किया, किसी को चारों ओर से कष्ट दिया था, वही कीड़ा बनकर आया है। चींटियाँ चारों तरफ से खींच रही हैं। बस, ध्यान रखना, ये परिणामों की दशा सँभाल लोगे तो चीटियों से बच जाओगे और नहीं सँभाल पाये तो संसार में कोटि-कोटि चीटियाँ हैं। अपने-जैसा दुनिया को जानो। अपने-जैसा दुनिया को मानो। आपको वेदना होती है, उसी प्रकार सबको होती है। आपको हर्ष होता है, वैसे ही सबको होता है।

कोई व्रत लिया है और कदाचित् मन चलायमान हो जाये, तो भंग मत मान लेना। बेटे ने रात्रिभोजन का त्याग किया और अचानक बेटे ने रात्रिभोजन माँग लिया, तो मोही मातायें क्या कहेंगी? 'अरे बेटा! खाले ना? तेरा मन तो चला ही गया है।' माँ! नहीं। मन ही तो गया है, अभी अनाचार नहीं हुआ, अतिचार नहीं हुआ। यहीं सँभल जायेगा तो बच जायेगा। धन्य हो उस माँ सीता को और धिक्कार हो आज की अविवेकी माँ को। जिसके जीवन का भोजन ही माँस हो, ऐसा गिद्ध/जटायु, वह वीतरागी मुनिराज की चर्या को देख प्रसन्न होकरके, महाराज का जो पानी बर्तन में गिर रहा था, उस पर जाकरके बैठ गया तो उसके पंख स्वर्ण सदृश हो गये। जब चर्या हो गई, तो महाराज ने उस जीव को संबोधन दिया। सीता देख रही थी। मुनिराज का भाव क्या था? 'हे जीव। तुम माँस खाना छोड़ दो।' पर कैसे छोड़े बेचारा? जानकी कहती है- हे, मुनिराज! आप तो नियम दे दो। इसका पालन मैं कराऊँगी। इसको शुद्ध भोजन कराऊँगी। धन्य हो उस माँ को, जिसने एक जटायु को शुद्ध भोजन कराने का नियम लिया हो और धिक्कार हो इन माँ को जिनके पति व्रती बनना चाहते हैं लेकिन वे शुद्ध पानी तक नहीं पिला सकती। एक बेटा एक महीने को आलू छोड़ने लग जाये तो माँ उसकी धोती खींचती है कि ये पार्टी में जायेगा तो क्या करेगा? एक सीता ने जटायु का नियम पालन करा दिया, तुम अपने लालों का नियम पालन नहीं करा पाओगी तो तुम माँ बन कैसे गई हो? यदि आपके घर में स्वादिष्ट-से-स्वादिष्ट शुद्ध भोजन बने, तो तुम थाली फेंकोगे कि खाओगे? क्यों माँ? वही दाल, वही पानी, वही सबकुछ होता है। यदि तुम शुद्ध बना दो तो तुम्हारा क्या जाता है? जो होटल में जाये, तो समझो कि पुत्र किसका है? यदि किसी के बेटे ढाबे/होटल में जा रहे हैं, तो विश्वास रखना, इन माताओं से अच्छा भोजन बनाते नहीं बनता, क्योंकि अच्छा मिलता तो

क्यों जाता? रसना की लोलुपता इतनी तीव्र होती है कि व्यक्ति छोड़ नहीं सकता। माताओ! यह आपका प्रमाणपत्र है।

भैया! जीवन की रक्षा करना है तो रसोईघर की रक्षा करनी पड़ेगी। घर में चौके बनना प्रारंभ हो जायें तो आपको इतना पुरुषार्थ न करना पड़े। अब आपके घर में चौके नहीं बचे, इसलिए आपको मंच पर आकर बोलना पड़ रहा है कि चौके लगाना प्रारंभ करो। जहाँ द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि व भावशुद्धिपूर्वक भोजन बनता है, उसका नाम चौका है। अब तुम्हारे यहाँ 'चौका' समाप्त होकर 'किचन' हो गया। जहाँ किच-किच होता रहता है, वहाँ तुम्हारा भोजन होता है। इसलिये चौके लगाना प्रारंभ करो, निर्दोष भोजन चर्या करो।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---XXX---

भो प्रज्ञ!
समकित रस
बहु सरस
पीते हैं
ऐसे समताधारी
निर्ग्रंथ
दिगम्बर
आडम्बरशून्य
निज शील-ज्ञान धनशाली
शील सम्पत्ती।
हीन-दीन-दरिद्री
नहीं चख पाते हैं
समकित रस की
प्याली

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
भिन्न में
भिन्नत्व हो
देखो
मत देखो
भिन्न में
अभिन्न।
भिन्न में
देखो
अभिन्न
पर
भिन्न कभी भी
होगा नहीं
अभिन्न।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भावना द्वात्रिंशतिका

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमंशीलव्रतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं, वन्दत्यनाचारमिहातिसक्तताम्।।9।।

अन्वयार्थ : (प्रभो) हे प्रभो (इह ज्ञानिनः) ज्ञानीजन (मनः शुद्धिविधेः) मन की शुद्ध विधि के (क्षति) विनाश को (अतिक्रमं) अतिक्रम (शीलव्रतेः) शीलव्रत के (विलङ्घनं) उल्लंघन को (व्यतिक्रमं) व्यतिक्रम (विषयेषु) विषयों में (वर्तनं) प्रवर्तन को (अतिचार) अतिचार (अतिसक्ततां) अति आसक्ति को (अनाचारं) अनाचार (वदन्ति) कहते हैं।

सामायिक देशना

यहां आचार्य महाराज समझा रहे हैं कि किसी से दोष हो भी जाये तो उसे एकदम गिरा मत देना। रात्रिभोजन त्याग बेटे ने किया और यदि माँग भी लिया तो माँ! तुम समझाना, परन्तु खिलाने मत बैठ जाना।

व्रत का संकल्प लेकर जिसके मन की शुद्धि की क्षति हुई है, मन चला गया, मन की शुद्धि का घात हुआ है, वह अतिक्रम है। शील का उल्लंघन कर चल दिया है, वह व्यतिक्रम है। सामग्री जुटाना प्रारंभ कर दिया, तद्रूप चलना प्रारंभ कर दिया, विषयों की प्रवृत्ति की ओर जा रहा है तो व्यतिक्रम है। कदाचित् उस जीव ने सेवन भी कर लिया हो तो अतिचार है और आसक्तचित्त होकर लवलीन हो चुका है, यानी अनाचार हो गया।

एक-एक पर भी सँभल जाओ, अनाचार की ओर मत जाओ।

महा मत्स्य के कानों में बैठे तंदुल मत्स्य से पूछ लेना। एक भी जीव को नहीं खाता है, परन्तु महामत्स्य के मुख में आते-जाते जीवों को देखकर ऐसे परिणाम करता है कि मैं होता तो एक को भी न छोड़ता। ज्ञानी! पापों को करना तो पाप है ही, परन्तु पाप का चिन्तन करना भी महापाप है। महामत्स्य सातवें नरक जाता है, परन्तु तंदुल मत्स्य तो मात्र चिन्तन करते-करते सातवें नरक जाता है।

अच्छा करना, अच्छा कराना और अच्छे की अनुमोदना भी करना। जो जीव त्यागी बनना चाहे, तो अच्छे से अनुमोदना करना। 'भैया! अच्छे से पालन करना। धन्य हो आपके लिए।' परन्तु उससे ये मत कहना- ये पंचमकाल है, व्रत नहीं लो। समझाना। उल्टा नहीं समझाना, सीधा समझाना। इतनी प्रशंसा कर देना। कभी-कभी गिरते के लिए प्रशंसा भी उठा देती है। 'अरे! मैं कैसा हूँ, लोग मुझे कैसा मानते हैं? भैया! यदि किसी ने छोटे-से-छोटा भी व्रत लिया

हो, उसकी पीठ ठोंक देना, प्रशंसा कर देना। धन्य हो! आचार्य शान्तिसागर महाराज कहते थे कि यदि रात्रिभोजन का त्याग भी बच्चे ने किया है तो वह सौधर्म इन्द्र से बड़ा होता है, क्योंकि सौधर्म इन्द्र के तो कोई व्रत ही नहीं होता है। बच्चे के पास व्रत तो है।

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी आत्मा के अन्दर के विकारी और अविकारी भावों की चर्चा कर रहे हैं। अविकारी भाव चिद्रूप है, विकारी भाव कर्मकलंक से युक्त है। कर्मकलंक आत्मा को मलिन किये हैं। निज वस्तु नहीं है, तब भी निजत्व बुद्धि है। बन्ध का प्रधान कारण निज वस्तु में परबुद्धि और परवस्तु में निजत्व बुद्धि रखना है। यही बंध का मुख्य कारण है। बंध का बोध मात्र निर्बन्ध का कारण नहीं है। बोध से निर्बन्ध नहीं होता, बोधि से निर्बन्ध होता है। बोध 'ज्ञान' है, बोधि 'रत्नत्रय धर्म' है। जीव ने बोध तो अनन्त बार प्राप्त किया, परन्तु बोधि को एक बार भी प्राप्त कर लेता तो आज इस कलिकाल में न होता, पंचमकाल के दर्शन करने के लिए नहीं आना पड़ता, पंचमकाल तो तेरे कैवल्य में झलकता, मनुष्य बनकर नहीं आता। खोटे काल में, कल्मष काल में कल्मष भाव से युक्त है, इससे प्रमाणित होता है कि इस जीव ने भावसहित बोधि-समाधि को प्राप्त नहीं किया। यदि कर लेता, तो किसी भी अवस्था में पंचमकाल में जन्म न लेता। न बोधि प्राप्त की, न समाधि प्राप्त की। बोधि और बोध। लोगों ने बोधि का अर्थ 'ज्ञान' समझ लिया है। जबकि बोधि का अर्थ ज्ञान नहीं, रत्नत्रय धर्म है। बोध का अर्थ 'ज्ञान' है। वही ज्ञान 'ज्ञान' है, जिससे निर्वाण की सिद्धि होती हो।

आज अमितगति स्वामी सरस्वती की वंदना करने जा रहे हैं, जिनवाणी की आराधना करने जा रहे हैं। हे भगवती वाग्वादिनी! आपके प्रसाद से कोटि-कोटि भवों के अज्ञान का नाश होता है। हे भारती! जिस जीव ने आपको अपने हृदयकमल में विराजमान कर लिया है, उसकी अविद्या का नाश हुआ है। सरस्वती की आराधना लोगों ने नाना रूपों में की है, लेकिन यथार्थ में जिनशासन में जो सरस्वती है, उसका स्थान पवित्र है। मंत्रशास्त्रों में जैसी सरस्वती की आराधना है, उसकी बाहर में कोई उपमा ही नहीं है। न मयूरवाहिनी, न हंसवाहिनी, न वीणा-पुस्तक धारिणी। ब्रह्मांड में उसके जैसा कोई पवित्र स्थान नहीं है। उस स्थान पर तो अरहन्त देव भी नहीं विराजते जहाँ पर सरस्वती विराजती है। ज्ञानी! जितने पवित्र हृदय से तू अरहन्त की आराधना करता है, उतने पवित्र हृदय से तू सरस्वती की आराधना करना। ध्रुव सत्य यह है कि जैसे अस्नान यदि है तो हम अरहंत की प्रतिमा का स्पर्श नहीं करते, वैसे-ही जिन वस्त्रों से मलमूत्र करके आये हो, जिन वस्त्रों से अस्पृश्य को स्पर्श कर लिया हो, उन मलिन वस्त्रों से जिनवाणी का स्पर्श नहीं करना। जो जीव पवित्र स्थान पर विराजी सरस्वती माँ, जिनवाणी भारती को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धि के अभाव में आराधना करता है, वह जीव दुर्गति

का भाजन होता है। जिसने विनयपूर्वक सरस्वती की आराधना की है, वह कालान्तर में श्रुत-आराधना के फल से कैवल्य को प्राप्त होता है।

वही शारदा अरहन्त की वाणी है।

मैं जगत् की किसी वीणावादिनी, हंसवाहिनी की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। आचार्य अमितगति स्वामी उस सरस्वती की बात कर रहे हैं।

''ॐ ह्रीं अर्हन् मुखकमलनिवासिनी पापमलक्षयंकारिणि श्रुतज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति! तव-भक्ति प्रसादात् मम पापविनाशनं भवतु। क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवरधवले अमृतसम्भवे वं वं हूँ हूँ सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा।

यहाँ सरस्वती से तात्पर्य कोई स्त्री नहीं है। यह वह शारदा है जो शरदपूर्णिमा के चन्द्र के समान, जैसे चन्द्रमा पूर्ण प्रकाश देता है ऐसे ही, भक्तों के हृदय में कैवल्य के प्रकाश को प्रकाशमान करने में निमित्त बनती है, वो शारदा।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदादेवी, चतुर्थं हंसवाहिनी।।
पंचमं विदुषांमाता, षष्ठं वागीश्वरी तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं,अष्टमं ब्रह्मचारिणी।।
नवं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादां तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत्।।
वाणी त्रयोदशं नाम, भाषा चैव चतुर्दशं।
पंचदशं श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते।।
एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत्।।
सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे कामरूपिणी।
विद्यारंभं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा।।

ये कोई स्त्री के नाम नहीं हैं, ये वाग्वादिनी अर्हन्त की वाणी के नाम हैं। ये श्रुत के नाम हैं। प्रातः उठकर जो इन नामों का उच्चारण करता है, उसके अविद्या का नाश होता है और विद्या की प्राप्ति होती है। जो अनेकान्तमयी मूर्ति है, ऐसी सरस्वती हमारे लिए प्रकाशमान हो। कहीं यात्रा करने जाना हो तो किराया चाहिये, नाश्ता भी चाहिए, वाहन भी चाहिए, तब कहीं घूमने जा सकते हैं। लेकिन जिनवाणी के प्रसाद से एक कमरे में बैठ जाना, तीनों लोकों की यात्रा

प्रारंभ हो जायेगी। वर्तमान में तुम जिन स्थानों पर पहुँच भी नहीं सकते हो, नन्दीश्वर नहीं जा सकते हो, लेकिन सरस्वती के प्रसाद से नंदीश्वर की वन्दना होती है। जहाँ की चाहो', सारे लोक की वंदना होती है। घना आनन्द जिनवाणी माँ की गोद में ही है। मित्रों की मित्र जिनवाणी माँ है। मित्रों के साथ अधिक काल तक नहीं रह सकते हो। जहाँ अपना कोई न हो, वहाँ अपने पास जिनवाणी होती है। दुनियाँ के लोग बतियायेंगे, वे विकथा ही कर पायेंगे। लेकिन जिनवाणी के साथ रहोगे तो आत्मकथा ही होगी। समय को समझना सीखो। एक-एक पल की कीमत करना सीखो। जैसे तेल का प्रयोग करते हो, वैसे ही वचनों का प्रयोग करो। अत्यंत कीमती वस्तुओं का जैसे प्रयोग करते हो, वैसे ही वचनों का प्रयोग करो। आत्मा अर्थवान् होगी तो शब्दों का माध्यम होगा। आत्मा अनर्थ करेगी तो भी माध्यम शब्दों का होगा। भाषा जीव के भावों को उद्घाटित कर देती है। भाषा जीव को भगवान् बना देती है। जितने जीव समवसरण में सम्यक्त्व को प्राप्त हुए हैं, सब भाषा का प्रभाव है। घोर-घोर पापीजीव भगवान् की देशना सुनकर सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाते हैं। जो उपसर्ग कर रहा था जिनके ऊपर, उन्हें कैवल्य हो गया। जैसे-ही वाणी खिरी, उपसर्ग करनेवाले को सम्यक्त्व हो गया। कमठ से पूछ लेना जिन पार्श्वनाथ स्वामी पर तू उपसर्ग कर रहा था, कैवल्य होते ही उस कमठ ने पार्श्वनाथ की देशना सुनी तो कमठ को सम्यक्त्व हो गया। किसे शत्रु कहूँ, किसे मित्र कहूँ? जो मित्र होता है, वह उपसर्ग करते देखा गया और जो उपसर्ग कर रहा था, वह चरणों में जाकर सिर टेक रहा था।

ज्ञानी! भाव बदलो। बदल सको तो जीवों के भाव बदलवा देना। भव बदलने का प्रयास मत करना, भाव बदलवा देना। निमित्त बन सको किसी के तो समताभूत बनना। ऐसे निमित्त मत बनना जो स्वतः विषमताभूत हो जाये। जिनवाणी में कहा है- करुणा/दया है, तो जैन है। करुणा दया नहीं है, तो काहे के जैन? एक बिलखती चींटी को हाथ से निकालना पसन्द करते हो। आपको गुस्सा आ रही है, तुम शब्दों का बाण फेंक रहे हो, तुम्हारी करुणा कहाँ पलायन कर गई? भैया! यदि तुम्हारा कोई काम बिगड़ गया और तुम्हें दूसरे पर कषाय आ रही है, तो दूसरे से कुछ कहने से पहले थोड़ा समय स्वयं को दे देना। मात्र पाँच मिनट इस बात के लिए देना कि मुझे दूसरे पर गुस्सा आ रहा है। मेरा पूरा हृदय काँप रहा है, मस्तिष्क अस्त-व्यस्त हो रहा है, नाक फड़क रही है, आँखें लाल हो रही हैं, भृकुटियाँ तन रही हैं, चेहरा बिगड़ रहा है, बन्दर-जैसा लाल मुँह हो रहा है। एक दर्पण को लेकर आना। जब दर्पण देखने का तेरा त्याग नहीं है, तो उस दर्पण के सामने चेहरा कर देना।

क्रोध की स्थिति में तू दुःखमय जीवन जी रहा है, तुझे अपनी कषाय से पीड़ा होगी कि

नहीं होगी? एक क्षण को तू द्रोपदी क्यों नहीं बन जाता? जब द्रोपदी के पुत्रों का हनन कौरवों ने कर दिया, पाण्डव पक्ष के युवाओं ने कहा- 'माँ! आप आदेश करो, मैं कौरवों के पुत्रों का हनन करके आता हूँ।' धन्य हो! द्रोपदी कहती है- 'मेरे पुत्रो? थोड़ी देर ठहर जाओ। पहले मेरी बात सुन लो। आप जो कह रहे हो, राग में कह रहे हो, मेरे मन को समझाने के लिए कह रहे हो। मेरे सुभटो! मैं एक पुत्रवती माँ हूँ। पुत्र के वियोग का वेदन, पुत्र के वियोग का कष्ट/पीड़ा मुझे मालूम है। मैं एक पीड़ित माँ हूँ। मैं दूसरी माँ को पीड़ित करने तुम क्यों जा रहे हो? जब तक यह भाषा योगी, श्रावकों के अन्दर प्रवेश नहीं करेगी, विश्वास रखना, अभी धर्म बहुत दूर है। मैं पीड़ित हूँ, उस पीड़ा को मैं दूसरे को देने जाऊँगा तो मेरी अहिंसा कहाँ पलायन कर गई 'अहिंसा परम्ब्रह्म' सूत्र कहाँ गया? क्या ग्रंथों में ही दिखेगा?

जिनवाणी माँ कह रही है कि एक द्रोपदी के अन्दर इतनी करुणा हो सकती है। मैं बाँझ नहीं हूँ, मैं पुत्रवती हूँ। वियोग की वेदना को मैंने देखा है। तुम किसी के पुत्र को वियोग करने मत जाओ। द्रोपदी ने उन सुभटों के शस्त्रों को रखवा लिया और कहा, जाओ, उनको क्षमा करो।

एक गृहस्थ श्राविका के अन्दर इतनी क्षमा हो सकती है तो दिगम्बर योगी के अंदर कितनी बड़ी क्षमा होगी? देखो, भैया! जब तक इस भावात्मक धर्म की व्याख्या नहीं होगी, तो द्रव्यधर्म की वृद्धि होते दिखाई देगी, लेकिन भीतर का धर्म सूखते दिखाई देगा। वृक्ष की जड़ें भीतर के नीर से बढ़ती हैं, पत्तों को सींचने से नहीं बढ़ती। जड़ों में नीर जायेगा तो वृक्ष हरियायेगा। पत्तों में नीर सींचोगे तो क्या होगा?

यदि तू ऊपर से संलग्न लग रहा है और अन्दर में कालुष्य भाव चल रहा है, ज्ञानी! ये पत्तों का सिंचन चल रहा है, जड़ों को सुखाया जा रहा है।

जिसे आप धर्मात्मा मानते हैं, वह दूसरे घर में ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जो संग्रामभूमि में कभी शत्रु भी नहीं करता होगा। कहाँ चला गया तेरा धर्म? एक-एक धर्मात्मा हमारा दूर होता चला जायेगा, तो आखिर में धर्म चलेगा कहाँ? न धर्मो धार्मिकैर्विना'। तालाबों में, सरोवरों में, पर्वतों में धर्म नहीं होता। हमारी जो ये समाज बैठी है, ये जीवित रहेगी तो हमारा धर्म जीवित रहेगा। यदि अहिंसक हो, उज्जवल घर में जन्मी हो, जैन हो ''धर्मस्य मूलं दया'' मानती हो ''धम्मो दया विशुद्धो'' सूत्र यदि याद है, तो आप दुःखी हो लेना, लेकिन अपना दुःख दूसरे पर उड़ेल करके उसको दुःखी मत करना।

ज्ञानी के घर पर कोई परेशानी आ गई। भाई-भाई में विसंवाद हो गया। ठीक है, इसको

समता से झेल लेना चाहिए था। समय टालने को तीर्थवन्दना को चले जाना चाहिए था। पर इस जीव ने क्या किया? मुनिराज के पास पहुँचा- 'महाराज! मेरे घर में बड़ी विषमता है, इसको आप ही ठीक कर सकते हो।' विश्वास मानना, आपका इतना कहना हुआ, आप तो कहकर हल्के हो गये, लेकिन जिससे आपने कहा है कहीं वह आपका रागी दुःखी तो नहीं हो गया? आपके राग में बोल दिया कि भैया! ऐसा काम कर लो। ज्ञानी! भाई भाई में विसंवाद हुआ था। जैसे तेरे महाराज हैं, वैसे तेरे भाई के भी तो महाराज हैं। उनके लिए दोनों अभयदान के पात्र हैं। आप किसी का पक्ष नहीं ले सकते हो। यदि आपने पक्ष ले लिया तो आपका धर्मपक्ष समाप्त हो गया। आप तो षट्काय के जीवों की हिंसा का त्याग कर चुके थे, राग व प्रपंच से दूर थे। जिस राग को छोड़कर वैरागी बने थे। आपको गृहस्थी का राग ही मिटाना था, गृहस्थी का संचालन ही कराना था, गृहस्थी को व्यवस्थित ही कराना था, तो आपके घर की गृहस्थी कौन खराब थी? उसी को सँभाल लेते।

हे सुधी श्रावको! यदि आपने अपने घर की विषमता का यतिचरणों में निवेदन किया है, तो विश्वास रखना, एक योगी को आपने दुःखी किया है। आप तो दुःखी थे ही। जो सुखमय जीवन ही रहा था, उसे दुःखी क्यों कर दिया? इसलिए निर्ग्रन्थों के पास जाकर समता और सत्य की बात तो करना, परन्तु निर्ग्रन्थों के पास जाकर राग-द्वेष की बातें कभी नहीं करना। यदि दया है और यदि आपको गुस्सा भी आ रहा है, तो अन्य पर गुस्सा नहीं करना। वह सामायिक करने जा रहा था। उस जीव ने कितना पुरुषार्थ किया कि घर-गृहस्थी में रहकर भी सामायिक करने जा रहा था। आपने उससे कान में कुछ कह दिया, तो अब वह एक घंटे भगवान् का नाम नहीं ले पायेगा। उसके कान में मंत्र फूँक दिया है, वह मंत्र उसके समता-परिणाम को जला देगा। माँ! यदि तेरे अन्दर करुणा है, यदि तू जननी है, तो अपने मन की कषाय दूसरे पर मत उंडेलना। आपकी कषाय तीव्र होती है और दूसरे पर आपने उड़ेल दी, उसके भाव कहीं बिगड़ गये, आपकी बात तो झेल नहीं पायी और उसको कहीं हृदय का घात हो गया या फाँसी लगा बैठी तो आप बताइये, आपको पञ्चेन्द्रिय जीव की हत्या का पाप लगेगा या नहीं?

गले लगना महत्त्वशाली नहीं है। गले मिलो या न मिलो, मन मिल जायें तो गले मिलने की कोई जरूरत नहीं है और मन न मिले तो गले मिलने से क्या होगा? मन मलिन है, तो सम्यक्त्व की अन्यथानुपपत्ति और मन पवित्र है तो सम्यक्त्व की तथोपपत्ति। मिलोगे? किसी से नहीं मिलना तो रोज मिलोगे। मिलते रहो तो नहीं मिल पाओगे। शब्दों पर ध्यान देना। किसी से नहीं मिलोगे तो मिलके रहोगे। ज्यादा मिलने लग गये तो मिलना बन्द हो जायेगा। कम मिलोगे तो मिलने की भावनायें रहेंगी। अधिक मिल गये तो बिछुड़ने की भावनायें बनेगी। यदि

तू किसी से दूर बैठ गया, तो वह कहेगा, 'बात करनी है, जरा पास में आओ' और बिल्कुल चिपककर बैठ गये, तो कहेगा 'जरा दूर बैठना, गर्मी लग रही है। पहले से दूर रहते तो क्यों दूर भागना पड़ता? मिलकर ज्यादा मिलोगे तो दूर होना पड़ जायेगा। दूर होकर मिलोगे तो पास रहोगे। जिनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हों, उनके साथ कभी व्यापार नहीं करना। मिलकर नहीं रहना तो आपका श्रद्धान बना रहेगा, सामंजस्य रहेगा।

अरहन्त की अभिषेक-पूजन करना वैयावृत्ति है और मुनिराज के हाथ-पैर दबाना वैयावृत्ति है। ''पदयोःसम्वाहनम्'' मुनिराज का है, भगवान् का नहीं है। माँ भारती समझा रही है- बेटा! जितने अच्छे से रहोगे, उतने अच्छे रहोगे। जितने अच्छे से नहीं रह पाओगे, उतने नीचे गिर जाओगे। जिनवाणी की आराधना करना। आज तो सरस्वती की भक्ति है। कौनसी सरस्वती? ये जगत् की प्रतिमाओं की आराधना नहीं कराई जा रही है। ये है अर्हन् मुखकमल निवासिनी। जो अर्हन्त के मुखकमल में निवास करनेवाली है। अब बताइये, इससे पवित्र स्थान किसका होगा? ब्रह्मांड में इससे पवित्र स्थान कोई नहीं है। सरस्वती की जिसको सिद्धि चाहिये वे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धिपूर्वक जिनवाणी का अध्ययन करें और अधिक-से-अधिक मौन साधना करें, तो अपने आप सिद्ध हो जायेगी। अभ्यासी को सरस्वती सिद्ध होती है, नाभ्यासी को नहीं होती है। कोई एक साल को लेखन काम बन्द कर दे, फिर कलम चलाये, तो ज्ञानी! उनको सोचना पड़ेगा कि कागज पर कलम रखूँ तो कैसे रखूँ। अनभ्यस्त दशा में विद्या बिसर जाती है और अभ्यास करने पर विद्या छमाछम आती है।

ज्ञानियो! संयम धारण करने के लिए शिशु-अवस्था में बूढ़े बनकर रहना। जब मन पड़े, तभी दीक्षा ले लेना और ज्ञानी बनने के लिए हर समय बालक बनकर रहना। बूढ़े भी हो जाओ, तब भी ज्ञान के लिए बालक ही बनकर रहना। भैया! तब तक जिनवाणी पढ़ते रहना, जब तक केवली भगवान् न बन जाओ। जिनवाणी को मत छोड़ देना, श्रुत-अभ्यास कभी मत छोड़ देना। जब भी विचलित परिणामों को सँभालने का कोई गुरु मिलेगा, तब ज्ञानी! अर्हत् की वाणी ही मिलेगी। वन में, भवन में, अटवी में जहाँ तुम्हारा कोई भी नहीं होगा- 'ऐसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं।'

ये पंच नमस्कार महामंत्र ही शरणभूत होगा। यह सभी मंगलों में प्रथम मंगल है, सभी पापों को क्षय करनेवाला है। आचार्य नागसेन स्वामी ने लिखा- जब अंतिम सल्लेखना का समय आता है, कोई पाठ करने की क्षमता नहीं रहती, तब स्वाध्याय करना चाहिये कि नहीं करना चाहिये? करना चाहिये। तो करेंगे कैसे? णमोकार मंत्र की माला फेरना भी स्वाध्याय है और जब णमोकार की माला फेरना भी बंद हो जाय, तब 'ॐ' शब्द मात्र का पाठ करना भी

स्वाध्याय है। जिनके स्वाध्याय के नियम हो और ग्रन्थ न मिले, तो भी स्वाध्याय करना नहीं छोड़ना, णमोकार की माला फेर लेना, श्रुताभ्यास करते रहना, क्योंकि ध्यान करोगे तो अधिक समय नहीं कर पाओगे। माला फेरोगे तो भी अधिककाल तक फेर नहीं पाओगे। स्वाध्याय ध्यान हे, परम तप है, गुणश्रेणी निर्जरा का कारण है। युवाओं से मेरा कहना है कि तुम कोई व्रत का पालन न कर पाओ तो मत करना, लेकिन स्वाध्याय जरूर करना। मुझे ये विश्वास है कि जो स्वाध्याय करेगा वह कभी अनाचारी नहीं हो सकता है। जब दुनियाँ को कहने जायेगा, तो एकाध बार स्वयं के बारे में भी सोचेगा। स्वाध्याय करेगा तो हृदय पवित्र होगा। भाव जगा है ना? विशुद्धि आयी है, गद्‌गद् भाव आया है और वही स्वाध्याय है जब अन्दर में गद्‌गद् भाव आता है। भले ही एक वर्ष में एक ग्रंथ पढ़ना, एकान्त में बैठकर स्वाध्याय जरूर करना। सबसे ज्यादा आँखें चलती हैं। जिसकी आँखें ज्यादा चलें, समझ लो कि कुछ गड़बड़ है। और आँखों से भी द्रुतगति मन की होती है। जब आँखों को हमने अक्षरों में लगा दिया और मन को अर्थ निकालने में लगा दिया, दो ही तो गड़बड़ करने वाले थे, दोनों को पकड़ लिया। अब ध्यान हुआ कि नहीं हुआ? आँखों को अक्षरों में और मन को अर्थ निकालने में लगा दो, तो अनर्थ बन्द हो जायेगा। मन बन्दर है और बन्दर को किसी बगीचे में छोड़ दिया। मेरा वृद्धों से कहना है कि किसी युवा से ये मत कहना कि धर्म से च्युत हो गया है। उससे ये कहना 'बेटा! तू महान धर्मात्मा है। चलो, मेरे साथ पूजा करो।' पुचकार के ले जाओ तो पूजा भी करेगा और आपकी भी पूजा करेगा। विश्वास रखना, वो कहेगा, 'इन्होंने हमें धर्म में लगाया, ये गुरु हैं हमारे।' बन्दर को उद्यान में छोड़ दिया, वो क्या करेगा? उजाड़ देगा। ये मन बन्दर है, ये उजाड़ देगा। तो क्या करना चाहिये? इस बन्दर को फलदार वृक्ष पर चढ़ा दो। फलदार वृक्ष पर चढ़ कर फल चखना प्रारंभ कर देगा तो दूसरे काम करना बन्द कर देगा। ऐसे ही श्रुत-स्कन्ध है। मन बन्दर हैं, नय, निक्षेप, प्रमाण की इसमें डालियाँ है और मोक्षफल फल है। जब मोक्षफल की अनुभूति में लीन हो जायेगा, तो मन-बन्दर अपना अशुभ काम करना बन्द कर देगा। इस खोटे काल में श्रमण धर्म और श्रावक धर्म की रक्षा कैसे हो? इन दोनों को सुरक्षित रखना चाहते हो तो आज मुनियों को और श्रावकों को स्वाध्याय की परंपरा पर जोर देने की आवश्यकता है।

स्वाध्याय करेगा, तो भाव विशुद्ध होंगे, परिणाम निर्मल होंगे, तब परिणामों की निर्मलता तुम्हारे बाहर भी आयेगी। एक जैनकुल में जन्में बालक में जन्म से ही दया रहती है। वो कहता है कि चींटी आ रही है और खोटे कुल में जन्मा बालक एक साँप निकलता तो लाठी लेकर आ जाता। ये कुल की, पर्याय की प्रत्यासत्ति है।

ध्यान रखो, श्रावक को द्विविध धर्म का पुण्य मिलता है। श्रावक ने मुनिराज को आहार

दिया तो उसका निजी धर्म पला, दान। लेकिन मुनिराज ने उसके आहार को ग्रहण करके सामायिक साधना आदि की है। उससे मुनिधर्म का पालन हुआ। वो श्रावक मुनिधर्म में सहकारी हुआ है, उसका भी उसे पुण्य मिलेगा और स्वयं के दान का भी पुण्य मिलेगा। आप महान हो, कभी छोड़ मत देना। कहीं भी समय मिलता है, ज्ञानी! तुरंत चले जाना। यात्रा में भी कहीं निकलो, आपके पास समय हो और योगी मिल जाये, तो सब काम छोड़ देना, उनको आहार देना।

एक तीर्थ की यात्रा करने आप गये। जिस तीर्थ की वन्दना करने गये हो, वे बने कैसे? तीर्थंकर का तीर्थ बना कैसे? निर्ग्रन्थ हुए बिना तीर्थंकर नहीं होते हैं। जो-जो भगवान् बने हैं, सब मुनि होकर ही बने हैं। भगवान् का द्वार यहीं से खुला है। तू पाषाण के भगवान् को पूजने पहुँच गया, बननेवाले भगवान् को छोड़ दिया। ज्ञानी! उन मुनिराज को आहार देना तेरा पुण्य हुआ, जिनकी हम वन्दना करने जा रहे हैं, मार्ग तो यहीं से प्रारंभ हुआ। इतनी बड़ी नर्मदा बह रही है, नर्मदा तो बहुत लम्बी है, गुजरात आदि सबको पार करके निकल गई है सागर की ओर। लेकिन तब भी लोग अमरकंटक जरूर जाते हैं। हे नर्मदा! तू भले ही समुद्र में मिलकर महान बन गई लेकिन कहीं से प्रारंभ हुई है, वह स्थान यह है। ऐसे-ही हे ज्ञानी! तीर्थंकर के तीर्थ में चले जाना, लेकिन पहले मुनिराज की वन्दना करके जाना, क्योंकि नर्मदा निकली यहाँ से है। जो भी भगवान् बने हैं, वे अर्हन्त बनकर भगवन्त नहीं बने, निर्ग्रन्थ बनकर अर्हन्त बने हैं।

यहाँ कुछ चर्चा निर्ग्रन्थ के साधन, आहार चर्या के महत्त्व विषयक करता हूँ। चौके में रोटी बनती है। रोटी वही है। उसी रोटी को घर की गाय को खिला रहा तो भाव देखो। उसी रोटी को कुत्ते को खिला रहा तो परिणाम देखो। घर के द्वार पर भिखारी खड़ा है, तो रोटी 'डाल' आओ। अच्छे भाव नहीं आये। स्वयं का बेटा बैठ जाये भोजन करने, तो माँ सिर पर हाथ फेरती है 'बेटा! और खालो।' सब खा गया, तब भी कहती, बेटा! कुछ नहीं खाया, और खा लो।' मातृभाव टपक गया। और पति पहुंच गया भोजन करने, तो भाव बदल गये। जो बेटे को भोजन कराने के भाव थे, वे भाव किसी को भोजन कराने में नहीं होते। "जो है, सो है।" पति को भोजन कराया, बेटे को भोजन कराया। और कहीं द्वार पर निर्ग्रन्थ तपोधन आ जायें, तो सबको छोड़ देगी, 'नहीं, नहीं! पहले महाराज का पड़गाहन करो'। ओ स्वामी! नमोऽस्तु! नमोऽस्तु! नमोऽस्तु-नमोऽस्तु जैसे-ही गूँजता है, हृदय में आनन्द की लहर गूँज जाती है। जो लहर दौड़ती हे, वह किसी तीर्थ में मिलनेवाली नहीं है। आहार के समय श्रावक के परिणामों में जो विशुद्धि होती है, वह कोटि-कोटि द्रव्य के त्याग करने से नहीं मिल सकती है। यही कारण है कि

तपस्या करते हुए तपस्वी के रत्नों की वर्षा नहीं होती, लेकिन आहार लेने तपस्वी यदि श्रावक के घर में जाये तो रत्नों की वर्षा होती है। पंचाश्चर्य तपस्या करते हुए कभी नहीं होते, लेकिन जिस समय योगी आहार को जाता है, तब होते हैं। अहो ज्ञानी! निर्ग्रन्थ तपोधन एकान्त में तपस्या करे तो कोई नहीं पहुँचता है और चर्या को जायें तो पंचमकाल में भी सैकड़ों की भीड़ लग जाती है। 'चलो, भैया! खिसको। महाराज के आहार देखने आये हैं।'

क्या मिल रहा है तुमको? कोई खिला रहा है, कोई खा रहा है, तुम क्या देखने गए थे? बोले, महाराज! खाने या खिलाने का आनंद वे जानें। जो देख रहे हैं उसमें उस समय जो विशुद्धि है, वह कहीं नहीं मिलती है। इसलिए मुनि को दान देने चले जाना। यह वैज्ञानिक दर्शन है, अर्थवान दर्शन है, अर्थ देखकर ही काम करता है। आप विश्वास मानना, चर्या देखकर परिणामों में वह विशुद्धि बनती है। नकुल, सिंह, सुअर, बन्दर ऐसे जीव ने मात्र मुनि को आहार करते देखते-देखते ऐसे पुण्य का बंध किया कि चक्रवर्ती, कामदेव, गणधर ऐसे पदों को प्राप्त किया। सम्मेदशिखर जाओ, तब यदि तीन दिन की वंदना को जाओ तो एक दिन और लेकर जाना। तीन दिन पर्वत की वंदना कर लेना, चौथे दिन, जिनके नाम पर पर्वत पवित्र हुआ, उनकी वंदना भी करना।

''ते गुरु चरण जहाँ धरे, जग में तीरथ होय।''

वे निर्ग्रन्थ तपोधन जहाँ विराजमान होते हैं, वहीं वहीं तीर्थभूमि हो जाती है।

देखा आम को। छिलके भी काम के, दल भी काम का, गुठली भी काम की, मिगी भी काम की। हर वस्तु का उपयोग कर लेते ना? ऐसे ही ज्ञानी! हर पल का उपयोग करो। यहाँ प्रवचन सुनने आये हो तो पूरे मन से सुनो। आनंद के साथ सुनो। भगवान् के दर्शन करने जाओ तो पूरे उपयोग के साथ दर्शन करो। साधु के पास जाओ तो पूरे उपयोगपूर्वक देखो। आनंद लूटो, क्योंकि आज समय है, कल समय मिला या ना मिला। आज शरीर काम कर रहा है, विवेक काम कर रहा है, मन काम कर रहा है, तो अच्छे से काम करो, आगे पता नहीं क्या होगा? स्वाध्याय करने से ज्ञानावरण कर्म का क्षय होता है।

'आयरिय पसादो विज्जामंतं सिज्झति'' आचार्य भगवन् के प्रसाद से विद्या-मंत्र स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। ओरछा में विहार करके पहुँचा, सारे ग्रंथ छूट गये। सुबह भक्तिपाठ प्रारंभ। पाठ शुरू हुए, मैंने 'द्रव्यसंग्रह' का पाठ भी कर लिया। जैसे ही 'द्रव्य संग्रह' का पूरा पाठ हुआ, मैं उछल गया। आचार्यश्री के चरणों में लग गया। मुझे तो पता ही नहीं था कि मुझे 'द्रव्यसंग्रह' याद हो गया। जो आनंद उस समय मुझे आया था, वह बाँझ स्त्री को सन्तान होने पर भी नहीं

आयेगा। इतना आनंद आया था। इसलिए मैं आप सबको 'ज्ञानी' बोलता हूँ। अज्ञानता का दुःख मैंने देखा है। जब कुछ नहीं बनता, तब साधु भी अच्छे से बात नहीं करते। श्रावक भी देख लेते हैं कि महाराज बैठे हैं। श्रावक हो, गृहस्थ हो, उसके हाथ में कौड़ी होना चाहिए, नहीं तो बेचारे की कोई कीमत नहीं करता। ज्ञानी को आप बार-बार क्यों बुलाते हो? क्योंकि कुछ दिखता है। हर जगह पूजा पुण्य की होती है। लेकिन साधु हो तो कौड़ी नहीं होना चाहिये। साधु के पास कौड़ी है, तो वह कौड़ी का नहीं है। साधु के पास ज्ञान की, चारित्र की सम्पत्ति तो होना ही चाहिये और ज्ञान की सम्पत्ति कम भी हो जाये, लेकिन चारित्र की सम्पत्ति कम नहीं होना चाहिये और चारित्र में तो संतोष ठीक, श्रद्धान में किंचित् न्यूनता स्वीकार ही नहीं है। श्रद्धान में कमी आ गई है तो उसके पास कुछ नहीं बचा। युवाओ! तुम साधु बनो या न बनो, लेकिन साधु के चरणों में बैठे रहना। इतना विश्वास रखना कि जब भी मेरा कल्याण होगा तो साधुमार्ग से ही होगा।

माँ भारती से प्रार्थना कर रहे हैं- अंतिम श्वास के काल के। सुधी श्रावको! यह विश्वास रखना कि बिना मंत्र के कीलित करने की शक्ति जिनवाणी मात्र में है।

जलं रक्षेत् तैलं रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबन्धनात्।
मूर्खहस्ते न दातव्या पवित्रा जिनभारती।।

'ब्रुवन्ति मातृ भारती।' माँ भारती कह रही है, 'हे मेरे भक्तो! यदि तुमको मेरे ऊपर किंचित् भी करुणा हो तो मेरी पानी से रक्षा करना। भैया! दुनियाँ के तेल लगाकर आये और उन्हीं तेल के हाथों से जिनवाणी पलटना प्रारंभ कर दी पूरा ग्रन्थ बरबाद कर दिया। मेरी तेल से रक्षा करना। जैसे जल मेरा शत्रु है, वैसे ही तेल भी मेरा शत्रु है। और वेष्ठन अच्छे से बाँध कर जाना, ढीला-ढाला मत बाँधना। अंतिम बात सुनो- मर जाये तो जिनवाणी, जन्म ले तो जिनवाणी (दान), इतनी सस्ती जिनवाणी मत करो। ये जिनवाणी माँ है, किसको दे रहे? यह तो देख लो।

मुझे किसी मूर्ख के हाथ में मत दे देना। वह कहीं पैर पर रखेगा, कहीं रद्दी के साथ रखेगा। आज मुझे ऐसे व्यक्ति के हाथ में दो जो मेरी कीमत समझे। जो मेरी कीमत ही नहीं जानता है, उसे आप मुझे क्यों देते हो?

किमिष्टमन्नं खर-शूकराणां, किं रत्नहारो मृगपक्षिणाञ्च।
अंधस्यदीपं बधिरस्यगीतं, मूर्खस्य किं शास्त्रकथा प्रसङ्गतं।

अंधे को दीप, बहरे को गीत, क्या काम की? रत्नों का हार पक्षी के गले में टाँग दो, क्या

काम का? गधे को, सूअर को छप्पन प्रकार के भोग बनाकर रख देना, वह भोग नहीं सूँघेगा, मल के पास ही जमेगा। ज्ञानी! सूअर को मिष्ठान्न, पक्षी को हार, बहरे को गीत और अंधे को दीप दिखाना जेसे व्यर्थ होता है, ऐसे-ही मूर्ख व्यक्ति को शास्त्रों के प्रसंग सुनाना ऐसे होगा जैसे बया पक्षी ने बन्दर को उपदेश दिया कि तू ठिठुर रहा है, घर क्यों नहीं बना लेता? तो बन्दर ने उसका घोंसला ही मिटा दिया। इसलिए भैया! उपदेश भी देना तो सामनेवाले को समझ कर देना।

जिनवाणी को यूँ ही मत बँटवा देना। ये भगवती है। जमीन पर स्वयं बैठ जाना, परन्तु जिनवाणी को जमीन पर मत रखना। 'वीर हिमाचल तैं निकसी, गुरुगौतम के मुख कुण्ड ढरी है।' ये वीर-हिमाचल से निकली है और गुरु गौतम के मुख से होकर अपने पास आयी है। इसको व्यर्थ में मत जाने देना।

हे माँ भारती! मेरे द्वारा प्रमाद से किंचित् भी अर्थ की, पद की, वाक्य की, हीनता हुई हो, मेरे से कहीं अन्यथा भाषण हो गया हो, हे माँ भारती! कथन करने में मेरे से शब्द या अक्षर की भूल हो गई हो, तो हे देवी! मुझे क्षमा करना। वर चाहता हूँ कि मुझे केवलज्ञान की प्राप्ति हो।

सरस्वती के भंडार की, बड़ी अपूरव बात।
ज्यों खर्चे त्यों बढ़े, अरु बिन खर्चे घट जात।।

इसलिए पंडितजी, कोई कुछ भी पूछे, बता देना, छुपाना नहीं, ज्ञानी! तेरा कुछ नहीं जायेगा। ज्ञान को तो लुटा देना। जितना लुटायेगा, तू मुख से लुटायेगातो कभी सर्वांग से निकलेगा, उसका नाम केवलज्ञान होगा। जब तक इस शरीर में श्वासें चल रही हैं, तुम लुटाये जाओ। भैया! पर्याय का दुरुपयोग मत करना। जितना पुरुषार्थ हो जाये, जिनवाणी की आराधना करो और जिनशासन को जयवन्त करो। आपका ज्ञान ही इस देश को, राष्ट्र को, जिनेन्द्र के शासन को प्रकाशित कर पायेगा। परमार्थ की दृष्टि से भी देखें तो ज्ञात होता कि जिनवाणी के स्वाध्याय से ही वैराग्य होता है एवं हृदय में भाव जागृत होता है कि जगत में जो परिणमन हो रहा है वह तेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अतयंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---XXX---

यदर्थ-मात्रा-पद-वाक्य-हीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चिचनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवि!, सरस्वती केवल-बोध-लब्धिम्।।10।।

अन्वयार्थ : (मया) मेरे द्वारा (प्रमादात्) प्रमाद से (यदि) यदि (यत्) जो (अर्थ-मात्रा-पद-वाक्य) अर्थ, मात्रा, पद, वाक्य (हीनम्) से हीन (किंचित्) कुछ (उक्तम्) कहा गया हो तो (मया)मेरे (तत्) उस अपराध को (क्षमित्वा) क्षमा करके (सरस्वती देवि) सरस्वती देवी (केवलबोधलब्धिम्) केवलज्ञान रूपी बोधलब्धि को (विद्धातु) प्रदान करे।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी माँ जिनवाणी की आराधना कर रहे हैं और कह रहे हैं- हे देवी! अन्तस् के तम का उपशमन करने के लिए दिव्य ज्योतिपुंज आप हैं। मिथ्यात्व के तम को हरण करने के लिए भगवत् प्रकाशपुंज हैं। अनादि अविद्या के वश हुआ जीव चारों गतियों में भ्रमण कर रहा है। सारे जगत को जाना, पहचाना, परन्तु हे देवि! जाननहारे को नहीं जाना, पहचाननहारे को नहीं पहचाना। हमने पूरा समय आँखों के ज्ञान को दिया है, आत्मा के ज्ञान को नहीं दिया। चाक्षुष द्रव्य को जाना, परन्तु अचाक्षुष को जानने का विचार ही नहीं किया। सारी-की-सारी पर्याय के निषेकों को पर की पर्याय को निहारने में लगा दिया। निज की परिणति को निहारने में लगा देता तो हे शारदे! आज मेरा वही स्थान होता जो भगवान् महावीर स्वामी का सिद्धशिला पर है। ये मत कहना कि किसी ने मुझे रोककर रखा है, बाँध कर रखा है। भगवती वाग्वादिनी से प्रार्थना कर लेना, हे ब्राह्मी सरस्वती! आपकी करुणा प्राणिमात्र के ऊपर थी, लेकिन क्या करें? पक्षी भी पानी पीता है तो चोंच को खोलता है, बछड़ा भी माँ के आँचल में लगता है तो मुख को खोलता है, परन्तु हे भारती! आपके चारों थनों के अन्दर दूध अजस्रप्रवाहित था, लेकिन मैं ऐसा अभागा रहा कि मुख बन्द करके देखता रहा, मुख नहीं खोला। मुख खोल लिया होता तो आज मेरी भी वही दशा होती जो अनन्त केवलियों, भगवंतों की हुई है। आज मैं वहाँ होता, लेकिन अनन्त दुर्गतियों में भटकनेवाले जीवों के साथ बैठा हूँ। इसका कारण आप नहीं हो, ये मेरी अज्ञानबुद्धि है। भाई ने मुझे बाँध कर नहीं रखा, जनक-जननी ने मुझे बाँध कर नहीं रखा। मेरी अविद्या ने ही मुझे बाँध कर रखा है। मेरे राग ने बाँध कर रखा है। जिनवाणी में किसी के भेद की बात नहीं की गई है। हे भारती! आपकी असीम कृपा तो इतनी प्रबल है, कि एकेन्द्रिय जीव के कर्ण नहीं होते हैं, लेकिन उस भूमिप्रदेश पर भी आपकी वाणी खिरती है तो उस जीव के स्पर्शन इन्द्रिय को भी प्रभावित करती है। उसको भी प्रफुल्लित कर देती है। जहाँ जिनवाणी गूँजती है, वहाँ की वनस्पति भी पुष्पित-पल्लवित

हो जाती है। जिस वृक्ष के नीचे निर्ग्रन्थ तपोधन विराजमान हो गये हों, वहाँ सूखे वृक्ष फलवान हो गये, सूखे सरोवर पानी से भर गये। फिर ज्ञानी! जहाँ तीनलोक के नाथ की वाणी गूँजती हो, वहाँ कलुषित हृदय पवित्र न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। कल्मष दूर हो जाते हैं। एक क्षण ऐसा आता है जब एक धारा गूँजती है अन्तस् में। महानद का नाद जो होता हे वह अर्हन्त की देशना का नाम है। किसी को दोष मत देना, किसी ने आपको बाँध नहीं रखा। कोई आपको बाँध नहीं सकता है। यदि बँधा हुआ है तो तेरी अविद्या के कारण बंधा हुआ है, अज्ञान के कारण बँधा हुआ है। इतना गहन अज्ञान होता है कि ज्ञान की बात भी बुरी लगती है, अज्ञान ही अच्छा लगता है।

भैया! श्वान के मुख में रोटी है, छोड़ नहीं रहा है, खा नहीं रहा है। जितना रोटी में स्वाद नहीं आ पायेगा, उतना पीछा करके श्वान उसे खींच रहे हैं। हे श्वान! तुझे किस बात का कष्ट है? रोटी को या तो भीतर ले जा या बाहर कर दे। ये भीड़ तेरे को परेशान कर रही है।

अहो इन्सानो! तुम श्वान नहीं हो, इंसान हो। ये परिग्रह के टुकड़ों को छोड़ दो, तभी कर्म के श्वान तुझे छोड़ सकते हैं। यदि तुम परिग्रह का टुकड़ा नहीं छोड़ रहे हो, तो कर्म के श्वान तुझे छोड़ने वाले नहीं हैं। काटेंगे-ही काटेंगे। कौन किसको बाँधे हैं?

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः।।7।। (इष्टोपदेश)

जैसे मद को उत्पन्न करने वाले कोदों को खाने वाले व्यक्ति को हेय-उपादेय का विवेक नहीं रहता। जिसका ज्ञान मोह से आवृत हो चुका है, उसे तत्त्व समझ में आता नहीं। जिसका चित्त मोह से आवृत है, जिसका विवेक मोह से आच्छादित है, जिसका ज्ञान मोह से ढँका हुआ है, ज्ञानी! उसको वस्तुस्वभाव के बारे में कोई विवेक जागृत नहीं होता। जिसमें लीन हो रहा है,उसी को अपना मान बैठा है। परन्तु ध्रुव सत्य ये है कि जो इन्द्रियों के द्वारा भोग रहा है, वे इन्द्रियां भी तेरा स्वभाव नहीं हे तो फिर जिनसे भोगा जा रहा है, वह भोग तेरा कहाँ है? कोई पुण्य के नियोग से जिनवाणी के पास नहीं पहुँचा, कोई तपस्या जीव ने की होगी, श्रुत की आराधना की होगी, लेकिन लोभ कषाय ने वहाँ भी झकझोर दिया। भैया! श्रुत की आराधना की होगी, कोटि-कोटि भवों में कभी तीर्थंकर की देशना सुनी होगी वे संस्कार इस काल में आ गये। वर्तमान में जो धोती-दुपट्टा पहने बैठे हैं, भैया! कोई बहुत बड़ा पुण्य सत्ता में रखा होगा, जो इस मुद्रा को धारण करने के परिणाम हो गये हैं। ऐसे मानकर चलना, जैसे ज्ञानियो! पन्ना के अंदर बहुत पत्थर हैं, लेकिन उन्हीं पत्थरों के बीच-बीच में क्वचित्-कदाचित् हीरे के दाने भी छिपे हुए हैं। ऐसा मत मान लेना कि जहाँ हाथ लगाओ वहाँ हीरा निकलता है। वहाँ

अनेक कुए खोद देते हैं, तब कहीं एकाध दाना हीरे का निकलता है। ध्यान दो, कोटि-कोटि पर्यायों में तुमने पाप किये हैं। पाप की पर्याय तुमने कोटि-कोटि बार धारण की है। इस बीच में ज्ञानी! कहीं कदाचित् एक बार अरहन्त की मुद्रा में दृष्टि पहुँच गई, एक बार निर्ग्रन्थ को निहार लिया, एक बार जिनवाणी को सुन लिया, वह पुण्य आपके पास रखा हुआ था, जैसे पत्थरों के बीच में हीरा निकलता है। पंचमकाल में किंचित् भी तुम्हारे धर्म के परिणाम आ रहे हैं तो समझ लेना कि कोटि-कोटि पाषाणों के बीच में एक हीरे का टुकड़ा छुपा हुआ था, जो आज तेरे उदय में आया हुआ था। किसके भाव होते हैं? जो यहाँ बैठे हैं, विधिरूप सोचना प्रारम्भ कर दो। भैया! वक्ता हो या श्रोता हो, विधि का विधान बहुत अच्छा लगता है। इनसे यही कहना, इतने भागयवान होते तो पंचमकाल में आये क्यों? तुम इतने भाग्यवान हो कि पंचमकाल में आने के बाद भी पंचपरमेष्ठी के चरणों में बैठे हो। ये तुम्हारा भाग्य है। पंचमरमेष्ठी के चरणों में बैठे हो, इसे नष्ट मत कर लेना, इसे समाप्त मत कर लेना। हजार नोटों की गड्डी है और एक काड़ी है, शक्ति ज्यादा किसमें है? हजार नोटों की गड्डी से हजार (काड़ियाँ) खरीदी जा सकती हैं, परन्तु एक काड़ी कहती है कि तू शान्त रह, मेरा किंचित् मात्र भी स्पर्श आपको राख कर देगा। हे पंचमकाल के ज्ञानियो! पुण्य हजारों-लाखों की गड़डी के समान है, उससे पापों की प्रवृत्ति को कोटि-कोटि खरीदा जा सकता है, लेकिन पापप्रवृत्ति कहती है कि सुन, पुण्य! मेरे में वो ताकत है कि मेरा जरा-सा स्पर्श हो गया तो तुम कितने ही महान बने रहना, पर तुम मेरे वश में ही हो। सुबह तुम सिंहासन पर बैठे मिले थे। तुमने मेरा आश्रय ले लिया। जो पुण्य सिंहासन पर बिठालता था, उसके क्षीण होने पर पाप ने तुमको नाली में पहुँचा देगा। पाप ये कह रहा है कि मेरी बहुत ताकत है। न किसी ने गिराया है, न किसी को किसी ने बिठाया है। विश्वास रखना, ये अपने अन्दर का भाव निकाल देना कि मैंने ज्ञानी को ऊपर उठा दिया। ये सब भ्रम की बातें हैं। जिस जीव का पुण्य ऊँचा होता है और प्रवृत्ति सम्यक् होती है और चारित्र निर्मल है, तो दुनियाँ सिर पर बिठालेगी। जिसका चारित्र पतित है, वह सिंहासन पर बैठा लुढ़क जायेगा। यदि रक्षा कर सको तो अंतिम समय तक अपने परिणामों की रक्षा करना।

भगवान् के चरणों में इतनी बात माँगना 'हे नाथ! इतनी बुद्धि मेरे पास रहे कि अंतिम श्वासों तक तेरा साथ न छूटे। हे प्रभो! इतनी प्रज्ञा मेरे पास रहे कि अंतिम श्वासों तक जिनवाणी उच्चारित होती रहे। हे जिनेश्वर! अंतिम श्वासों के समय कोई निर्ग्रन्थ गुरु मेरे कानों में णमोकार सुनाते रहे।' इससे बड़ी और कोई बात नहीं चाहिये। अंतिम श्वास के काल में कोई णमोकार सुनानेवाला मिल जाये और-कुछ मत माँगना,क्योंकि बाकी सब मिल जायेगा। निदान भी

करना हो तो यही निदान कर लेना, बाकी निदान मत करना। प्रशस्त निदान। 'भगवती आराधना' में लिखा है- हे परमेश्वर! अंतिम श्वास निकलने का समय जब आ जाये तब हमें न सम्पत्ति दिखे, न विपत्ति दिखे। दिख सके तो मात्र पंचपरमेष्टी के चरण दिखें और माँ जिनवाणी का आचरण दिखे और निर्ग्रन्थ गुरु के चरण दिखें। 'बोधिसमाधिनिधानं।' वहीं ज्ञान 'ज्ञान' है जिस ज्ञान से बोधि की प्राप्ति हो। वह ज्ञान 'ज्ञान' नहीं है जो बोधि को भिन्न कराये। वह अज्ञान है।

''**हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्**'' ।।2।। (प.मु.)

हाथ में दीपक किसलिये है? गड्ढे में न गिर जाऊँ, मल पर पैर न पड़ जाये, कोई कालिया नाग न डस ले। हाथ में दीपक क्यों? करतल में दीपक रहे, ज्ञानी फिर भी कुँए में गिर गये थे। दीपक का दोष है कि तेरी दृष्टि का दोष है? दीपक का दोष नहीं, तेरी दृष्टि का है। कोटि-कोटि ग्रन्थों का ज्ञान होने पर भी, ज्ञानी विषयों के गड्ढे में गिरे थे। ज्ञान का दोष नहीं, ये तेरे कुज्ञान, कुदृष्टि का दोष है।

'संयमाय श्रुतं धत्ते'

ज्ञानी! संयम के लिये श्रुत को तो धारण करना, परन्तु श्रुत के पीछे संयम को मत छोड़ देना। मात्र ज्ञान के राग में आकर संयम को छोड़ कर मत बैठ जाना। संयम में दोष लगा कर मत बैठ जाना। संयम की पूर्णता मोक्ष दिलायेगी, ज्ञान की पूर्णता से मोक्ष नहीं मिलता, संयम की पूर्णता से मोक्ष मिलता है। ज्ञान की पूर्णता तेरहवें गुणस्थान में हो जाती है। केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान में प्रकट हो जाता है, लेकिन चारित्र की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। अठारह हजार शील की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। चारित्र चक्रवर्ती होता हे वह जीव जो अशरीरी पद की ओर जा रहा है। वे चौदहवें गुणस्थान में अयोगकेवली भगवन्त होते हैं।

ज्ञान (मध्यम) दीप है। तीन अँगुलियाँ देखो। बीच की मध्यमा सबसे ऊपर है, तर्जनी को भी नीचे किये हैं, अनामिका को भी नीचे किये हैं। एक ओर दर्शन, दूसरी ओर चारित्र, मध्य में ज्ञान बैठा हुआ है। ज्ञान कहता है- सुनो, मैं चारित्र को भी प्रकाशित करता हूँ, दर्शन को भी प्रकाशित करता हूँ। चारित्र में विशुद्धि ज्ञान दिलायेगा और दर्शन में विशुद्धि ज्ञान दिलायेगा, लेकिन ज्ञान अकेला कुछ कर नहीं पायेगा।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं, हतां चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलान्धको दग्धः पश्यन्नपि च पङ्गुलः।।

गंगाराम अंधा था। बंशीधर लंगड़ा था। दोनों मेले में जाना चाहते थे। मालूम यह कहानी

कहाँ से बनाई गई है? 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' में से बनी यह कहानी है। यह भट्ट अकलंक स्वामी का महान ग्रंथ है। लंगड़ा चल नहीं पा रहा है, अंधा देख नहीं पा रहा है और दोनों मेले में जाना चाहते हैं। दोनों जंगल में खड़े हुए हैं। जंगल में ग्रीष्मकाल में सूखे बाँस का घर्षण हुआ, चिनगारी उत्पन्न हो गई। जैसे-ही चिनगारी उत्पन्न हुई, जंगल दाह-दाह जलना प्रारम्भ हो गया। लंगड़ा देख रहा है कि जंगल में आग लग गई। बेचारा देखते-देखते झुलस रहा है। अंधा दौड़ते-दौड़ते झुलस रहा है।

चारित्र अंधा है, ज्ञान लंगड़ा है। ज्ञानविहीन चारित्र नष्ट हो जाता है और चारित्रहीन ज्ञान नष्ट हो जाता है। हे पंगु! तू अंधे के कंधे पर बैठ जा। अंधा चले, लँगड़ा मार्ग दिखाये, तो दोनों मेले में पहुँच जायें। ज्ञान के पास में चारित्र आ जाये और चारित्र के पास में ज्ञान आ जाये तो दोनों की रक्षा हो जाये और दोनों शिव-मेले में पहुँच जायें। जिनकी धारण है कि ज्ञान मात्र से मोक्ष होता है, वे अज्ञानी हैं। जिनकी धारणा है कि चारित्र मात्र से मोक्ष होता है, वे भी महा-अज्ञानी हैं। इसलिये जिस ज्ञान में चारित्र नहीं है, वह ज्ञान भारभूत है। आचार्य सोमदेव सूरि नीतिकारों में, अध्यात्म के क्षेत्र में कुन्दकुन्द स्वामी; दिगम्बर जैन पुराण साहित्य के क्षेत्र में रविषेण, जिनसेन स्वामी; करणानुयोग में वीरसेन स्वामी, पुष्पदन्त-भूतबली स्वामी, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, यतिवृषभ आचार्य ऐसे महान-महान आचार्य हुए हैं। ऐसे ही न्याय के क्षेत्र में विद्यानन्द स्वामी, अकलंक स्वामी, समंतभद्र स्वामी, ये महान आचार्य हुए हैं। ऐसे ही नीति के क्षेत्र में आचार्य सोमदेव सूरि हैं। उन्होंने 'नीतिवाक्यामृत' ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ में उन्होंने लिख दिया कि नीति के बारे में अब जो भी ग्रन्थ लिखा जायेगा वह इसी ग्रन्थ का पिष्टपेषण होगा।

आचार्य सोमदेव सूरि 'नीतिवाक्यामृतम्' ग्रन्थ में लिखते हैं- चारित्रविहीन का ज्ञान मुख की कण्डक खुजलाने के समान है। जैसे किसी जीव के हाथों में कण्डक हो जाये। खाज-खुजली । भैया! अपने बुन्देलखण्ड में कहते हैं 'जो खाज खुजाने में मजा है, वह कछू में नइयाँ'। जब खुजली होती है, तब खूब रगड़ लेता है, खुजाता रहता है। चारित्र तो बेचारे के पास है नहीं, ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो उसके मुख में खुजली हो गई है, सो दुनियाँ में चिल्लाता रहता है। वह मुख की खुजली खुजाने के समान है। जिनवाणी कहती है- पण्डित वहीं, जो समाधिमरण करता हैं। सल्लेखनामरण करनेवाला दिगम्बर मुनि महापण्डित होता है। वहीं सोमदेव सूरि आगे क्या लिखते हैं यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य में? जिनको श्रेष्ठ वक्ता बनना हो, उनको जिनसेन स्वामी का 'पार्श्वभ्युदय', सोमदेव सूरि का 'यशस्तिलक चम्पू' और वीरनंदि स्वामी का 'चंद्रप्रभ चरित', ये साहित्य के बेजोड़ ग्रन्थ हैं, इनका अध्ययन करना चाहिये। नीतिकार

भी हुए हैं, साहितयकार भी हुए हैं, सिद्धान्तवादी, तर्कवादी, न्यायवादी सभी आचार्य हमारे यहाँ हुए हैं। विपुल साहित्य है अपने पास। समय मिल भी जाय तो मति भी सुमति चाहिये। भैया! माँ भारती जिनवाणी उसे ही सिद्ध होती है, वाग्वादिनी देवी सरस्वती की सिद्धि मात्र उसी को होती हे जिसकी मति श्री और श्रीमती से दूर होती है। उसकी मति सुमति और सन्मति हो जाती है। उसको जिनवाणी माँ सिद्ध हो जाती हे और जिसकी मति श्री और श्रीमती में लगी है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जितनी बुद्धियाँ भ्रष्ट हुई हैं, हो रही हैं, भविष्य में होगी, इन्हीं दो के कारण होंगी। या तो श्री होगी या श्रीमती होगी। नहीं मानो तो कौरवों से पूछो और रावण से पूछो। हे कौरववंशियो। आपकी बुद्धि श्रीमती के कारण भ्रष्ट हुई। भगवान महावीर के पाँच नामों में एक नाम है सन्मति। हम सन्मति के भक्त हैं, श्री और श्रीमती के भक्त नहीं हैं।

हे ज्ञानी! पानी को देखो। स्वाति नक्षत्र का पानी साँप के मुख में चला जाए तो जहर हो जाता है। यदि गटर में चला जाये तो नाली में बह जाता है। वही पानी नीम के वृक्ष में चला जाए तो कड़वा रस देता है। ईख के खेत में चला जाये तो मीठा रस देता है। सीप के मुख में चला जाए तो वही पानी मोती बनकर निकलता है। ऐसे ही ज्ञान होता है।

किसी के गाल पर चाँटा मारना हो तो हाथ चाहिये। किसी को आशीर्वाद देना हो तो भी हाथ चाहिये। एक का हाथ रुला रहा है, एक का हाथ हँसा रहा है। ज्ञान भी हाथ के समान है। उपयोग क्या कर रहा है? एक सुधी श्रावक इन हाथों से अभिषेक करके और मुनि को आहार देकर पुण्यबंध कर रहा है और एक पापीजीव परजीव का घात करके पाप का बंध कर रहा है। इस कर ने क्या किया? करनी तेरी जैसी थी, इस कर ने वही किया। आज से किसी को दोष मत देना, शरीर को दोष मत देना, इन्द्रियों को दोष मत देना। इन्द्रियों में पाप नहीं, शरीर में पाप नहीं, तेरी परिणति में पाप है। ज्ञानी! संसार और आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना है तो मौन लेना सीखो।

हे वर्द्धमान! भले ही लोग पंचमकाल में हैं, लेकिन आपकी सत्यता सामने नजर आती है। इतनी दूर से श्रावक अपरिचित होकर भी जिनवाणी सुनने आया है। इसका तात्पर्य है कि तीर्थंकर के समवसरण में यदि सौधर्म इन्द्र सुधर्मा सभा छोड़कर आता है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। हे भगवन् ! आपकी देशना कैसी होती होगी? जब मुझे परोक्ष ज्ञान को कहने में 'आनंद' आता है, तो आप प्रत्यक्षज्ञान का आनन्द लूटते होंगे। आपके आनन्द का क्या कहना है? 'घनाघन आनन्दस्वरूपोऽहं', घनाघन आनन्द आता है। जब सारे जगह के आनन्द समाप्त हो जाते हैं, तब भगवती निजवाणी का आनन्द प्रारम्भ होता है। इसलिये किसी के मन में शंका

हो तो आज निकाल देना कि तीर्थंकर के समवसरण में जन्मजात बैरी जीव एक साथ कैसे बैठते हैं? इसमें कोई शंका नहीं करना, ज्ञानी! वो बैठते ही थे। बैर तभी तक होता है जब तक विकल्प होते हैं। जहाँ विकल्प शून्य हो गये, वहाँ बैर बचा किसमें? एवंभूतनय से श्रोता बनकर आयेगा वो, जिनवाणी को ऐसे-ही सुनेगा जैसे कि खेतों की काली मिट्‌टी मुख फाड़ चुकी है, पानी की याद कर रही है। ऐसे-ही जो सच्चा श्रोता होता है, वह मुख फाड़ करके माँ जिनवाणी के नीर का पान करता है।

ज्ञानी! ये जिनवाणी की भक्ति है। जिनवाणी की भक्ति, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन-भक्ति-ये तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध के लिए सोलहकारण भावनाओं में एक नहीं, दो नहीं, दो नहीं, तीन-तीन भक्तियाँ मात्र सरस्वती जिनवाणी की है। जब तुम दुकान से घर आते हो और घर से दुकान जाते हो तब जो तुमने सुना हो, समझा हो, उसे स्मरण करते हुए जाना और न समझा हो, न सुना ही हो, तब भी ज्ञानी! णमोकार तो आता है, उस णमोकार को पढ़ते चले जाना, तेरा स्वाध्याय चल रहा है। स्वाध्याय में, शास्त्र में लिखा क्या है? यही तो लिखा है कि उपयोग को धर्म में लगाओ। सो आपने लगा लिया, हो गया स्वाध्याय।

इस संसार में मनुष्य-जैसा कोई अहंकारी जीव पैदा नहीं हुआ। नरकगति में क्रोध जन्म से होता है। तिर्यञ्च गति में माया जन्म से होती है। देवगति में लोभ जन्म से होता है और मनुष्यगति में मान विरासत में जन्म से मिला होता है। अहंकार का पुतला है ये तो तीव्र अहंकारी इस जगत में कोई है तो उसका नाम मनुष्य है। बच्चा जन्म लेता है तो काँय-काँय चिल्लाता है। समझो वह क्या बोल रहा? 'तुम सब खड़े हो, गद्‌दी पर कुर्सियों पर बैठे हो, मैं जमीन पर पड़ा हूँ, जल्दी उठाओ।' उसकी मानकषाय बिलख रही है। माँ उठा लेती है तो चुप हो जाता है। ना दूध पिलाया, न मिठाई खिलाई, गोदी में ले बस लिया तो रोते-रोते चुप हो गया, माँ! तूने क्या किया? तेरी गोद में आने से चुप नहीं हुआ है, उसके मानकषाय की पुष्टि हो गई, सो चुप हो गया है। आप विश्वास रखो, कोई बढ़िया-से-बढ़िया कार्यक्रम हो रहा हो और ज्ञानी को न बुलाओ आप, तो पूरे जबलपुर में हल्ला करेगा- अरे! वह कार्यक्रम अच्छा हुआ ही नहीं है। इसका मुख बन्द करवाना हो तो पहले से बुलाकर एक माला डलवा देना, फिर कितना ही खराब हो जाये कार्यक्रम, वो कहेगा भैया! बहुत अच्छो भओ। 'जी के राज में रहिो, ऊ के जैसी कहियो, ऊँट बिलइया ले गई, तो हाँजू हाँजू कहियो।'

ये तुम्हारा नौकर नहीं है। मनुष्य कभी किसी का नौकर हो ही नहीं सकता। काम तो कर रहा है, पर वह तुम्हारा नौकर नहीं है। उसके पुण्य की हीनता और पाप की तीव्रता है। गरीबी नौकर है, वो जीव तुम्हारा नौकर नहीं है। सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। उसे मत डाँटों।

घड़ी का काँटा कब छः पर आ जाये, कब बारह पर आ जाये, सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। नौकर भी स्वामी होते देखा गया है, स्वामी भी नौकर होते देखा गया है। राजा भी भृत्य हो गया और भृत्य भी सम्राट हो गया। 'छहढाला' पढ़ा है कभी? तो सुनो- "कबहु आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन।"

भैया! आज शुद्धि से लौट रहे थे, एक पिल्ला बेचारा पड़ा हुआ था. बड़े कुत्ते ने पकड़कर चींथ दिया, परंतु उसका पुण्य तेज था। जब तक हम लोग आये, उसकी श्वास चल रही थी। महाराज ने णमोकार सुनाया, सभी सुन रहे थे। सभी पिल्ले के भाग्य की सराहना कर रहे थे। साधु, त्यागी सदैव नहीं मिलते समाधि के काल में। उसके सामने इतने साधु खड़े हुए थे। णमोकार सुनते-सुनते वह ऊपर चला गया। जिनसेन स्वामी ने महापुराण में लिखा, मगरमच्छ बड़ी मछली को निगल रहा है। कभी कोई बलवान होता है तो निर्बल को सता रहा है। यह दुनियाँ की लीला है। तुम किसी को मत सताओ। समाधिकाल में कषाय मत निकालो ताकि परिणाम न बिगड़ें।

भैया! सँभलकर रहना, पंचमकाल है पंचमकाल। जब छोटे-छोटे, जिनको अभी खाते नहीं बनता, उनसे कषाय बनती है, विश्वास रखिये आप। जिनके युगल बेटे हो जायें, फिर देखो माँ को। एक को संभालो तो दूसरा भागता है। यदि माँ थाली लगायेगी तो क्रम से ही लगायेगी ना? यदि बड़े बेटे को पहले लग गई, तो छोटे का चेहरा देखना। अहो जगत की लीला, पर धन्य हो आपकी क्षमा को। आपकी सामर्थ्य को धन्य हो कि आप इतना सहन कर कैसे लेते हो? घर में जी कैसे लेते हो? धन्य हो आपकी समता को। यदि ऐसी समता साधु बनकर रख लेते, विश्वास रखो, तुम्हारा कल्याण हो जाता। सुनो, भैया! ये जिनवाणी की महिमा है। जैसे पीले वस्त्र हैं, ऐसे पीले परिणाम हो जायें। समय किसी का होता नहीं और जब भी काम में आयेगा तो समय ही आयेगा। समय किसी का होता नहीं। समय यानी आत्मा, समय यानी धर्म, समय यानी आगम। आगम ही समय में काम में आयेगा, अन्य कोई काम में नहीं आयेगा। इसलिये जिनवाणी की आराधना करो। हे भगवती माँ जिनवाणी! आप कैसी हो? आपकी आराधना का फल धन नहीं है, आपका फल धरती नहीं है। अब जितना भी ज्ञान प्राप्त करना, संयम के लिए करना। भैया! तुम मुनिराज न भी बन पाओ, तुमसे बहुत बड़ा संयम न भी पले, यदि एक मिनिट का भी संयम पले तो एक मिनट का भी नियम ले लेना। आपने चींटी को देखा? दीवाल पर चढ़ती है, फिर गिरती है, फिर चढ़ती है, फिर गिरती है। लेकिन फिर ऐसा पुरुषार्थ करती है कि वह चढ़ ही जाती है। ऐसे ही यदि आपसे बहुत सारा नहीं पलता तो एक घंटे का नियम ले लेना। एक घंटा भी कठिन पड़े तो एक मिनट का ले

लेना। एक मिनट तो बहुत बड़ा होता है, 'अ इ उ ऋ लृ मात्र का काल, इतने में तो मोक्ष हो जाता है। ज्ञानी! एक मिनिट का भी तुमने नियम लिया, वे संस्कार अन्दर चले गये। जो व्रत भंग करने के संस्कार थे, उन संस्कारों का पतन होगा, अन्य व्रत धारण करने के संस्कारों का उत्थान होगा। एक मिनिट का नियम लेने वाला एक कोटि वर्ष का नियम लेने का संस्कार डालेगा। इसलिए कभी भी अपने आप को नियम से भिन्न मत छोड़ना। हमारे बुजुर्गों ने अपने बुजुर्गीय भाषा का तो ध्यान रखा। वे क्या बोलते? "अरे दद्‌दा! कैसो जमानो बदल गओ, आज के मोड़ी-मोड़ा तो बातई नई सुनत" बिल्कुल ही बदल गये, पता नहीं कहाँ जा रहे? धीरे-से उनके पास जाकर कहना- 'का बतायें दादा! आज के मोड़ी-मोड़ा तो बदलइ गये। लेकिन तुम पहले मोड़ी-मोड़ा रहे, वे तो बचेइ नइया। तुम तो बूढ़े हो गये।' हाँ ज्ञानी! तू अपना पुराना शरीर नहीं दिखा पा रहा है, तेरा शरीर हीं क-सा नहीं दिख रहा है। जब तू कभी कूदता था, तो जमीन से पानी निकलता था। आज तेरा शरीर बूढ़ा हो गया है। जब तू ही बदल गया, तो जमाना भी बदलेगा। दुनियाँ बदलेगी कि नहीं बदलेगी? आप अपने आप को 80 सालभूत शरीर को देख बूढ़े हो गये हो। यदि आज के वृद्धों को अपने बेटों से पूजा करवानी है तो तुम अस्सी साल में मत जाया करो। वर्तमान में जिओगे तो तुम्हारा बेटा तुमरे पाँय पड़ेगा।

'भगवती आराधना' में लिखा है, यदि कोई शिष्य गुरु की बात नहीं मानता है तो उसको गुरु पैर से प्रताड़ित करें। मतलब यह कि उसको समझायें। इतना कठोर अनुशासन। अब भगवती आराधना की गाथा पढ़कर कोई आचार्य विवेकहीन हो जाये और शिष्य को पैर मारने लग जाये, तो कोई अच्छी बात नहीं है। ग्रन्थ में सही लिखा है, वह अनुशासन चलाने के लिए रखा है। लेकिन ज्ञानी! तुमको मालूम होना चाहिए 'हा, मा, धिक्'/समय बदला कि नहीं बदला? वात्सल्य से बिठा लेना ही श्रेष्ठ है। सिर पकड़कर चरणों में पटक तो सकते हो, परंतु श्रद्धा उत्पन्न नहीं करा सकते। ये सिर पकड़नेवाला युग नहीं है। ये श्रद्धा से बिठालने वाला समय चल रहा है। शक्तियाँ क्षीण हो गईं, लोगों को सहन नहीं होता। जोर से मत बोला करो किसी से। क्या मालूम किसके हृदय की धड़कन बढ़ जाये, कब ऊपर चला जाये तो पंचेन्द्रिय की हिंसा का दोष लगेगा। इसलिए धीमे-धीमे बोला करो। सुनो, लेकिन इतने ज्ञानी मत बन जाना कि पिता ने कहा धीमे-धीमे बोला करो। उसके घर में आग लग गई, पिता दुकान पर था, पिताऽजीऽ घररऽ में आगऽ लग गई। घंटे भर में पूरा घर झुलस गया। बोला, क्या बोलता है ? जोर से बोल। पिताजी! घर में आग लग गई। पिता बोला- 'इतने देर से क्या कर रहा था।' बता तो रहा था। 'इतने धीमे क्यों बोल रहा था?' आपने ही तो कहा था कि धीमे बोला करो। तो भैया! इतना विवेक भी सीखना चाहिये कि कब धीमे बोलना है और कब जोर से बोलना है? इतना ज्ञान तो होना ही चाहिये।

जिनागम में ऐसी कोई विद्या नहीं है जिसका वर्णन न हो, इसलिए लोकरीति का भी ज्ञान होना चाहिए। जितने त्यागी-व्रती जो भी असफल हुए हैं, उनको शास्त्रों का ज्ञान तो था, परंतु रीति और नीति का ज्ञान नहीं था। दिगम्बर मुनि को व्रत धारण करने के पहले सबसे पहले दो बातें सीखना चाहिये, नीति और रीति। शान्ति से देखो कि यहाँ की रीति क्या है? रीति समझ नहीं पाते और पहले से बोल पड़ते हैं जिस कारण कोई तुम्हारे हो नहीं पाते, तो और तुम्हें भगा देता कि जाओ, हम नहीं सहन कर पायेंगे। दो का ज्ञान होना चाहिये। माँ! तुम यहाँ माँ बनकर आयी थीं या बहू बनकर? बहू बनकर आयी थी ना? सुनो! वही बहू यहाँ राज कर पायेगी जो रीति, नीति को सीखकर जायेगी। अरे! तू घर में पहुँची, पहले ही बोल दिया- ऐसा करो। अरे! पहले, उस घर की व्यवस्था तो देखो। पचासों वर्ष से चल रही व्यवस्था एक दिन में ठीक नहीं होती है। धीरे-धीरे समझो रीति और नीति। रीति और नीति का प्रयोग किया नहीं और मुख खोल पड़े, तो समझ लो महाभारत शुरू हो गया। द्रोपदी ने रीति नहीं देखी और नीति से काम नहीं किया, मुख खोल लिया, जिह्वा हिली, सो तलवारें चल गईं। 'अंधों के अंधे ही होते हैं।' तनक देख लेती कि बात क्या है? किसी के भी घर में जाना, पहले शान्ति से देखना, सुनना, परखना। समझना तो चाहिए कि बात क्या है? तुम आये और शुरू हो गए। अरे ज्ञानी! नीति, रीति का ज्ञान तो करो, तब तुमको समझ में आयेगा कि क्या होना चाहिये और क्या नहीं।

ज्ञानी! याद न भी हो, तब भी स्वाध्याय करते रहना और जिनवाणी की विनय करते रहना। ठण्डी में अग्नि का स्पर्श करो तो हाथ गर्म होते हैं कि नहीं? जब अग्नि दूर से गर्मी दे सकती है, तब हे सरस्वती! तेरा स्पर्श करूँगा तो मुझे ज्ञान मिलेगा कि नहीं मिलेगा?

यहाँ पर माँ जिनवाणी की आराधना करते हुए कह रहे हैं-हे सरस्वती! जैसा चिन्तन किया जाये, वैसी वस्तु को प्रदान करनेवाली। जैसे चिन्तामणि रत्न होता है, उसके सामने जैसा चिंतन किया जाए, वैसी वस्तु मिलती है। हे सरस्वती! आपकी वंदना करनेवाले मुझे अन्य कोई जड़ रत्न नहीं चाहिये, मुझे बोधि रत्नत्रय की प्राप्ति कब होगी? जब परिणाम की विशुद्धि होगी, तब समाधि तेरी मुट्ठी में होगी। ये हल्ला मत करना कि मैं मर जाऊँ, मेरी समाधि हो। मर कर क्या करेगा? आज से मरने की भावना मत भाना। ये भावना भाना कि जब भी मरण हो, समाधिसहित मरण हो। मरने की कोई मत सोचना। जरा-सा कष्ट हुआ हे तो भगवान्! उठा ले जाओ। ये भगवान् उठाने नहीं आयेगा। परंतु ये सत्य है कि तू मरण की भावना कर रहा है, तो तेरे परिणाम कलुषित हैं। मरने की इच्छा मत रखना, जीने की इच्छा मत करना। इच्छा करो तो इतनी कर लेना-

''बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।''

जब परिणामों की विशुद्धि होगी, तब आत्मस्वरूप की प्राप्ति होगी। और आत्मस्वरूप की प्राप्ति होगी तब शिव सौख्य सिद्धि। जगत् में अंजन सिद्ध नहीं, गुटिका सिद्ध नहीं, खड्ग सिद्ध नहीं, तंत्र सिद्ध नहीं, मंत्र सिद्ध नहीं । मुझे सिद्धि चाहिये तो एकमात्र ''स्वात्मोपलब्धि सिद्धि''। प्रसिद्धि की सिद्धि भी नहीं चाहिये। जिसको स्वात्मोपलब्धि सिद्धि हो गई उसके लिए जगत की सिद्धियाँ तुच्छ हो गईं।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
जीवन-मरण में
साम्यभाव का रखना
है महान साधना।
सम्पूर्ण
भिन्न
साधनाओं का
उद्देश्य
यही है।
अ-तरंग
साम्यसाधना
अहो साधु!
करो
सतत अभ्यास
साम्य-साधना का।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
उपेक्षा भाव
सत्यार्थ साधक की
साधना के लिये
है
एक अमोघ मंत्र।
शांति-सुधा का
तंत्र है।
जो भी
परम तत्त्व को
प्राप्त हुए
उन्होंने लिया
इसी महामंत्र का
आलंबन
जिससे
वे बन गये
भगवान।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

बोधिः समाधिः परिणाम-शुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिव-सौख्य-सिद्धिः।
चिन्तामणिं चिंतितवस्तु-दाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममाऽस्तु देवि! ।।11।।

अन्वयार्थः (देवि) हे सरस्वती देवी! (चिंतितवस्तुदाने) मनोवांछित वस्तु के देने में (चिंतामणिं) चिंतामणि रत्न के समान (त्वाम्) आपको (वन्द्यमानस्य मम) वन्दन करने वाले मुझे (बोधिः) बोधि (समाधिः) समाधि (परिणाम-शुद्धिः) परिणामों की शुद्धि (स्वात्मोपलब्धिः)अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति (च शिव-सौख्य-सिद्धिः) और मोक्ष की सिद्धि (अस्तु) हो।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वमी परमसमरसी भाव में लीन होकर चैतन्य भगवान्- आत्मा की ध्रुव चित् ज्योति को उद्घाटित करते हुए समझा रहे हैं। ब्रह्मांड में बोधि-समाधि को प्रदान करने वाला है, तो उसका नाम वीतराग जिनवाणी है- जगत्कल्याणी जिनवाणी है। शब्दों को अज्ञानियों ने बाण भी बना डाले, पर वीतरागी आचार्यों ने शब्दों को अमृत बना दिया। वही मुख है, वही तालु है, वही कंठ है, वही जिह्वा है। अहो आश्चर्य! एक पुरुष की वाणी सारे जगत् को अमृत पिला रही हो और दूसरे पुरुष की वाणी जगत् का काम तमाम कर जाये। एक शब्द के माध्यम से जाने कितने जीवों के प्राण निकल जायें और दूसरे शब्द के माध्यम से क्या मालूम कितने जीवों के प्राणों की रक्षा हो जाये। जो बाण से घाव नहीं होता है, वह घाव वाणी से होता है। जो मिठास मिश्री में नहीं होती है, वह वाणी में होती है। जगत में वाणी का माधुर्य सबसे बड़ा माधुर्य है। हे भगवन्। आपके शासनकाल में कितने सम्राट हुए होंगे, कितने सेठ हुए होंगे, उन सबने पता नहीं कितने जीवों को मिठाइयाँ खिलाई होंगी। उनकी मिठास कहीं से समझ में नही ंआ रही है, लेकिन आपने समवसरण में बैठ करके जो देशना दी थी, उसकी मिठास मेरे मुख में नहीं, कर्ण में नहीं, अन्तस्थल में आज भी घुल रही है। आज अपने सामने जो जिनवाणी है, यह नहीं तो मिठास नहीं। कितने भी लड्डू मिठाई खिलायेगा, उसका स्वाद कण्ठ मात्र तक होगा। कण्ठ के नीचे उतरते ही वह सबको मालूम है कि क्या होता है। जिनवाणी कण्ठ से अंतस्करण में जाकर न जाने कितने जीवों के मिथ्यात्व के कल्मष को दूर कर देती है। इसलिए आचार्य महाराज ने बहुत अच्छे शब्दों में कहा 'बोधि, समाधि।' जब भी बोधि की प्राप्ति होगी, समाधि की प्राप्ति होगी, तब ज्ञानी! पुत्र काम में नहीं आयेगा, सम्पत्ति काम में नहीं आयेगी। अन्तिम श्वास के काल में, जीवन भर जिसने तुमको गाली दी होगी,

वह भी कहेगा भैया! अब तुम जिनवाणी सुनो। आज जो तुम सुन रहे हो, मात्र आज के लिए ही मत सुनना। आज तो सुन ही रहे हो। समझदार पुरुष सरोवर में पानी पीता है और आगे के लिए भर कर रख लेता है। यहाँ तो पी लिया, मार्ग में थोड़े-ही मिलेगा? पानी पीने के बाद पानी भर लेते हो। मुमुक्षु! उस परमतत्त्व को समझना। आज तो मैं सरोवर के सामने हूँ। यहाँ तो पी लिया। मार्ग में सरोवर नहीं मिलेगा तो प्यास में तड़पकर प्राण निकल जायेंगे। तो पानी लेकर चल देता है। ऐसे-ही भगवती माँ जिनवाणी कह रही हैं मेरे बेटो! यहाँ तो तुम मेरा पान कर रहे हो, जहाँ मैं नहीं मिलूँगी, तो तुम क्या करोगे? इसलिए आज भरकर ले जाओ। अन्तिम श्वास के काल में लोग तो गंगाजल मुख में छिड़कते हैं, तुम वीतराग अरहंत की वाणी का जल छिड़कना। भैया! गरीब-से-गरीब के घर में गंगाजल की छोटी-सी शीशी मिल जायेगी। क्यों रखे हो? आज के लिए नहीं है। पानी तो गाँव के कुएँ का ही पीता हूँ, लेकिन मृत्यु के काल में उसके मुख में गंगाजल डालते हैं। बड़ा रहस्य है, यथार्थ मानिये। वह गंगाजल था क्या?

गंगा निकली कहाँ से हैं? जो भी लोक में रूढ़ियाँ प्रारंभ होती हैं, उनमें कोई-न-कोई रहस्य होता है। 'वीर हिमाचल से निकली गुरु गौतम के मुख-कुंड धरी है।' हिमालय से निकली है गंगा। तो ज्ञानी। एक ज्ञानगंगा है, एक बाङ्गंगा है। ये जिनभारती गंगा है। ये वीर हिमाचल से निकली है। उस गंगा के नीर को ज्ञानी! अपने हृदय की बॉटल में भकर रख लेना और जब कहीं अंतिम श्वास निकलने लग जाये तो पानी, पानी नहीं चिल्लाना, जिवनाणी-जिनवाणी कहना। अज्ञानी पानी पानी चिल्लाते हैं, ज्ञानी जिनवाणी- जिनवाणी चिल्लाता है। अंतिम श्वास के काल में कौन तुझे सहयोग करेगा? आज से ही तैयारी करना है। चलती बिरिया है। मुख में गंगा का पानी पड़ेगा, पर कान में ये वीरवाणी की गंगा का पानी पड़ जाये। गंगा का नीर कण्ठ मात्र को गीला कर पायेगा, लेकिन अन्तःकरण को आर्द्र करनेवाली पवित्र जिनभारती ही है। 'बोधि समाधि।' बट्टकेर स्वामी से पृच्छना की- स्वामी! जिन शासन में ज्ञान क्या है? देखो भाई! जिनागम के प्राचीन शब्दों का प्रयोग करते रहो, अन्यथा आपकी रक्षा नहीं है। जगत् के शब्दों में उलझ करके श्रमणसंस्कृति को मत खो देना। जब भी तुम्हारी पहचान होगी, नमोऽस्तु से होगी, प्रणाम से नहीं होगी, दंडवत् से नहीं होगी। जब भी तुम्हारी पहचान होगी, स्याद्वाद-अनेकान्त से होगी, बाबा से नहीं होगी। बाबा तो जगत् में सर्वत्र मिल जायेंगे, लेकिन ये श्रमण-संस्कृति है। ये बाबाओं की संस्कृति नहीं है। अर्हन्त जिनशासन में 'ज्ञान' संज्ञा किसे दी है? स्वामी कहते हैं वत्स! यथार्थ में अनेकान्त को कहते हैं। प्रमाण संज्ञा भी है वह शब्द समानाधिकरण है। लोक में ज्ञान तो बहुत हैं। शब्द समानाधिकरण का तात्पर्य है कि शब्द एक- जैसा लगता है, पर अर्थ में एकपना नहीं है। आक दूध, गाय दूध। दूध एक है, पर

दूध अर्थ भिन्न है। नेत्रों में पीड़ा होने लग जाये तो गाय के दूध में रुई भिगोकर रख लो तो स्वस्थ हो जाता है, लेकिन कोई कहे कि दुग्ध को रख लो, कोई दूसरे शब्द का प्रयोग नहीं किया और किसी ने अकौये के दूध में रखी रुई को रख लिया, तो दुबारा पीड़ा का मौका नहीं मिलेगा, उसकी नेत्रों की ज्योति ही चली जायेगी। इसलिए 'ज्ञान' शब्द से ज्यादा प्रभावित नहीं होना। जो तत्त्व का विपरीत उपदेश कर रहे हैं, उनके पास भी ज्ञान है। जो अणुव्रतों की बात कर रहे हों, वे भी ज्ञानी हैं। जो अणुबमों की बात कर रहे, वे भी ज्ञानी हैं। पर एक का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, दूसरे का ज्ञान मिथ्याज्ञान है। एक अणुव्रतों की बात कर रहा है, कोटि-कोटि जीवों की रक्षा की बात कर रहा है,. वह भी अपना मस्तिष्क लगा रहा है। जो अस्त्र-शस्त्रों की बात कर रहा है, क्षयोपशम तो लगाया है, ज्ञान का प्रयोग भी किया, पर विनाश की क्या आवश्यकता है? पण्डितजी! श्रुतज्ञान तो मिला है, उसका आत्मविकास में कितना प्रयोग किया? अणुव्रतों की बात कर लेते तो आत्मा लोक के अग्रभाग में पहुँच जाती

हमारे विद्वानों ने जन्म लेते ही माता-पिता का सुख नहीं भोगा। बाहर पढ़ने चले गये। पढ़कर आये, उस ज्ञान का उपयोग क्या किया? तटस्थ होकर सुनना। विद्वान से तात्पर्य जो ज्ञान से युक्त है। आप भी तो विद्वान हो, आपने क्या किया? उस ज्ञान का उपयोग क्या किया? गृहस्थी की पहचान में प्रयोग कर लिया। अध्ययन करके आया जीव, आत्म उत्कर्ष में होना चाहिये था। आज भारत में कितनी भी भौतिकता आ गई हो, तब भी हमारी भारत की भूमि के रग-रग में अध्यात्म भरा हुआ है। दस व्यक्ति खड़े होंगे, एक व्यक्ति भले ही कह दे कि अच्छा किया, लेकिन न यही कहेंगे कि अच्छा नहीं किया। भारतभूमि की आज भी महिमा है। किसी मार्ग में खड़े व्यक्ति को गड्ढे में पटक दिया हो तो ये भारत की भूमि हर समय यही कहेगी कि अच्छा नहीं किया। पटकने वाला भी जब ठण्डा हो जायेगा तो उसके मुख से भी एकान्त में सुन लेना, वह भी यही कहेगा कि मैंने अच्छा नहीं किया? ये हमारी भूमि का प्रभाव है। यह वह मिट्टी है जहाँ तीर्थंकर भगवंतों ने विहार किया है। उनकी पुण्य-वर्गणाओं से प्रभावित मिट्टी है। जिसको गड्ढे में पटक दिया है उसको भी उठानेवाले मिल जायेंगे, सांत्वना देनेवाले मिल जायेंगे, मल्हम-पट्टी लगानेवाले मिल जायेंगे। शरीर की क्षति को मिटानेवाले अनेक उपकारी मिल जायेंगे। पर मेरे मन ने मेरे मन को विषयों के गड्ढे में डाला है, उसको उठानेवाला निज का विवेक ज्ञान ही होगा । हम आपको आशीर्वाद देंगे तो ऊपर ही दे पायेंगे। भीतर तेरे क्या हो रहा है? उससे ज्ञानी! तेरा ज्ञान ही बचा पायेगा। उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। जो निज की रक्षा न कर सके, निज के परिणामों को न सँभाल सके, वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान कैसा? लोक में जितनी दया की बातें हो रही हैं, वे धर्म की रक्षा की बातें हो रही

हैं। परंतु जिनशासन में जो परमार्थ दया है, वह आत्मपरिणामों की विशुद्धि है। ''धम्मो दयाविशुद्धो'', दया से विशुद्ध धर्म है। यदि कोई भी मरण को प्राप्त हो रहा हो ज्ञानी! कोई कहने लग जाये कि इसको अमुक जीव का माँस खिला दो जिससे कि यह जीवित बच जायेगा। यदि इसको खिला दिया जायेगा तो दयावान कहलायेगा, कि निर्दयी कहलायेगा? लोक कहेगा कि तूने रक्षा कर ली, लेकिन एक को मारकर दूसरे को तुम खिला रहे हो, यह दया नहीं है। ज्ञानी! जिसे मारा, उसे तो मार ही दिया तूने प्राणों से और जिसको खिलाया, उसको मार दिया असंयम से। तू तो जीव का हिंसक है। जिसे मारा, उसे तो प्राणों से नष्ट कर ही दिया, किन्तु उसे मारकर जिस दूसरों को खिलाया है उसके अहिंसा धर्म को उड़ा दिया है। तू क्रूरपरिणामी है, तूने तीन जीवों की विशुद्धि को मारा है। तुझे चक्रवृद्धि ब्याज के रूप में कर्म का बन्ध होगा। जितनी दया दिख रही है, पर्याय की दया दिख रही है। ज्ञानी! पर्याय की दया तो करना-ही -करना, परिणामों की दया पर भी ध्यान देना।

भैया! आप लोगों ने इतना विकास किया है। पहले मंदिरों में चित्रशालायें भी बनवायी जाती थी उनके लिए जिनको ग्रंथ खोलने का समय नहीं मिलता था। एक हजार पृष्ठ का ग्रंथ पढ़ने से जो सीख पाता, वह एक चित्र के देखने से सीख सकता था। खोटे चित्र नहीं बनवाना। हँसते-मुस्कुराते योगी का चित्र कहीं नहीं देना। वीतरागी को देखकर वीतरागता आती है। हर सुधी श्रावक के कमरे में, रसोईघर में एक दिगम्बर तपोधन का वीतरागी चित्र होना चाहिए। क्यों महाराज?

''मुनि को भोजन देय फिर निज करहिं अहारे।''

रसोईघर में जब तू भोजन करने जायेगा तो पहली दृष्टि तेरी निर्ग्रन्थ मुद्रा पर पड़ेगी और तेरे मन में आयेगा कि यह मेरा धर्म है, जिस धर्म में पहले मुनि को आहार दिया जाता है, फिर भोजन किया जाता है। मुनि को देखकर तू भोजन करेगा तो तेरे प्रशस्त परिणाम रहेंगे। क्रूर-परिणामी के चित्र देखेगा तो जब तक वह भोजन तेरे पेट में रहेगा, तब तक तेरे क्रूर-परिणाम रहेंगे। एक निर्ग्रन्थ वीतरागी मुद्रा तेरी रसोईघर में होनी चाहिए। बड़नगर के मंदिर के चित्र को देखकर मेरे शरीर में रोमांच होने लगा। चित्र में क्या था? एक बैल, जिसके मुख से खून झर रहा है, आँखों से आँसू टपक रहे हैं और उल्टी श्वास ले रहा है, मरणासन्न बैल पड़ा है। भैया! जिनवाणी में जिनशासन में 'मानवधर्म 'नाम का कोई धर्म नहीं है। जिनशासन में 'मानवकल्याण' नाम का कोई धर्म नहीं है। प्राणिमात्र का कल्याण हों, इसका नाम धर्म है। धर्म में कोई स्वार्थ नहीं है। जहाँ प्राणीमात्र के प्रति करुणा होती है, यही अहिंसा परमब्रह्म है। कोटि-कोटि जीवों

की जानें जाती हों, आप घर बैठे मुस्करा रहे हो। यदि आज आप यांत्रिक यातनाओं को नहीं रोक पाये तो कल नगर में दिगम्बर मुनि का पड़गाहन कैसे कर पाओगे? साग-भाजी जैसी दुकानें लगी होंगी, तब मुनि-महाराज कैसे निकल पायेंगे? फिर 'नमोऽस्तु, नमोऽस्तु कैसे बोल पाओगे? नमोस्तु शासन जयवंत कैसे होगा? परंतु इस बात को ध्यान रखना कि जिनशासन अहिंसा-शासन है। जीवों की रक्षा की बात करना, लेकिन जीवों के घातक के प्रति घात के परिणाम नहीं करना।

जिनशासन में अहिंसा के बारे में विराट कथन करनेवाला कोई ग्रंथ है तो उसका नाम है 'पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय।' मानव के अंदर यह धर्म होना चाहिये कि प्राणिमात्र की रक्षा हो। ऐसा मत कहना कभी कि समाधि तो मेरी होगी, क्योंकि मैं जैन हूँ, मैं मनुष्य हूँ। नहीं, भैया! अंतिम श्वास के काल में धर्म के प्रभाव से श्वान भी देव हो जाता है और पाप के प्रभाव से देव भी श्वान हो जाता है। कवियों में तीर्थंकर आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने ऐसा कहा है। अब किसी से पूछने मत जाना कि महाराज! मेरी कौन-सी गति होगी? जैसी मति होगी, वैसी गति होगी।

वह बैल अंतिम श्वासें ले रहा है। श्रीराम का जीव पद्मरुचि की पर्याय में मरणासन्न बैल को देखता है और णमोकार मंत्र सुना देता है। भैया! कोई भी जीव रास्ते में पड़ा मिल जाय, जिनालय भी जा रहे हो तो पुनः शुद्धि करके चले जाना, लेकिन पहले उस जीव को णमोकार सुना देना। यथार्थ मानिये, धर्म के आयतनों को स्थापित करने के लिए धन चाहिये, परंतु धर्म करने के लिये तो कुछ भी नहीं चाहिए। कौड़ी भी नहीं चाहिये, क्योंकि कौड़ियों में धर्म होता नहीं। दान भी करता है तो धन छोड़ना ही तो पड़ता है। धन में धर्म होता तो छोड़ना क्यों पड़ता? धर्म धन से नहीं होता, धर्म भी ध्यान से होता है। उसे तो छोड़ना ही पड़ता है। भैया! नहीं मिले तो जी सकते हो और ज्यादा मिल जाये सो लम्बे समय तक रख नहीं सकते हो। बिना छोड़े जी नहीं सकता, ज्ञानी! चाहे सुबह, चाहे मध्यान्ह्न, चाहे शाम, कितना ही रख लेना पेट में, लेकिन प्रातः छोड़ना ही पड़ता है। नहीं जायेगा तो डॉक्टर के घर जाना पड़ता है। बिना खाये तो चल सकता है, परंतु बिना छोड़े नहीं चल सकता। एक-एक मास के उपवास करनेवाले जीव मिल जायें, लेकिन एक महीने तक नहीं जाने वाले नहीं मिलेंगे। समझ गये? छोड़ना पड़ता है। श्रीराम का जीव जब मरणासन्न बैल को देखता है और देखते ही सब काम छोड़ दिया और जाकरके उसके कानों में महामंत्र णमोकार सुनाना शुरू कर दिया और जैसे-ही उस जीव ने महामंत्र का पाठ सुना, चारों प्रकार के आहार का त्याग करके प्राणों को छोड़ दिया और स्वर्ग में जाकर देव हो गया।

"नहिं कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।" साधुपुरुष अपने उपकारी को कभी नहीं भूलता।

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा।
दातारं विस्मरन् पानी किं पुनर्धर्मदेशिनम्।। 21/56।(हरि.पु.)

एक अक्षर किसी ने दिया हो, एक पद किसी ने सिखाया हो, यदि उसको भूल जाये, तो वह पापी कहलाता है। जिसने तुमको धर्मदेशना दी हो, ऐसे गुरु के नाम को भूल जाये, ऐसे मनुष्य को तो मनुष्य कहना ही व्यर्थ है। अपने उपकारी को कभी नहीं भूलना। पतंग पूरे गगन में उड़ती रहे, लेकिन मंझा उसके हाथ में है, ये मत भूल जाना।

आचार्य विद्यासागरजी ने जो मेहनत मेरे साथ की है, मुझे अच्छे से मालूम है। आचार्य महाराज ने पैर भी दबाये हैं, वैयावृत्ति भी की है, तब मुझे लगता है कि ये क्या हे? अन्तराय हो गया तो अपने हाथ से वैयावृत्ति की- तब लगता है हे माँ! तू जन्म देकर शरीर को ही सँभाल पाती है। गुरु वे होते हैं, जो जन्म तो नहीं देते हैं, लेकिन तन व मन दोनों को सँभालते हैं। किसी के मन की रक्षा करते हैं, किसी के तन की भी रक्षा करते हैं। भैया! जीवन में कभी गुरु को मत भूल जाना, प्रभु को मत भूल जाना। मैं तो कहता हूँ कि आपने कुन्दकुन्द भगवान् को नहीं देखा, आचार्य शान्तिसागर को नहीं देखा, आदिसागर को नहीं देखा, महावीर कीर्ति को नहीं देखा। आचार्य विद्यासागर को देखा। भैया! जब तक दिख रहे हैं, तब तक श्रद्धा से देखते जाना। विद्यासागर, विरागसागर, भगवान् जैसे-गुरु को पाकर भी उनसे दूर हो गया तो उससे अभागा जगत में कोई जीव नहीं होगा। लोग इतनी दूर-दूर से दर्शन करने आते हैं और तू गुरु के पास रहता है तब भी गुरु तेरे मन में न रह पाये तो भैया! दूर वाले अच्छे, कि पास वाले अच्छे? हे टोडरमल! तू उतना पुण्यात्मा नहीं जितना आज के पण्डित हैं क्यों? आपको अपने जीवन में गुरु के दर्शन नहीं हुए लेकिन आज के जन्मे बालक को मुनिराज के दर्शन हो रहे हैं। परंतु हे टोडरमल! तुम पुण्यात्मा वास्तव में थे। क्यों? आपके आँखों के सामने गुरु नहीं थे, लेकिन आत्मा के सामने थे। आपने असद्भाव में सद्भाव को देखा और आज के वे पापी जीव हैं जो सामने गुरु के होने पर भी गुरु नहीं मानते। उनकी अपेक्षा से टोडरमलजी पुण्यात्मा थे। जो सद्भाव में अभाव देखे, वह पापी है और जो अभाव में भी सद्भाव देखे, वह पुण्यात्मा है। मारीचि से बड़े पुण्यात्मा आज के भक्त हैं। हे मारीचि! तू तो तीर्थंकर का नाती होने के बाद भी समवसरण से भाग गया, ज्ञानी! मैं पुण्यात्मा हूँ क्योंकि कोटि-कोटि वर्ष चले गये, तब भी मैं आदिनाथ के समवसरण का दर्शन कर रहा हूँ और तू छोड़कर भाग गया। मैं पुण्यात्मा हूँ।

क्यों? सम्यक् मेरे साथ है और सम्यक् से बड़ा कोई पुण्य नहीं होता है। तेरे पास मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व से बड़ा कोई पाप नहीं होता। इसलिए भैया! जब भी कोई चर्चा करो, अपनी वाणी को सँभालकर बोलना। इस खोटे काल में काँच का ग्लास फूटने में तो समय लगता है, पर श्रद्धाओं के टूटने में समय नहीं लगता है। ऐसी वाणी बोलना जिससे देव-शास्त्र-गुरु के ऊपर किसी को अश्रद्धा न हो जाये। जगत् में जितने वीतरागी हैं, नमोऽस्तु हो रही है, इन सारे योगियों को, भावलिंगियों को नमस्कार करना और नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। श्रीराम के जीव ने जैसे ही णमोकार सुनाया, वह स्वर्गस्थ हो गया।

सोमदेव सूरि ने बड़ी गजब की बात लिखी- जगत् में कोटि-कोटि मंत्र हैं पर मंत्रों में महामंत्र णमोकार है। 84 लाख मंत्रों का स्वामी है, उसका नाम महामंत्र णमोकार है। ज्ञानियों! साधुपुरुष अपने उपकारी को कभी भूलते नहीं हैं। राम के जीव ने पद्म की पर्याय में णमोकार सुनाया। जब सीता का अपहरण हुआ, बैल का जीव सुग्रीव हुआ, उसका उपकार किया कि नहीं किया? किया ना? इसलिए अपने साथी बनाकर चला करो, राह में चलते-चलते कोई भी मिल जाये, णमोकार सुना दिया करो। जीवंधर कुमार ने श्वान को णमोकार सुनाया, वही यक्ष बना, युद्ध के काल में उसने सहयोग किया। ज्ञानी! निश्चय करो कि आज से कोई भी जीव तड़पता मिल जाये तो सब काम छोड़ दूँगा, परंतु णमोकार जरूर सुनाऊँगा। मरते हुए पिता को हास्पिटल ले जायें तो आपका विषय है, पर उसको णमोकार जरूर सुनायेंगे। कैसी विचित्र दशा है? असत्य को सत्य दुनिया सुनाती है, परंतु सत्य को सत्य कोई नहीं सुनाता। जब जीव चला जाता है, तब अर्थी के पीछे-पीछे बोलते हैं 'अरहंत नाम सत्य है। राम नाम सत्य है- मुर्दे को तो दुनियाँ सनाती है, जीते को सुना देते तो उसका कल्याण हो जाता।

वट्टकेर स्वामी कह रहे हैं- ये मानवधर्म नहीं, ये प्राणिमात्र के कल्याण का धर्म है। उसमें मानव निहित है। कोई उल्टा न समझ ले, इसलिए स्पष्ट करता हूँ कि मेरा आशय मानवधर्म का निषेध नहीं है। जब प्राणिमात्र के कल्याण का धर्म है, तो उसमें मानवधर्म होगा कि नहीं होगा? कौन से धर्म को मानते आप लोग? प्राणिमात्र का।

'धम्मो दयाविसुद्धो' आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का सूत्र है 'अष्ट पाहुड' में। यदि मुख से जिनवाणी बोल दीये तो कर्म की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है। एक सूत्र को बोलते-बोलते आयुबंध का काल आ गया, यदि श्रुत के साथ बंध होगा, तो भविष्य का श्रुतकेवली बनेगा।

जब भी मंगलाचरण किया जाए तो कोई श्लोक या गाथ का उच्चारण पहले किया जाए.

ये बाहर के भजन कोई मंगलाचरण नहीं होते। मंगलाचरण में परमेष्ठी की वन्दना होना चाहिए। परमेष्ठी की वन्दना नहीं है तो वह मंगलाचरण 'मंगलाचरण' नहीं है। हर धर्म की अपनी भाषा है और जैनधर्म की भाषा प्राकृत है। आपके उपदेश में णमोकार आना चाहिए मूल में। गाथा की लय में णमोकार पढ़ना चाहिए। वातावरण गुंजायमान हो जाये। ये भगवान् की देशना है और सनातन धर्म है। यह मंत्र सनातन मंत्र है, इसलिए जब भी मंगलाचरण बोलना तो एक गाथा अवश्य बोलना।

अरहंत णमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी।
सो सव्वदुक्खमोक्खं. पावदि अचिरेण कालेण ।।506।।

जो अरहन्त को भावपूर्वक नमस्कार करता है, वह अचिरकाल में निर्वाण को प्राप्त होता है। यदि विश्वास है और समाधि चाहिये है तो आज से ही 'णमो अहिरंताणं' की एक माला फेरना प्रारंभ कर दो तो नियम से समाधि होगी। पूरा मंत्र नहीं, 'सिर्फ णमो अरिहंताणं।' 'मूलाचार' में लिखा है कि जो 'णमो अरिहंताणं' की जाप करता है, उसकी निर्विकल्प समाधि होती है।

जो दया से विशुद्ध है, उसका नाम धर्म है। जिनशासन में ज्ञान क्या है?

जेण तच्चं बिुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिनसासणे।।267।। मूलाचार।।

जिनेन्द्र के शासन में, पोथी मात्र को ज्ञान नहीं कहा। जिनेन्द्र के शासन में जिसे ज्ञान कहा, उसे सुनिये- जिससे तत्त्व का बोध हो, जिससे चित्त का निरोध हो। पूरी पोथियाँ पढ़ लीं और मन वहीं रखा रोटियों में, तो पोथियाँ क्या करेंगी? लगता है कि आचार्यों का कितना विराट क्षयोपशम होगा? जिससे आत्मा विशुद्ध हो वही ज्ञान है, शेष सब अज्ञान है। आत्मज्ञान ही ज्ञान है, शेष सब अज्ञान है। इसलिए ज्ञानी! बोधि-समाधि को देनेवाली स्वात्मोपलब्धि का साधन कोई है, तो वह माँ जिनवाणी है। जिनवाणी के पादमूल में चले जाना, परंतु जिनदेव को मत भूल जाना। क्योंकि लोक में विचित्र प्रकार का मिथ्यात्व फैल चुका है। कोई गुरु-गुरु चिल्लाता है, कोई शास्त्र-शास्त्र चिल्लाता है, कोई देव-देव चिल्लाता है। एक, एक मोक्षमार्ग नहीं है। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' तीनो की एकता ही मोक्षमार्ग है। जो काम हाथ में लो, उसे पूरा करो, अथवा लो ही नहीं। जो भी काम करो, ईमानदारी से करो। मेरे अध्यापक पढ़ा रहे थे भौतिक विज्ञान, मुझे दिख रहा था वीतराग विज्ञान।

''जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।''

अध्यापक जी ने प्रेक्टिकल करवाया। तीन गत्ते रख दिये, एक मोमबत्ती रख दी, तीनों गत्तों के बीच में एक-एक छेद कर दिया। वे प्रकाश की गति बढ़ा रहे हैं।प्रकाश की गति कैसी होती है? देख रहा था कैवल्यज्योति कैसी होती है?

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।। (समयसार कलश)

उस परमज्योति की गति कैसी है?

उन्होंने क्या किया? बीच के गत्ते को खिसका दिया और कहा बेटा! प्रकाश दिखा क्या? नहीं दिखा। फिर उन्होंने प्रथम गत्ता खिसका दिया, प्रकाश दिखा क्या? नहीं। फिर प्रथम व द्वितीय को बराबर कर दिया, तीसरा गत्ता खिसका दिया। प्रकाश दिखा क्या? नहीं। जब तीनों छेद बराबर हो गये, ज्ञानी! ज्योति दिखी? हाँ, दिख गई। ज्ञानी! ध्यान दो। चाहे प्रथम हटाओ, चाहे द्वितीय हटाओ, चाहे तृतीय हटाओ, जब तक एक को भी इधर-उधर करते रहोगे, तब तक मोमबत्ती का प्रकाश नहीं दिखता। जब तीनों छेद बराबर होते हैं, तब ज्योति दिखती है। अरे मुमुक्षु! एक देव का, एक शास्त्र का, एक गुरु का इन तीनों में से एक को भी खिसका दोगे तो चिद्-ज्योति दिखनेवाली नहीं है। जब तीनों बराबर रहेंगे, तब 'नमः समयसाराय...।' वह ज्योति प्रकाशमान् होती है। देव, शास्त्र, गुरु तीनों युगपत् होना चाहिये, तो सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्र भी तीनों होना चाहिए। तब मोक्षमार्ग मिलेगा। एक-एक को खिसका देने से खिसक ही जायेंगे लेकिन मोक्ष नहीं पहुँच पायेंगे। जो है, सो है।

ज्ञानी! देव चार प्रकार के होते हैं; लेकिन यहाँ पर इन चारों देवों की स्तुति नहीं की गई है। देव, अदेव, कुदेव चौथे हैं देवाधिदेव। 'देव' चार प्रकार के देव। 'कुदेव' जो कुलिंग की धारण किये हैं। 'अदेव' जिनमें देवत्व नहीं है जैसे बरगद आदि वृक्षों को पूजना। माँ बेटे का तिलक कर रही है, बेटे को मांगलिक के रूप में तिलक करना कोई मिथ्यात्व नहीं है, लेकिन बेटे को देव मानकर तिलक कर रही है तो मिथ्यादृष्टि। पति के पैर पड़ रही है स्वामी मानकर, तो कोई मिथ्यात्व नहीं है, लोकव्यवस्था है। लेकिन पति को कह रही है कि ये हमारा भगवान् है, देव है, तो मिथ्यादृष्टि। आजकल नयी परम्परा शुरू हो गई है कि माताओं की पूजा छुड़ाई जा रही है और प्रचार किया जा रहा है कि जो पत्नी घर में पति को छोड़कर आये और भगवान् की पूजा करे, वह विधवा हो जाती है। ये विपरीत मिथ्यात्व फैलाया जा रहा है कुछ विद्वानों के द्वारा, कुछ त्यागियों के द्वारा। कालसर्प योग, शनिग्रह, भूतप्रेत, वास्तु के नाम पर तो कितना अनाचार हो रहा है। भैया! अपने पुण्य को क्यों नहीं देखते हो? जिन घरों में पहले राजा रहते

थे, वहाँ अब भिखारी नहीं रह पा रहे हैं। सीधी-सीधी बात किया करो, चक्रवर्ती का बेटा चक्रवर्ती नहीं बन पाता है। वास्तु क्या करेगा? जब पुण्य होता है तो घूरे पर भी भवन मिलते हैं, तब वास्तु कहाँ गया? इसलिए ज्ञानी! भवनों को तोड़कर वास्तु के नाम पर विखंडन मत करो। वास्तु है, मैं मानता हूँ, लेकिन वास्तु इतना नहीं है कि बेचारे को घर में खाने को दाना नहीं है और बना बनाया घर और मिटवा दिया। भैया! ज्यादा भ्रम में मत पड़ना। पुण्य को मानो, पुण्य को।

भैया! मेरे हाथ में एक ज्योतिषी ने शनिग्रह बताया है और कालसर्प योग भी बताया है। मैंने कहा कि बहुत अच्छी बात है। शनिग्रह लग जाय, सो सब उतर जाय। अपन तो मुनिराज बने बैठे, उतरे क्या उतरता है? अब करे, क्या करता है मेरा शनिग्रह। एक और ज्योतिषी ने बताया, महाराज! आपको कालसर्प योग है। मैंने पूछा क्या करना पड़ता है? बोले-नारायण कृष्ण को कालसर्प योग था, सो उनके मस्तक पर मयूर पंख था। मैंने कहा, ज्ञानी! बहुत अच्छी बात है। मेरे हाथ पूरी पिच्छि है, अब क्या करेंगे आप? सारे-के-सारे योग मेरे लगे हुए हैं, तब भी मैं बैठा हूँ, कुछ हो रहा है क्या? ज्ञानी! होता वही है, जो पुण्य में होता है।

ण य को वि देदि लच्छी, ण को वि जीवस्य कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ।।319।। का.अनु.।।

न कोई किसी को लक्ष्मी देता है, न उपकार करता है, न अपकार करता है। उपकार या अपकार जो भी होता है, पुण्य-पाप के उदय से होता है। इसे मत भूल जाना, ये करणानुयोग बोल रहा है। आयुकर्म कब किसका नष्ट होगा, यह आयु पर निर्भर है। मृत्यु आयुकर्म के क्षय होने से होती है, किसी के धर्म करने से नहीं होती है। भगवान् की पूजा करना छोड़ मत देना। ऐसे बहुत सारे देवी-देवता भी हो गये जो भगवान की पूजा छुड़वा रहे हैं। ध्यान रखना, अरहन्त की पूजा छोड़ मत देना। यदि पूजन छोड़ दी तो कहाँ जाओगे?

देव चार प्रकार के होते हैं, उनकी सत्ता है, परन्तु वे अरहंतदेव नहीं हैं। अदेव हैं वृक्ष आदि तुम्हारा पति कोई देव नहीं है, न ही वह अदेव है। ज्ञानी! यहाँ न देव की पूजा है, न कुदेव की पूजा है, न अदेव की पूजा है। यहाँ जिसकी आराधना की जा रही हे, वे देवाधिदेव अरहन्तदेव हैं।

हे प्रभो! आपका स्मरण मुनिगण करते हैं। जो सारे जगत् को आशीर्वाद देते हैं, वे अरहन्तदेव के चरणों में मस्तक टेकते हैं। यहाँ तक कि गणधर परमेष्ठी भी आपकी चरणवन्दना करते हैं।

नर, अमर, देव, नरेन्द्र आपकी स्तुति/अर्चना करते हैं। हे नाथ! जिस देव के लिए वेद भी गीत गाते हों, पुराण भी जिनका गुणगान करते हो, शास्त्रों में जिसकी स्तुतियाँ की गई हों, ऐसे देवों का देव मेरे हृदयकमल में विराजमान हो। कब तक? जब तक निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक। पंचपरमगुरु, वीतराग जिनशासन, अर्हंतदेव को मत भूल जाना। जब भी समय मिले 'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।' चार की शरण में चले जाना (व्यवहार से) और निश्चय से आत्मा की शरण में चले जाना।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
वस्तु
वस्तु है
स्वधर्म से युक्त है
परधर्म से पूर्ण रिक्त है।
निज धर्म का
त्याग करती नहीं
वस्तु
परधर्म का
ग्रहण
करती नहीं
वस्तु
वस्तु है।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
वस्तु में
न बंध है न मोक्ष।
परकृत परिणाम
पर के परिणामी
नहीं होते।
स्वकृत परिणाम ही
बंध / मोक्ष
का कारण है,
इसलिये
स्व-परिणाम
सँभालो।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

यः स्मर्यते सर्व-मुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेद-पुराण-शास्त्रैः, स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ।।12।।

अन्वयार्थ :- (सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः) सर्व-मुनिराजों के समूह द्वारा (स्मर्यते) स्मरण किया जाता है (यः) जो (सर्वनरामरेन्द्रैः) सभी नरेन्द्र और देवेन्द्रों से (स्तूयते) स्तुत किया जाता है (यः) जो (वेद-पुराण-शास्त्रैः) वेदों, पुराणों और शास्त्रों के द्वारा (गीयते) गाया जाता है (सः) वह (देव-देवः) देवाधिदेव अर्हन्तदेव (मम) मेरे (हृदये) हृदय में (आस्ताम्) विराजमान रहें।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी वस्तुस्वरूप की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि अज्ञ प्राणी नाना स्थानों में भ्रमण कर रहा है। शान्ति का वेदन करना चाहता है, पर शान्ति जहाँ है वहाँ पर दृष्टि नहीं गई। बाहर की खोज, बाहर की भीड़, यथार्थ मानना, वह कोलाहल का ही वेदन होगा। अन्तस् का आनन्द लेना है तो अनेकान्त से युक्त जो परमात्मा की देशना है, वही अंतर में शान्ति का स्रोत स्फुटित कर पायेगी। बहुत खोज लिये, कितने ग्रंथ का अध्ययन किया, कितने पुराणों को पढ़ लिया। ज्ञानी! ग्रन्थों और पुराणों में जो शान्ति की खोज कर रहे थे, वे हिंसा आदि पाप से निवृत्त नहीं हो पाये, कर्मों पर विजय प्राप्त नहीं कर पाये। जिन्होंने जिनवाणी का वाचन किया है, वह ग्रन्थों से निकल करके निर्ग्रन्थों की वाणी में ही शांति पा पाये हैं।

मारीचि से पूछ लेना। भेष बदल लिया, भाव बदल लिये, भव भी बदल गये, लेकिन हे मारीचि! जब तक सत्यार्थ जिनवाणी का बोध नहीं हुआ, तब तक भवातीत तो नहीं हो सके। कितने ही स्थानों पर भ्रमण कर लिया हो, पर एक दिन ऐसा आयेगा जब सत्य के जनदीक तो आना ही पड़ेगा। कषाय के उद्रेक में सत्य से दूर तो जा सकते हो, पर सत्य की श्रद्धा से दूर नहीं जा सकते हो। ज्ञानी! कामकषाय के आवेग में जीव ब्रह्मधर्म को छोड़ तो सकता है, पर ब्रह्मधर्म की मुद्रा से दूर नहीं जा सकता। जब भी कषाय शान्ति होगी, इन्द्रियाँ शिथिल होंगी, तब मन यही करेगा कि जो परमब्रह्म है, वह ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्म की प्राप्ति अब्रह्म से कहाँ? यहाँ ब्रह्म से तात्पर्य ब्रह्मा नहीं है। जो अद्वैत भाव है, जो समयसार है, वह ब्रह्मा की बात नहीं करता, ब्रह्म की बात करता है। शब्दब्रह्म से आत्मब्रह्म की ओर तो गमन करना, परन्तु आत्मब्रह्म को छोड़कर शब्दब्रह्म में बुद्धि मत लगाना। शब्दब्रह्म में डूब मत जाना। शास्त्रार्थ की

शैलियाँ आक्षेपिणी-विक्षेपणी भाषायें/कथायें, ये सब शब्दब्रह्म में डुबकियाँ लगा रही हैं।

चलो, समय है, तत्त्वचर्चा कर लें, और शब्दों की तत्त्वचर्चा में इतने लीन हो गये कि जिस विषय के लिये चर्चा की जा रही थी उसका ध्यान ही नहीं है। वही तत्त्वचर्चा 'तत्त्वचर्चा' है, जिस तत्त्वचर्चा में उपशमभाव है, काषायिक भाव नहीं है। यदि तत्त्वचर्चा के राग में भी कषायें भड़क रही हैं, तो वह बंधस्थान ही है, मोक्षस्थान नहीं है। मैंने जो कहा, वही सत्य है और दूसरे के सत्य शब्द को भी नकारने का प्रयास जारी है, तो ये तेरी तत्त्चर्चा नहीं है, ये तेरी काषायिक चर्चा है। यह ब्रह्मदेव सूरि के शब्द हैं। ग्रंथराज 'वृहद् द्रव्यसंग्रह' में ब्रह्मदेव सूरि ने लिखा है, उतना ही स्वाध्याय 'स्वाध्याय' संज्ञा को प्राप्त होता है, उतनी ही तत्त्चचर्चा 'तत्त्वचर्चा' संज्ञा को प्राप्त होती है जितनी तत्त्वचर्चा में अविसंवादी भाव है। जिस तत्त्वचर्चा में विसंवाद आ चुका है, वह तत्त्वचर्चा काषायिक भाव में बदल चुकी है। भोजन है, पानी है, वह तब तक है जब तक उसका रस नहीं बदला। यदि सुबह की रोटी शाम को खा रहा है, तो वह रोटी, 'रोटी' नहीं बची, वह जहर हो चुकी है। कल का दुग्ध आप आज पी रहे थे, उसमें खटास आ चुकी थी, दुग्ध बचा ही नहीं है, वह तो चलित हो चुका है। वह स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होगा। दुग्ध कहाँ बचा? उसकी तो पर्याय बदल चुकी थी। जैसे सुन्दर मधुर दुग्ध में साँप के विषय की एक बूँद पड़ जाये, तो अब वह दुग्ध पीने योग्य नहीं बचा, क्योंकि उसमें जहर मिल चुका है, ऐसे-ही जिसके श्रीमुख से हम तत्त्व उपदेश सुनते थे, उस जीव के अन्दर काषायिक भाव आ गया, तो वह काषायिक भाव को मिश्रित करके धर्म का व्याख्यान दे रहा है, यानी दुग्ध में विष जरूर मिल चुका है। वह मरण का कारण बनेगा, जीने का कारण नहीं बनेगा। इसलिये भैया! कहीं तत्त्वचर्चा चल रही हो तो साम्यभाव से बैठकर सुनना। जिज्ञासा भी प्रकट करना हो तो कर लेना, लेकिन यदि कोई जीव उत्तर देते समय उद्वेलित हो जाय, तो धीरे-से निकल जाना; क्योंकि कषाय उत्पन्न कराने हम नहीं आये हैं। अपने पास बहुत कम समय बचा है। कोटि-कोटि भव हम निकाल चुके हैं। भरतक्षेत्र में इस समय देखा जाय तो बहुत कम समय बचा है। धर्मचर्चा के लिए साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष मात्र बचे हैं, आगे फिर छठा काल आने वाला है। इसलिये जैसे ट्रेन का समय होता है तो तू कितनी स्फूर्ति से काम करता है कि मेरी गाड़ी छूट जायेगी। हे ज्ञानी! अपनी पर्याय के लिये कितना समय बचाना चाहिये ताकि गाड़ी न छूट जाय? पता नहीं, आयुकर्म कब निकल जाये। शुभ भाव नष्ट हो रहे हैं- इस पर चिंतन क्यों नहीं करता है? समय जा रहा है।

गल्पवाद में समय निकालना बंद कर दो। किसी प्रश्न का उत्तर एक में होता हो तो एक शब्द में देकर समाप्त कर दो। आगे का चिंतन करो। अपने आप को छोटा क्यों मानते हो?

अधिकांश समय तक बरबाद होता है जब जीव अपने आपको छोटा मानता है। जितना छोटा आदमी होगा, उतना समय बरबाद करता है। स्कूल का चपरासी भी हो जाय तो समय बचना प्रारंभ हो जाता है, स्फूर्ति आ जाती है। शिक्षक हो जाय तो और समय बचता है। और कहीं प्राचार्य हो जाय, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री हो जाय, तो चेहरा बस देख लूँ। ज्ञानी! चेहरा दिखाने के लिये जीवन भर पेपरों को देख-देख करके चेहरे को नष्ट किया है, आँखों को नष्ट किया है, आयु को नष्ट किया है।

मोक्षमार्ग पर दृष्टि है तो सत्य बताना, समाचारों को देखने से तुमको मिलता क्या है? जो तनाव नहीं था, वह तनाव जरूर मिलता है। जिस विषय में दृष्टि नहीं जा रही थी, कोई खोटे चित्र बने मिल गये पेपर पर और कोई अशुभ समाचार पढ़ने को मिल गये, तो ज्ञानी! जो कभी सोचा नहीं था, जाना नहीं था, वह जान लिया। भैया! जिन-जिन को आर्यिका बनना हो, मुनि बनना हो, वो ज्यादा जानने का प्रयास न करें। त्यागी बनना हो तो ज्यादा जानने का प्रयास न करें, क्योंकि साधुजीवन में जितना पुरुषार्थ अपरिचित की साधना में नहीं करना पड़ता, उतना परिचित को छोड़ने में करना पड़ता है। परिचित को छोड़ने के लिये जो पुरुषार्थ किया जाता हे, उसमें सर्वाधिक साधना का समय जाता है। घर के द्वार पर गड्ढा खोद लो, फिर गड्ढा भरने के लिये समय बरबाद करो। जितना परिचय बढ़ेगा, उतना विकल्प बढ़ेगा। जिन विषयों को जाना ही नहीं है, पहचाना ही नहीं है, वो कहीं चल भी रहे हों तो पता नहीं चलता। जो मस्ती में सुन-सुन कर आया है, सामायिक में उसके कान में वही गूँजेगा। अपरिचित होने के लिये कठिन-से-कठिन साधना करनी पड़ती है। जो जीव गृहस्थी चलाकर साधु बने हैं, उनसे पूछना कि कितनी मेहनत चल रही आपकी। जो सबकुछ देखकर आये हैं, समझकर आये हैं, तो वह स्मृतियाँ परेशान कर रही हैं जीव को। जहाँ जिसने कुछ देखा ही न हो, सुना ही न हो, तो वह उतनी परेशानी से बचेगा कि नहीं?

जो जगत में ज्ञानी होते हैं, वे जिनशासन में अज्ञानी हो जाते हैं। जो जगत् का अज्ञानी हो जाता है और मात्र निज को जानता है, वह जिनवाणी का सच्चा ज्ञानी होता है। इसलिये ज्यादा जानने का प्रयास भी मत करो। जितने अपरिचित बन कर रहोगे, उतने ही सुखमय जीवन जियोगे। बाहर विदेश में जाने पर कोई तनाव क्यों नहीं होता? क्योंकि आप किसी से परिचित ही नहीं होते हो। आपको पड़ोस से तनाव क्यों होता है? क्योंकि आप सबको जानते हो। यहाँ पर बाहर के भी तो श्रावक आये हैं प्रवचन सुनने, उन्हें कोई तनाव नहीं है, मात्र प्रवचन सुनना है। परन्तु संचालक को कई तनाव होते हैं।

यदि सुखमय जीवन जीना चाहते हो, तो अपरिचित रहना सीखो। लगता ऐसा है कि परिचय बढ़ा लूँगा तो सुख बढ़ेगा। ज्ञानी! सुख नहीं बढ़ेगा, खर्च बढ़ेगा। ज्ञानी! जब दस लोगों से परिचय नहीं था, तो मोबाइल का खर्च बच रहा था और जितना परिचय और बढ़ता चला जायेगा, उतना और खर्च बढ़ता जायेगा। भैया! खर्च ही नहीं बढ़ा, हिंसा भी बढ़ गई। जब मोबाइल में बेलेन्स पड़ेगा, वह आकाश से टपक कर नहीं आयेगा। वह कमायेगा, यदि नहीं कमायेगा तो कोई श्रावक देगा। श्रावक इतना भोला नहीं है कि शुद्ध पैसे दे जायेगा। जो कमाई करके लायेगा, गरीबों का पेट काट कर लायेगा, वही तुझे बेलेन्स दिलायेगा। ज्ञानी! दो गुनी हिंसा होगी। यदि तू सामायिक करता, स्वाध्याय करता, उस समय तू शुद्धात्म स्वरूप की भावना भाता। समय को नष्ट करके तू रागी-द्वेषी की बातों में लगा हुआ था और राग-द्वेष की बातों में रस ले रहा था, सो आत्मा की भी हिंसा कर रहा था। सबसे बातें करने से जीवन-मरण की व्यथा दूर नहीं होती। भैया! तो मैं जो कह रहा हूँ, शान्ति से जीवन जीने की कला कह रहा हूँ।

जिनवाणी में व्यस्त रहना सीखो। इसी के अभ्यास में, ज्ञानोपयोग में इतना व्यस्त रहें कि स्वयं पूछना पड़े कि आज कौन-सी तिथि है? जीवन में इतने व्यस्त जियो। जगत के लोगों से परिचय नहीं होगा तो ये मालूम नहीं होता कि किसके घर में क्या हो रहा है। होता स्वयं जगत परिणाम। अपने जीवन को अपने में व्यस्त करना सीख लो, उसी दिन तुम साधु बन गये। अपना जीवन दूसरों में व्यस्त किया है, इसी का नाम नेता है। अपना जीवन मात्र अपने लिये सौंप रहा है, उसका नाम मोक्षमार्ग का नेता है। 'मोक्षमार्गस्य नेतारं'। अपना जीवन अपने लिये। अपना जीवन पर के लिये है तो संसार का नेतापन है।

अहो आश्चर्य! सारे विश्व में खोज की जाये तो अँगुलियों पर गिनने लायक जीव मिलेंगे, जिन्होंने अपना जीवन मात्र अपने लिये बनाया है। उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट साधना है कि आप कुछ भी मत करो। कोई आपसे पूछे कि साधना क्या है? आपके आयुकर्म के जो निषेक हैं, आपकी मनुष्यपर्याय है, वह मात्र अपने लिये प्रयोग कर लो, इसी का नाम साधना है। जहाँ आपने दूसरे के लिये प्रयोग करना प्रारम्भ किया, उसका नाम विराधना है। पानी, पानी में रहे, तो शीतल भी होता है और स्वच्छ भी होता है। ज्ञानी! शब्द पर जाइये। पानी जैसे ही पर में जाता है तो शीतलता भी जाती है और स्वच्छता भी जाती है। पानी ग्लास में है तो स्वच्छता भी है, शीतल भी है। पानी तेरे मुख में जाये, तो स्वच्छता भी गई और शीतलता भी गई। पेट की अग्नि ने गर्म कर दिया। पेट के मल ने उसको सिरा दिया। जैसे स्वच्छ नीर पर के पेट में जाने से मिश्रित हो जाता हे, ऐसे-ही जीव का स्वच्छ मन पर देहादिक व पर के परिणामों में जाता है तो ब्रह्मधर्म

की शीतलता नष्ट होती है और काषायिक भाव के कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं।

आँख से नाक देखो। आँख से नाक देखेगा तो स्वयं की ही नाक दिखेगी। जिसके लिये दुनियाँ में भटक रहा था कि मेरी नाक बड़ी हो, उसी को देखो। जब तू आँख से नाक देखना प्रारम्भ कर देगा, तब उस समय आँख दूसरे की नाक नहीं देख पायेगी। तेरी ही नाक दिखेगी तो दुनियाँ की नाकों से तू परेशान होना बन्द हो जायेगा। इसी का नाम ध्यान है। यह ध्यानमुद्रा है। आँख से नाक देखो। यह भी एक रहस्य है। नहीं दिखी, समझ लो कि आज तेरा अंतिम दिन है। सामायिक करने को कहा, तो आँख बन्द करने को नहीं कहा। आँख से नाक को देखिये, इसमें बड़ा रहस्य है। कोई तनाव में बैठा है। रोशनी मंद हो रही है तो आपका व्यायाम भी हो रहा है और नाक को देखेगा तो तीन मिनिट के अन्दर तेरे आँसू टपकेंगे। जो गर्मी भरी हुई थी, वह निकल गई, ड्रॉप (दवाई) डालने की जरूरत नहीं रही। रहस्य देखो भैया! जब तक आँख से नाक दिखती रही, तब तक आयुकर्म शेष है। जिस दिन स्वयं की आँख से नाक न दिखे, समझ लेना कि मेरा आयुकर्म समाप्त होने वाला है, इसलिये अब समाधि में बैठ जाना चाहिये। प्राणिमात्र के प्रति सम-धी हो जाये, उसका नाम समाधि है और समाधिपूर्वक मरण हो जाय, वह समाधिमरण है।

समधी किसे कहते हैं? बेटे के ससुर को समधी कहते हैं। आप लोगों ने समधी शब्द का दुरुपयोग किया है। जैसे आपकी बेटी और दूसरे का बेटा, उनका सम्बन्ध हो गया, तो तुम दोनों समधी हो गये। उसका रहस्य क्या था? आज से आपकी बेटी मेरी बेटी के समान होगी और मेरा बेटा आपके बेटे के समान होगा। हम दोनों की 'धी' समान हो चुकी है। हम दोनों समधी। आपके बेटे को मैं बेटा मानूँगा और मेरी बेटी को आप बेटी मानना। इसका नाम समधी है। खींचातानी का नाम समधी नहीं है और ये भिखारियों का सम्बन्ध व नाम समधी नहीं है। लालों को बेच करके मूड़ी घर में ला रहे हो 'राम नाम जपना और पराया माल अपना' कह लो, लेकिन विश्वास रखो, जितने भूख से पीड़ित जीव नहीं मरते, उतने अधिक खाने से मरते हैं। गर्मी के मौसम में कहीं पेटदर्द, कहीं अपच। ये भूख से नहीं, अधिक खाने से होता है। जैन आगमग्रन्थों में आयुर्वेदशास्त्र भी है। 'कल्याणकारकम्'। इसलिये ज्ञानी! स्वस्थ रहना चाहते हो तो पेट को स्वस्थ रखो। पेट स्वस्थ रहेगा कम खाने से, और चित्त स्वस्थ रहेगा कम बोलने से और दोनों स्वस्थ हो जायें तो पूरा शरीर स्वस्थ है। जब भी बीमारी होती है तो अधिक से ही होती है। चित्त खराब हो जाय या फिर पेट खराब हो जाय। किसी से अधिक बोला, झगड़ा हुआ और मन खराब हुआ।

आचार्य अमितगति स्वामी कह रहे हैं, कि उस जीव को अपना आयुकर्म कितना भारभूत

है जो परचर्चाओं में अपना समय व्यतीत कर रहा है। हे नाथ! आपके चरणों की चर्चा और अर्चा कर लेता तो भगवान् बनता या नहीं, लेकिन पाप-कर्म से अवश्य बच जाता। शीतल तालाब से निकलोगे, पानी में हाथ डालो या मत डालो, गीले हो या नहीं, परंतु शीतलता का अहसास तो होगा ही। ऐसे-ही पंचपरमेष्ठी के चरणों में जाओ और परमेष्ठी बन पाओ या नहीं, उनके चरणों में बैठने मात्र से शीतलता मिलती है। चन्दन के छींटे में शीतलता नहीं है, चन्द्रकान्त मणि में वह शीतलता नहीं है, जो परमेष्ठी के चरणों में बैठने से मिलती है। योगियों के पास जाओ, उनसे बात भी न हो पाये तो कोई तनाव मत करना। शान्ति से बैठे रहना, देखते रहना। यथार्थ मानना, आनन्द आता है। मात्र इसलिये आया हूँ कि जो कहीं नहीं मिला है। दुनियाँ में तो माँगने पर मिलता है, यहाँ तो बिना माँगे ही मिलता है। पता नहीं चलता कि क्या क्या लेकर चला गया और लेकर आ जाता है। जितने विद्यार्थी बैठे हों, ध्यान से सुनना। जिनकी बुद्धि काम न कर रही हो, कोशिश अधिक कर रहे हों और मस्तिष्क की मेहनत अधिक करते हों, वे ध्यान से सुनें- जितनी प्राचीन श्रीजी की प्रतिमा हो, उतनी श्रेष्ठ है। दर्शन तो आप करते हो, सो रोज करो, लेकिन तुम बहुत अच्छी तरह से श्रीजी के विशुद्धि चक्र को देखो, आज्ञाचक्र को देखा। भृकुटियों के मध्य में उनके मस्तिष्क को निहारना।

ध्यान रखना, आज के वैज्ञानिक युग में जैनदर्शन को समझना बहुत सरल हो गया है। पुद्गल, पुद्गल को खींचता है; तरंगों को, वर्गणाओं को खींचता है। बिजली तो दो घण्टे रहती है, परन्तु आपके घरों में उजेला 4 घंटे दिखाई देता है। क्यों? ये दो घण्टे उजेला कहाँ से आया? समझो, हमारे विद्वानों ने सारे जिनागम को भाषा में कहा। रासायनिक भाषा का प्रयोग नहीं किया तो जगत के वैज्ञानिक कहने लगे कि जैनियों के यहाँ तो क्रियाकाण्ड मात्र है। जबकि यहाँ से बड़ा वैज्ञानिक तत्त्व जगत् में कहीं नहीं है। व्याख्यायें करने की शैली होनी चाहिये। शासन तुमको दो घण्टे बिजली दे रहा है, तुम्हारे घर में प्रकाश चार घण्टे दिखाई दे रहा है, दो घण्टे की ज्योति कहाँ से आई?

महाराज! हमने घर में इनवर्टर रख लिये हैं। कितने ज्ञानी हैं? दो घण्टे बिजली सीधी मिलती है तब दो घण्टे की मैं सुरक्षित रख लेता हूँ। जब तार-तार के तन्तु जोड़कर इन्वर्टर (विलोमक) तैयार कर लिया, उसमें तुमने विद्युत को संग्रहीत करना सीख लिया, तो जो बिना तार का बेतार इन्वर्टर है, उसका नाम आत्मद्रव्य है। यह इतना महान इन्वर्टर है कि जब प्रभु के पादमूल में जाना, जो ऊर्जा भरी हुई है, सामने तो देखना। जिस जीव की बुद्धि काम न कर रही हो, उनसे कहना कि तुम भगवान् को अच्छे से देखो। जिसने चार दिन भी भगवान् को देख लिया, तो पाँचवें दिन क्षयोपशम बढ़ा मिलेगा, क्योंकि वह ऊर्जा प्रकाशमान हो गई। यह तो

जड़ प्रतिमा को निहारने से शक्ति का संचार होता है। मंत्र-प्राणों से भरी प्रतिमा है। श्रीजी के मस्तिष्क को निहारना, और गुरु मिल जाये तो इनके मस्तिष्क में मत निहारना, इनके चरणों को निहारना। इन्वर्टर का तार विद्युत में लगा दो, लेकिन एक तार अलग हो जाय, पचाय घण्टे लगा देना, तब भी उसमें विद्युत जाने वाली नहीं है। यदि कोई शिष्य चौबीस घण्ट गुरु के पास रहे, कदाचित किंचित आस्था तार इधर-उधर हो गया, वह कितनी ही भक्ति करे, सेवा करे, लेकिन बुद्धि का विकास दिखाई नहीं देता। विश्व में सबसे बड़ी कोई शक्ति है तो उसका नाम आस्था है। भैया! बार-बार जिनवाणी के पास आना, गुरु के पास आना, अरहन्त के पास आना लेकिन आस्था से आना। आस्था अस्त हो गई तो सब चला गया। परिवार में रहते आप लोगों का एक दूसरे पर विश्वास रहता है, तो घर भरा लगता है। यदि घर में एक दूसरे का विश्वास हट जाये, पचासों लोग के बीच घर में रहना आप, फिर भी आप अपने आप को अकेला महसूस करोगे। कि मेरा कोई नहीं है। वन में जाना, अटवी में जाना, सागर के बीच में चले जाना, दुनियाँ कल रूठती हो तो आज रूठ जाये, परन्तु प्रभुचरणों में आस्था बनाये रखना। आस्था मत जाने देना। जगत में किसी को अपना मत बनाना।

सौ में निन्यान्वे लोग इसलिये दुःखी हैं कि वे अपने से भिन्न को अपना बनाने के चक्कर में हैं, लेकिन वे बननेवाले हैं नहीं, इसलिए दुःखी हैं। कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतंत्र है। वेद पुराण जिसके गुण गाते हैं, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में रहें। मैं उन्हीं देवाधिदेव अरहन्त भगवान् की शरण में जाता हूँ। गरीबी ही मिटाना हो, यदि संसार का सुख ही चाहिये हो, तो स्वीकार करो कि अरहन्त की भक्ति मोक्ष दिलाया करती है तो फिर संसार के सुख कौन बड़ी बात है? तुमको धन ही चाहिये, तो भी तुम भगवान् के पास ही जाना, परन्तु धन माँगना मत। दुनियाँ के देव धन (आभूषण) पहने हैं तो इनके भक्त गरीब दिखाई देते हैं। तुम्हारे भगवान् सब उतार चुके, सो तुम अमीर दिखते हो।

असाता के उदय से विपत्ति आती है और साता के उदय से सम्पत्ति आती है। आपके चरणों में शीतलता आती है, परिणाम शान्त होते हैं तो पुण्य का बंध होता है। पुण्य से सम्पत्ति मिलती है। ऐसा दुनियाँ में कहीं और होनेवाला नहीं है। इसलिये अरहन्त के चरणों में बैठना।

एक ज्योतिषी कहता है कि इतना प्रचण्ड तेज भगवान महावीर के पास है कि मैं यहाँ मात्र पन्द्रह बीस मिनिट बैठ कर जाता हूँ और यहाँ से जाकर जो बात जिससे कहता हूँ उसका काम बन जाता है, वह बात सत्य हो जाती है। अर्थात् भगवान् के पादमूल में जो जैसे भाव लेकर आता है, उसको वैसा ही दिखाई देता है। समझो, इसका रहस्य क्या है? कुए में झाँक कर आवाज करना, तुम जैसा बोलोगे, जैसी ध्वनि करोगे, वैसी प्रतिध्वनि होगी। आप जैसा सोचोगे, वैसा-

ही सुनाई पड़ता है। वह कैसी है? जैसी है, वैसी ही है। आपका चिंतवन जैसा होता है, आपको वैसी आवाज सुनाई पड़ती है। ऐसे - ही प्रभु के पादमूल में जैसे भाव लेकर जाता है, उसकी भावना वैसी पूरी होगी।

भगवान् की पूजा करने सर्वाधिक पापी लोग जाते हैं। प्रबल पुण्यात्मा अकषायी तो कभी भगवान् की पूजा करता ही नहीं है। भगवान् की पूजा तो कषायी लोग करते हैं, भले ही मंद कषायी हों। अकषायी तो भगवान् की पूजा करता ही नहीं है। जो मैं बोल रहा हूँ, वहाँ जिनवाणी बोल रही है। ज्ञानी! 'पुण्णफला अरहंता' प्रबल पुण्यात्मा विश्व में कोई है तो वह अरहन्त देव हैं। अरहन्त से बड़ा कोई पुण्यात्मा नहीं होता है। अरहन्त तो किसी की पूजा करते नहीं। जब तक पापप्रकृति (पुण्य प्रकृति के साथ) काम कर रही है, वह ही पूजा करने जाता है पापप्रकृति को धोने के लिये। अकषायी (ग्यारहवें-बारहवें) गुणस्थान से होता है। उसके पहले कषायसहित होने से कषायी जीव है। जो भगवान् की भक्ति करता है, वह कषायी जीव ही है, लेकिन अकषायी होने के लिये करता है। अकषायी जीव कभी भगवान् की भक्ति करता ही नहीं है। वह तो भगवान् ही होता है। इसलिये जब तक भक्ति कर रहे हो, कषाय के मंद उदय में भक्ति के परिणाम होते हैं, कषाय के तीव्र उदय में तो पाप होते हैं। जिस दिन तुम्हारे भाव आयें कि भगवान् की पूजन करने जाना है, महाराज को आहार देने जाना है, उपदेश सुनने जाना है, ज्ञानी! समझ लेना, तेरा कषाय का मंद उदय चल रहा है, पुण्य का प्रबल नियोग चल रहा है। जिस समय भाव आयें कि पिक्च र देखने जाना है, समझ लेना तीव्र पाप का उदय चल रहा है। जीवन में गुरु वही बना पायेगा, जिसका भीतर का गुरु पवित्र है और यदि भीतर का गुरु कहीं 'गुरु' बन गया, तो वह गुरु को गुरु नहीं मानता है। भीतर का गुरु पवित्र होना चाहिये। आपके भीतर के परिणाम उत्कृष्ट हुये हैं, उस पुण्य की तीव्रता के कारण आप पुण्य क्षेत्र में आये हो। इस समय आप अपने को पापी मत बोलना। एवंभूत नय लगाना। आप उपदेश सुन रहे हो। जब उपदेश सुनते हो तो भीतर-ही-भीतर लहरें उठती हैं। जब ये भी विषय शान्त मधुर रसों से घुल कर निकलता है, उस समय आपके जो परिणाम होते हैं, उनको यदि निकाल कर दिखाया जाय तो आपको बहुत बड़ा पाखण्डी तत्त्व दिखाई देगा। ज्ञानी! मैं तेरे परिणाम तो नहीं दिखा पाऊँगा। मैं अपने बारे में ही जानता हूँ, परन्तु अनुमान से तुम्हारे बारे में भी जानता हूँ। ज्ञानी! कभी झूला झूला तूने? सम्मेद शिखर की वन्दना जब पहली बार करता है और पर्वत पर ऊपर जाता है, नीचे आता है, तब कैसा होता है? वैसे-ही झूले पर झूलने में परिणति होती है। गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रन्थ कहता है कि ज्यों झूले की पलकियाँ ऊपर-नीचे जा रही हैं तो कैसा लगता है, इसी का नाम गुणस्थान है।

आगम के शब्द समझ में न आयें तो कोई विकल्प नहीं करना, लेकिन सिद्धान्त हर जीव को समझ में आता है। अन्दर के भावों को नापने का यंत्र गुणस्थान है।

विज्ञान अंशमात्र इतना कह पाता है जो हमारे वीतराग विज्ञान ने पूर्व से ही कह दिया। आत्मा की पूरी बातें आपको ऐसी लगेंगी, जैसे हल्दी में चूना मिलाया जा रहा है। जरा-सी हल्दी यदि चूने में पड़ जाये तो तुरंत रंग बदल देती है। बेटा! जैसे चूना में हल्दी पड़ते ही रंग बदल जाता है, ऐसे ही जिनवाणी किञ्चित् भी हृदय में पड़ जाये तो भावों का रंग बदल जाता है। जो क्रूरपरिणामी होते हैं, वे श्री वीर के भक्त बन जाते हैं। 'भवत्व भद्रोऽपि समन्तमद्रः'। इन प्रभु के चरणों में अभद्र भी आ जाये तो समन्तभद्र हो जाता है। आगम इतना विशाल है कि प्रतिदिन चर्चा करते हैं तब भी वे पूरी नहीं होती। सर्वार्थसिद्धि का देव तैंतीस सागर तक तत्त्वचर्चा करता है, लेकिन तब भी अघाता नहीं है।

'वे प्रभु कैसे हैं जिनकी मैं वन्दना कर रहा हूँ?' अमितगति स्वामी भी समयसार में डूब जाते हैं। 'दो गोरे दो साँवले, दो हरियल, दो लाल, सोलह स्वर्ण समान' इनकी बात नहीं कर रहे। यह तो पर्याय का गुणगान है। यह तो आत्मा की पर्यायें हैं। आत्मा के भगवान् कौन हैं? ज्ञानी! कौनसे परमात्मा की वन्दना है? जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख अनंतवीर्य रूप हैं।

जो पूजा करने पर प्रसन्न न हो, निन्दा करने पर नाराज न हो, ऐसा देव ही अरहन्त देव है। उनकी मैं वन्दना करता हूँ। एक दिन अगरबत्ती नहीं लगा पाये सो वे रूठ गये, वे तो मौड़ी जैसे काम कर रहे। जो रूठे, रोये, रुलाये ज्ञानी! ये काहे के देव? जिसको पूजा से प्रयोजन नहीं, निन्दा से प्रयोजन नहीं, फिर भी जिनकी पूजा होती है, वे पूज्य हैं। पूजा के लिए पूज्य बनने का प्रयास मत करना। पूज्य हो जाओगे तो पूजा स्वयमेव हो जायेगी। दुनियाँ तरस रही है कि मेरी पूजा हो जाये, मेरी पूजा हो जाये। अरे ज्ञानी! तुम पूज्य हो जाओ तो पूजा अपने आप होगी।

गुलाब, केवड़ा आदि जितने सुगंधित पुष्प हैं, वे कभी नहीं कहते कि हमें ले जाओ, हमारी सुगंध ले लो। अरे ज्ञानी! जिसमें सुगंध होती है, तो दुनियाँ पहुँच जाती है। तुम्हारे में पूज्यता होगी, तो सिर झुकाने दुनियाँ पहुँच जायेगी। पूज्यता नहीं होगी तो पकड़-पकड़ कर सिर झुकायेगा तब भी श्रद्धा को नहीं झुका पायेगा। हमारे यहाँ श्रीफल नहीं फोड़ा जाता। तीनलोक के नाथ के चरणों में श्रीफल मत फोड़ना। यह बलि का प्रतीक है। श्रीफल फोड़ा नहीं जाता है। श्रेयोमार्ग की प्राप्ति के लिए श्रीफल चढ़ाया जाता है। मानकषाय के त्याग के लिए कि हे नाथ! आप तीनलोक के नाथ हो, मैं यह श्रेष्ठ फल आपको समर्पित करता हूँ। अज्ञानियों

ने क्रियाकाण्डों में बाहरी आडम्बर भर दिया है। हे नाथ! आप समस्त विकारों से रहित हैं। जो समाधि से गम्य हैं, ध्यान से गम्य हैं, ध्यान से जाने जाते हैं अर्थात् ध्यान में लीन हैं और 'परमात्म' संज्ञा के धारक हैं, ऐसे देवों के देव अरहन्त देव हमारे हृदय में विराजमान रहें। हे प्रभो! जगत के देवों को मैंने कितनी बार छाती से लगाकर रखा है, लेकिन वे छूट गये। वे छाती के देव भले छूट जायें, लेकिन आप मेरे हृदय में विराजमान रहें। जैसे लौकिक मान्यतानुसार हनुमान ने दिखा दिया कि छाती में श्रीराम बैठे हैं। तुम हृदय से निहार लेना कि वे मेरे हृदयकमल में विराजमान हैं, वर्द्धमान स्वामी अरहन्त भगवान्।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अतयंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
सर्वज्ञ
सर्वदर्शी
बनना है तो
सर्वप्रथम
समदर्शी बनो।
समदर्शी बने बिना
सर्वदर्शी
बन नहीं सकता।
इसलिये
निज के अंदर
कर
अवलोकन
समकित भाव का।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
समता
की परीक्षा
हो तो तब है
जब
मरण का काल
सामने
खड़ा हो जाता है।
मरण से
डरता वही
जिसने
जन्म-मरण से शून्य
निज
ध्रव ज्ञायक स्वभावी
अहेतुक
आत्मद्रव्य की
सत्यता को
नहीं पहचाना।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भावना द्वात्रिंशतिका

यो दर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभावः, समस्त-संसार-विकार-वाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्म-संज्ञः, स देव-देवो हृदये ममास्ताम्।।13।।

अन्वयार्थः (यः) जो (दर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभावः) अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान और अनन्तसुख रूप हैं (यः समस्तसंसार) जो संसार के समस्त (विकारवाह्यः) विकारों से रहित हैं (स देव-देवः) वे देवों के देव (मम हृदये) मेरे हृदय में (आस्ताम्) विराजमान रहें।

सामायिक देशना

आचार्य अमितगति स्वामी सामायिक पाठ में परमात्मा के सत्यार्थ स्वरूप का वाचन करके समझा रहे हैं। इस जीव ने भक्ति के यथार्थ स्वरूप पर दृष्टिपात ही नहीं किया। परमात्मा के पादमूल में भी गया, परन्तु परमात्म-तत्त्व को नहीं देख सका। अरहन्तदेव की आराधना अनेक बार की। पर्याय की आराधना करते-करते पर्याय व्यतीत हो गई, पर जिसने पर्याय प्राप्त की है, उस पर्यायी पर दृष्टि ही नहीं गई। अरहन्त के बिम्ब को भी निहारा तो हम अरिहन्त के बिम्ब को छोटे-बड़े आकार में देखते रहे। सार्थकता गुणों की है। अरहन्त के गुणों को न निहार करके हमारे अंतरंग में अवगाहना पर दृष्टि है कि बड़ी प्रतिमा है तो बड़ी दृष्टि, छोटी प्रतिमा है तो छोटी दृष्टि। हे ज्ञानी! अभी तक तूने प्रतिमा के आकारों की वंदना की है, गुणों की वंदना नहीं की। अरिहन्त के गुणों को निहारना है। साढ़े तीन हाथ के भी अरिहन्त होते हैं और सवा पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले भी अरिहन्त होते हैं। बाह्य को निहारोगे तो गुणों को नहीं निहार पाओगे। जिस बिम्ब को हमने हृदय में विराजमान किया है, वह अनन्तदर्शन-ज्ञानस्वभावी है, अनन्तवीर्य-स्वभावी है, वह अनन्तसुख-स्वभावी है। अनन्तचतुष्टय से युक्त ऐसे देव को हमने अपने हृदय में विराजमान किया है। हमने पाषाण के खंड मात्र को स्थापित नहीं किया, हमने कर्म के पिण्ड को स्थापित नहीं किया। 'स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।। ऐसा देव हमारे हृदय में विराजमान हो जो अनंतदर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभावी हो। द्रव्य बिना पर्याय के नहीं होती। यद्यपि अरिहन्तस्वरूप को प्रकाशित करनेवाली प्रतिमारूप पर्याय को लक्ष्य किया जाता है, लेकिन वह लक्ष्य अरिहन्तरूप पर्यायी के लिए ही होता है।

नमोऽस्तु शासन में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का एक-एक सूत्र, एक-एक गाथा भगवान् की वाणी के रूप में निःसृत होती है। ऐसे आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं, ज्ञानियो! ध्यान रखना, वस्तुव्यवस्था तो व्यवस्थित है। वस्तुव्यवस्था को भंग नहीं किया जा सकता है, परन्तु व्यवस्था को अनवस्थित करके अपने सम्यक्त्व को भंग अवश्य किया जा सकता है।

वस्तुव्यवस्था त्रैकालिक है। आज तक सात तत्त्व मेंसे एक भी न्यून नहीं हुआ। सभी ज्यों-के-त्यों हैं। द्रव्यों के स्वभाव को हम बदल न सके, न हम बदल पायेंगे, परन्तु वस्तु के श्रद्धान को विपरीत करके अपने सम्यक्त्व को अवश्य खो देंगे। इस जीव का परद्रव्य से राग-द्वेष रहा है। वस्तुव्यवस्था तो ज्यों-की-त्यों है। आनन्द लूटना है तो निहार। पिता यहीं विराजते थे तो मुस्कुराता था, जब वह जीव प्राणों का वियोग करके ऊपर पहुँच गया तो तू रोने लगा। परन्तु ज्ञानी! यह पागलपन तेरा है। इस सड़े-गले शरीर से वैक्रियक शरीर में पहुँच गया है। परन्तु तू यूँ ही बिलख रहा है। त्रस बनेगा तो त्रसनाली के बाहर नहीं जायेगा, स्थावर बनेगा तो भी लोक के बाहर नहीं जायेगा। तुझे रोने की क्या आवश्यकता है? वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है, परन्तु क्या करें? राग कहता है कि रो लो, तो फिर कर्म कहता है कि मैं आता हूँ, चिन्ता मत करो। जिस प्रकार से रुदन करोगे, उसी प्रकार से मैं आऊँगा। मैं तो मात्र कार्मणवर्गणा के रूप में आता हूँ, चिन्ता मत करो। मैं तो विशुद्ध रूप से व्यवस्थित हूँ। मैं द्वैत नहीं, अद्वैत हूँ, परंतु मेरी गलती नहीं, द्वैत करानेवाला तो परिणाम है। शुभ भाव होते हैं तो मैं पुण्यरूप हो जाता हूँ। अशुभ भाव होता है तो पापरूप में आता हूँ। मेरा द्रव्य तो शूद्र के पुत्रों के समान एक है। ब्राह्मण के घर में पल रहा सो ब्राह्मण कहलाया, शूद्र के घर में पल रहा सो शूद्र कहलाया। सन्तान तो दोनों शूद्र की हैं, जन्म से तो शूद्र हैं। हे ज्ञानी! कर्म कह रहा है कि मेरा दोष नहीं है, क्योंकि विश्व में मेरे-जैसा ईमानदार भी कोई नहीं है। किंचित् भी मैं किसी को व्यर्थ में नहीं बाँधता। तीर्थंकर-जैसे भगवान् के साथ भी छूट नहीं करता।

कर्म कहता है कि आपने भाव किये हैं, अतः मैं तो आऊँगा ही। चाहे तुम ऋषभदेव बनकर बैठे हो, चाहे तुम वर्द्धमान बनकर बैठे हो, चाहे चक्रवर्ती बनकर बैठे हो, चाहे वादीभसिंह मुनिराज बनकर बैठे हो, ज्ञानी! मैं तो आऊँगा। अनधिकृत चेष्टा मेरे घर में नहीं होती है। जैसे भाव करोगे, वैसा बन्ध होगा। कर्म किसी को सताता नहीं है। मार्ग में काँटा पड़ा हुआ था, उसके थोड़े-ही आँखें थीं। मेरा प्रमाद था, मैं देखकर क्यों नहीं चला? देखना मुझे चाहिये था। तूने प्रमाद किया, फिर भी गाली काँटे को दे रहा है। काँटे ने नहीं काटा। काँटे को धन्य हो, क्योंकि उसने अपना चुभन धर्म नहीं छोड़ा, लेकिन तुमने अपना देखना धर्म क्यों छोड़ा? काँटे का काम तो चुभना है, कर्म का काम तो बंधना है, पर उसने कभी अपना धर्म नहीं छोड़ा। वह तो बेचारा पराधीन था। तुम राग-द्वेष न करते तो कर्म आपको न बंधता। मूल में जाओ, कर्म किसी को सताता नहीं है। आज तक यही सुना था कि कर्म सता रहे हैं? तू भावकर्म न करता तो द्रव्यकर्म क्यों सताने आते? पूर्व में द्रव्यकर्म न बंधे होते, तो भावकर्म कहाँ से आते? पुरुषार्ष हमारा द्रव्यकर्म पर चलेगा कि भावकर्म पर चलेगा? एक सौ अड़तालीस

कर्मप्रकृतियाँ चाक्षुष नहीं हैं, सूक्ष्म हैं, अचाक्षुष हैं।

श्रुत के सुन्दर शब्द भी कानों में पड़ते रहेंगे तो भी असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा के कारण हैं। वीरसेन स्वामी का कहना है- जो श्रद्धापूर्वक श्रुत का पान करेगा, वह भविष्य का भावी भगवान् बनेगा। आज आवश्यकता है कि जैनदर्शन की व्याख्या करने के साथ-साथ जो प्रत्यक्ष प्रमाण को ही माननेवाला चार्वाक दर्शन है, उस पर भी दृष्टिपात करना पड़ेगा। हम इनको आराधना/पूजन तो कराते रहेंगे, लेकिन विश्वास रखना, आज चार्वाक कहीं बाहर दिखाई नहीं देता, परंतु हृदय में चार्वाक बैठ हुआ मिल जाता है कि मंदिर क्यों जाने का? जितना समय मैं मंदिर में लगाऊँगा उतने समय में कोई नया काम न कर लूँगा? हे ज्ञानी! नया काम क्या करेगा? यह बिल्कुल ठीक कहता है कि जितने समय में मंदिर जायेगा तो पुराने कर्म नहीं काट पायेगा, तो क्या नये कर्म का बंध कर पायेगा? बहुत गहरे में जाकर देखो। इनको कर्म दिखाई नहीं देते हैं। इनको कर्म दिखा दो। क्योंकि हम लोग प्रत्यक्ष प्रमाण मात्र नहीं मानते, लेकिन प्रत्यक्ष प्रमाण भी मानते हैं। जैन स्याद्वादी हैं। स्मृति और प्रत्यभिज्ञान, ये परोक्षप्रमाण के भेद हैं। हम परोक्षप्रमाण को भी मानते हैं। जो प्रत्यक्ष प्रमाण है, वह भी परोक्ष है, लेकिन सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। आज के ज्ञानी तत्त्व-उपदेश को भी न्याय के साथ सुनते हैं। व्याख्यान जो है, वह ज्ञान की अपेक्षा से है कि अज्ञान की अपेक्षा से? जो बोलता है, वह सर्वथा रथ्या पुरुष होता है, पागल पुरुष होता है, यह व्याप्ति घटित नहीं होती है। पागल पुरुष भी नहीं बोलता है। पागल पुरुष तो यद्वा-तद्वा बोलता है। जो ज्ञानी पुरुष होता है, सर्वज्ञ होता है, वह श्रेष्ठ ज्ञाता होता है। श्रेष्ठ ज्ञाता तीर्थंकर भगवान दीक्षा लेते ही मौन ले लेते हैं क्योंकि अभी मैं ज्ञाता नहीं बना हूँ। जिस दिन सर्वाङ्ग से कैवल्य प्रस्फुटित हो जायेगा, उस दिन ज्ञाता हो जाऊँगा, फिर सर्वाङ्ग से बोलनेवाले वक्ता बनेंगे। पहले ज्ञाता होना चाहिये, फिर वक्ता होना चाहिए। जो ज्ञाता नहीं बने और गणधर की गद्दी पर वक्ता बनकर बैठ जाते हैं, वे जीवों के साथ खेल करते हैं। ऐसे खेल कभी नहीं करना। जितना तुम्हारे पास तत्त्व हो, उतना पिलाते जाना। न पिला सको तो कह देना, भैया! हम अभी इतना ही सीखे हैं और आगे सीखकर ही बता पायेंगे। लेकिन उनके सामने अपनी मानकषाय को पुष्ट करने के लिए जिनवाणी के विरुद्ध कोई कथन मत कर देना।

मदिसुदणाणबलेण दु, सच्छंदं बोल्लदे जिणुद्दिट्ठं।
जो सो होदि कुदिट्ठी, ण होदि जिणमग्गलग्गओ ।।3।। (रयणसार)

मति-श्रुतज्ञान के बल से जिनवाणी की गद्दी पर बैठकर जो स्वच्छंद बोलता है, कुन्दकुन्द देव की दृष्टि में वह मिथ्यादृष्टि है।

इस पंचमकाल में पर्वत के ऊपर बैठकर साधना न कर पाओ तो कोई विकल्प नहीं है। नदी के तट पर न बैठ पाओ तो कोई विकल्प नहीं। वृक्ष के नीचे बैठ न पाओ तो कोई विकल्प नहीं। लेकिन ज्ञानी! बाह्य भौतिक आडम्बर से रहित होकर एक कक्ष में बैठकर सामायिक कर लेना, परन्तु श्रद्धा में न्यूनता कभी मत लाना। क्योंकि पंचमकाल में श्रद्धा बच गई, तो कोई छठे काल में भेजनेवाला नहीं है। जब पुनः चतुर्थ काल आयेगा, तब तुम निर्वाण प्राप्त कर सकते हो। कुछ भी हो जाये, श्रद्‍धा को हिलने मत देना। द्रव्यकर्म नहीं दिख रहे हैं, उसका विकल्प नहीं करना। जिस क्रिया को करने के बाद सत् चित् दोनों आह्लादित होने लग जायें, उसका नाम प्रसाद है। जिस कृत्य को करने के बाद हजारों के बीच में मुस्करा कर बोल सकें, उसका नाम पुण्यकर्म है और जिस क्रिया को करने के बाद स्वयं का चेहरा देखने में फीका लगता हो, उसका नाम पाप है। भैया! द्रव्यकर्म नहीं दिख रहे थे, लेकिन भावकर्म की अनुभूति समझ में आती है कि नहीं? ज्ञानी! छल करेगा जिसके प्रति, वह छला जाये या न छला जाये, उसका छलना या न छलना अर्थ नहीं रखता, लेकिन तू तो उसी समय छल चुका है जिस समय तूने छल के परिणाम किये थे। वह छला जायेगा अपने कर्म के विचार के अनुसार। भूल यही हो रही है। द्रव्यकर्म दिखाई देते नहीं और भावकर्म पर ध्यान गया नहीं, इसलिए भव में भ्रमण चल रहा है। ज्ञानी! बहुत नहीं सीखना। यदि आपको हजार श्लोक/गाथा न याद हों, तब भी विकल्प नहीं करना, लेकिन पुरुषार्थ करना छोड़ना मत और पढ़ाई का तनाव करना मत। अधिक लौकिक पढ़ाई से क्या आत्मकल्याण हो जावेगा?

आज के विद्यार्थी मंदबुद्धि क्यों होते जा रहे हैं? इन बेचारों का जितना स्वयं का वजन नहीं होता, उतना वजन इनके बस्ते का होता है। माता-पिता को विवेकी होना चाहिए। विद्यार्थियों का आत्मघात करना, यह सूचना प्रायः करके मिलती रहती है। भीतर के रहस्य को पकड़िये। गुरु एक ऐसा कुए का घाट होता है जिस पर अमीर भी पानी पी जाता है और गरीब भी पी जाता है। गुरु के पास दादाजी भी अपनी बात कह जाते हैं और पोता भी अपनी बात कह जाता है 'महाराजजी? हमारे पापा से गुटका छुड़वा दो।' उस समय पिता बेटा हो गया और वह तीन वर्ष का बेटा गुरु है, क्योंकि उसने सन्मार्ग का उपदेश दिया है। जो बच्चे अपने हृदय की बात कहीं नहीं कह पाते हैं, वे गुरु से कह जाते हैं। इन छोटे-छोटे बछड़ों को देखकर हृदय गद्‍गद् होता है। इन युवा बछड़ों को देखकर सम्यक्त्व कितना दृढ़ होता है। बच्चे पूजा करते मिल जायें तो कितना अच्छा लगता है? हे वर्द्धमान! जगत में अनेक दार्शनिक हुए, लेकिन उनकी परंपरा उनके साथ चली गई, वे सत्य की खोज कर नहीं पाये, बाँझ स्त्री के समान बनकर चले गये। लेकिन हे वर्द्धमान! आपकी वाणी भोगभूमियाँ दम्पति बनकर रह गई है। भोगभूमियाँ मरण के

पहले युगलिया छोड़कर जाते हैं और जो बन्ध्या स्त्री होती है, वह सुख भोगकर सूखी चली जाती है।

आपकी वाणी परम सत्य हो रही है। आप जो कहकर गये हो, वह हमें आज सत्य दिखाई दे रहा है, क्योंकि आपकी वाणी सनातन वीतरागवाणी है और जगत्कल्याणी है। भगवान् की वाणी में खिरा है कि पंचमकाल में धर्म के रथ को खींचनेवाले बछड़े होंगे। आप जिस मुनिसंघ में जाओ तो बछड़े, भैया देखो तो बछड़े, विद्वानों को देखो तो बछड़े। ये बछड़े-ही-बछड़े दिखते हैं। ये वर्द्धमान की वाणी की सत्यता दिखाई दे रही है। पंचमकाल की अंतिम श्वासों तक ये बछड़े ऐसे-ही निजशासन को जयवंत करेंगे। देखो, यदि कोई त्यागी विसंवाद करने लगे तो श्रद्धान मत करना। दुर्ग में अनेक उच्चपदासीन लोगों ने नमस्कार किया, किसी ने नहीं भी किया, लेकिन उस जीव से कभी नहीं कहना कि मुनियों को नमस्कार क्यों नहीं करते? कभी मत कहना। और नहीं करता, तो नहीं करने देना। आचार्य भगवंतों को संघ में साधुओं को डाँटना बन्द कर देना चाहिये। ये डाँटने का समय नहीं है। जो डाँटना हो तो बढ़िया मधुर स्वाध्याय कराओ इन योगियों को। अब स्वाध्याय में डाँटोगे क्या? जो जिनवाणी में लिखा, वही तो बताना चाहते हो। जिनवाणी खोलकर समझाओगे तो ये अपने आप सँभल जायेंगे। गुरु मुझे डाँट नहीं रहे हैं, गुरु मुझे समझा रहे हैं। देखो, मार्ग यह है, विपर्यास हमारा है। अपने आप सुधरेंगे। अरे! डाँटो तो अपने परिणाम खराब करो, उनके परिणाम खराब करो। हम आपके लिए साधु नहीं बने, हम अपने कल्याण के लिए साधु बने। भैया! मैंने ज्ञानी को न बिल्कुल डाँटा, न हुंकार किया कि तू मुनियों को नमस्कार क्यों नहीं करता। पहले वह करता था, फिर करने के बाद छोड़ दिया। आदमी की नस पकड़ना सीखो। बहुत सारे उपाय कर लो, सब व्यर्थ हैं। नस पकड़ना सीख लिया, सो मिनिटों में काम होता है।

एक दिन क्या हुआ कि माइक खराब हो गया। अब सबके-सब खड़े हो गये। कोई कुछ खींचें, कोई कुछ। खींचातानी में आधा घंटा हो गया। नाड़ी के डॉक्टर भी खड़े हो गए और कलम के डॉक्टर भी खड़े हो गए। 'न्यायदीपिका' पढ़े होते तो बिल्कुल खड़े न होते। अरे! तुम डॉक्टर तो कलम के हो, लेकिन माइक के नहीं हो। और जैसे ही माइक वाला युवा आया, उसने एक बटन चटकाया तो माइक चालू हो गया। तो ज्ञानियों! जिसको मालूम हो कि बटन कहाँ है, उसे ही दबाना चाहिये। मैं समझ गया कि इस जीव ने नमस्कार करना क्यों छोड़ दिया। बहुत सारे युवाओं को क्या भ्रम हो गया है कि साधुओं में भगवान् देखना चाहिये। ये भ्रम है। साधु को साधु मानिये, भगवान् को भगवान् मानिये। भगवान तो हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए हैं और साधु आशीर्वाद दे रहे हैं। जितने ये समझ रहे हैं कि साधु तो भगवान् है परंतु साधु

साधुभगवान् हैं; साधु अरहंतभगवान् नहीं है। अरहंत भी भगवान् हैं, सिद्ध भी भगवान् हैं, वे दोनों एक-से नहीं हैं। कर्मसहित, कर्मातीत हैं। एक समवसरण में हैं, दूसरे सिद्धालय में विराजते हैं। कहीं से सुन लिया कि साधु तो भगवान् हैं और साधु आपस में बतियाते मिल गये, तो उसने कहा कि 'ये कैसे भगवान हैं? अब नमोऽस्तु नहीं करना।' भूल उनकी नहीं, आपकी थी।

आप सोच रहे कि महाराज क्या कहने वाले हैं? मेरा सोचना है कि पंचमकाल में टूटी-श्रद्धायें जुड़ें, वह ज्यादा अच्छा है। ऐसी भाषा मत बोलो कि जुड़ी श्रद्धायें टूट जाएँ। काँच के ग्लास को टूटने में देर लगती है, लेकिन पंचमकाल की श्रद्धाओं को टूटने में देर नहीं लगती। मैंने कहा कि स्वाध्याय की कक्षा में पढ़ना। 'आप बोलो, आप कहो तो पढ़ूँगा', स्वीकार कर लिया, लेकिन नमस्कार नहीं किया। मैंने देख लिया कि यह नमस्कार कर नहीं रहा है। ठीक है। एक दिन, दो दिन गुणस्थानों का व्याख्यान किया और गोम्मटसार जीवकाण्ड को पढ़ते-पढ़ते जैसे ही पंद्रह प्रकार के प्रमादों की व्याख्या प्रारंभ हुई (चार कथायें, चार कषाय, पाँच इन्द्रिय के विषय, निद्रा, स्नेह ये पंद्रह प्रमाद हैं।) अब ज्ञानी महाराज की वन्दना करने पहुँचे और उसी समय वे सामायिक में बैठे थे और प्रमाद कषाय ने घेर लिया तो उन्हें झोंका आ गया। किस मुद्रा में थे? बुद्धिपूर्वक प्रमाद होता तो ये लेटे मिलते, लेकिन ये तो आसन लगाये बैठे हैं, तब भी आँख झूम गई। जीव ने पुरुषार्थ किया था, तब भी कषाय ने घेर लिया। अब करणानुयोग का विवेकी होगा तो वह नमोऽस्तु करने जायेगा और विवेकहीन होगा तो कहेगा कि महाराज सामायिक में सो रहे हैं। विवेकी होगा तो कहेगा सामायिक कर रहे थे, झोंका लग गया होगा। इनका दोष नहीं है। ये छठे गुणस्थान में हैं, छठे गुणस्थान में प्रमाद हो सकता है। सम्यग्दृष्टि का चिंतन देखो। इसका तात्पर्य मुनिराज यह न सोच बैठें कि हमको सामायिक में सोना चाहिए क्योंकि हमारा छठा गुणस्थान है।

भैयाजी कह रहे थे कि आज नमक नहीं मिला खाने में। दूसरे ज्ञानी ने सुन लिया, बोला- मेरी तो श्रद्धा टूट गई। क्यों? वे तो नमक की बात कर रहे थे। ज्ञानी! ऐसे मत सोचो? तुम्हें करणानुयोग से जानना पड़ेगा। यह संज्वलन कषाय से बोल रहा था कि अनन्तानुबंधी से बोल रहा था? विकथा हो सकती है, परंतु हे योगी! विकथा तुम्हारा धर्म नहीं है। अखबार, सीड़ी देखना, दुनियाँ के नाटक करना तुम्हारा धर्म नहीं है। आप तो कह रहे थे। झगड़ते मिल जायें तब भी मुझे तो सम्यक्त्व प्रकट है, अश्रद्धान नहीं करना। दो स्त्रियाँ नग्न नृत्य कर रही हैं, चक्रवर्ती स्वप्न देख रहा है, बात क्या है? पंचमकाल आयेगा, योगी से योगी का विसंवाद देखने को मिलेगा। हे श्रावक! तू माँ भगवती जिनवाणी को तीन बार धोक देना। हे भगवती!

ध्रुवधाम, तेरा नाम सत्य है। जैसा लिखा है, वैसा लखा, गलत हुआ कहाँ है? आपकी वाणी सत्य है। श्रद्धान दृढ़ होना चाहिए।

जीव बचपन में न सँभल पाये तो पचपन में ही सँभल जाये। बचपन में नहीं, अस्सी में ही सँभल गया। अस्सी पर नहीं, सौ पर भी सँभल गया। बुंदेलखंड में कहते हैं कि सुबह का भूला शाम को घर आ जाये तो वह भूला नहीं कहलाता। उस जीव की आस्था तो देखो कि यहाँ आकर वह नमस्कार कर रहा था। ये नहीं कह रहा था कि मुझे आशीर्वाद दे दो जिससे कि हम स्वस्थ हो जायें, हम दौड़ने लग जायें।

देखो, सड़े आम के फल को पुनः डाल पर कौन लगाता है? परंतु उसे यह भी मालूम है कि सड़े आम को जमीन पर डाल दो तो विशाल वृक्ष का रूप बनता है। अहो वृद्धो! अब तुम इस पर्याय से संसार का पुरुषार्थ मत करो। अब तुम इस पर्याय से समाधि करने का पुरुषार्थ करो। इसको भूमि में डाल दो और फिर विशाल वृक्ष के रूप में अंकुरित करो।

ज्ञानी कह रहा था 'महाराज! अब चलती बिरियाँ है, एक आशीर्वाद देकर जाना। मैंने इस भव में जो किया, उसमें मैं जैनकुल में ही आऊँ।' इससे ध्वनित होता है कि जीव को इतना तो मालूम चल चुका है कि इस कुल में जो वीतरागी शासन है, यहाँ नमोऽस्तु करने को मिलता है, यहाँ अरहन्त का अभिषेक करने को मिलता है, यहाँ जिनवाणी सुनने को मिलती है। दुनियाँ में श्री तो मिल जायेगी, पर श्रीजी नहीं मिल पायेंगे। भैया! यदि तू ऐसा निदान भी करता है, तो जिनवाणी को स्वीकार है, क्योंकि वह प्रशस्त निदान है। अच्छा तो यह है कि भवातीत होऊँ। लेकिन जब तक भवातीत न हो पाऊँ, तब तक जिनेन्द्र-शासन मिलता रहे। लौकिक कवियों के शब्दों में कहें तो यदि मैं श्वान भी बनूँ तो गोकुल का बनूँ, कौआ भी बनूँ तो गोकुल का बनूँ, कम -से-कम नारायण कृष्ण का जूठन खाने तो मिलता रहेगा। पर तुम तो महान हो, तुम इंसान भी बनो तो जिनकुल में बनना। जिनकुल में बनोगे तो अरहन्त की जय करने तो मिलेगी, नमोऽस्तु शासन जयवन्त करने को मिलेगा। 'अष्ट पाहुड' में जैनशासन को श्रीजिनवीर-चन्द्र शासन कहा है।

श्री घर में पड़ी है, लेकिन गर्मी यहीं मंच पर आ रही है। श्री की गर्मी विचित्र होती है जब घर की श्री नष्ट हो जाए तो चेहरा कुम्हला जाता है। अमृतचंद्र स्वामी कहते हैं- हे योगीश्वर! धन्य हो आपको।

अचिन्त्यशक्तिः स्वयमेव देवश्चिन्मात्र-चिन्तामणिरेष यस्मात्।
सर्वार्थसिद्धात्मतया विधत्ते ज्ञानी किमन्यस्य परिग्रहेण ?।। 144।। स. सार कलश।।

अन्य परिग्रह की क्या बात करूँ, आप तो सर्वार्थसिद्धि के प्रदाता हो। सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि मेरी ध्रुव आत्मा में होती है। इसलिए जगत की धी और श्री से क्या प्रजोयन है? धी भी नाशवान है, श्री भी नाशवान है। अविनाशी तो ज्ञायकस्वभाव है, जो ध्रुव भाव है। आत्मा केवलज्ञानस्वभावी नहीं, ज्ञानस्वभावी नहीं, श्रुतज्ञानस्वभावी नहीं, अवधिज्ञान-स्वभावी नहीं, मनःपर्यायज्ञानस्वभावी नहीं। आत्मा तो मात्र ज्ञायकस्वभावी है। शेष तो पर्याय है। ज्ञायकभाव त्रैकालिक है। ऐसे समयसार के तत्त्व को सुननेवाले युवा यहाँ बैठे हैं, अब वक्ताओं को समझना चाहिये। यहाँ वे मनोरंजन को नहीं, आत्मरंजन को आये हैं। आत्मा की बात बताओ। श्रद्धा से भरी जिनवाणी चाहिये। मनीषा को अशुभ तत्त्व में मत ले जाना। लोगों को रिझाने के लिए राजसभा में महारानी को गणिका बनाकर मत भेजना। गणिका राजसभा में नृत्य करे तो लोगों को अच्छा लगता है। पट्टमहिषी जाकर नृत्य करने लग जाये तो दुनियाँ आँखें फेर लेगी, क्योंकि रानी है।

हे ज्ञानी! जिनवाणी को जिनवाणी रहने देना। ये तीनलोक की महारानी है, जगत की जननी माँ है, इसलिए इसको गणिका के स्थान पर मत रखना। जब जिनवाणी होती हो तो दुनियाँ के प्रपञ्चों की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी वाणी में इतनी दम होनी चाहिये कि जो लोगों को जिनवाणी में श्रद्धा उत्पन्न करा दे। घर में हिस्सा चाहिये तो कितनी ताकत से चिल्लाता है, जबकि धीरे से भी तो माँग सकता है। बोलता है, 'महाराज! चिल्लाऊँगा नहीं तो कौन देगा? जब घर का हिस्सा तू चिल्लाकर माँग सकता है, तो हे ज्ञानी! पूरी गंभीरता के साथ सारे विश्व से सम्यक्त्व के हिस्से को माँगना और कहना कि ये वीतरागवाणी का मार्ग है। यदि श्वास भी तेरी निकलती हो तो तनाव मत पालना, लेकिन अरहन्त की वाणी को जयवन्त करना। पुद्गल के टुकड़ों में नहीं बिकना। ज्ञानी! यदि पानी पीने को न हो, तो जिनवाणी कह कर समाधि कर लेना। दूसरों के एकान्त मिथ्यात्व के टुकड़ों को खाकर जीवन जीने की अपेक्षा समाधि श्रेष्ठ है। हे भगवती जिन भारती! श्वास एक भव में जायेगी और यदि कहीं मिथ्यात्व आ गया, सम्यक्त्व चला गया, तो भव-भव में कष्ट देगा।

ज्ञानी! बहुत अच्छा हुआ, तीर्थंकर-जैसे महापुरुष बनिया के घर नहीं हुए। यदि कोई गरीब का बेटा मुनि बना होता तो ये सेठ क्या कहते? मुनि वे बनें, जिनके घर में खाने को टुकड़े न हों। ये वो बोलने वाले लोग हैं जो कहते हैं कि बनें वे जिनकी बुद्धि न चलती हो। परंतु हे ज्ञानियों! विश्वास रखना, ये तीनलोक के नाथ तीर्थंकर जन्म से तीन ज्ञान के धारी होते हैं। तुम अपने ज्ञान पर अहंकार मत करना। पोथियों का, ग्रंथों का ज्ञान ग्रंथों से नहीं, निर्ग्रन्थों से आया है। वेदों, उपनिषदों में लिखा है कि तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। क्षत्रियों के पास अध्यात्म विद्या

है। क्षत्रियत्व लाओ। अनन्त भव मैंने सबसे बतियाया है। अब मैंने निर्णय किया है कि इस भव में मात्र जिनवाणी से बतियाना है। आज जिनवाणी से बतियाते हैं तो हमारी समाज मुस्कराती है। गद्गद् होकर बैठी हुई है। ये उसका ही फल है। बहुत अच्छा हुआ कि तीर्थंकर क्षत्रियों के घर में पैदा हुए और क्षत्रियों में भी गरीब के घर में नहीं, सम्राटपुत्र हुए। सम्राट ही नहीं, चक्रवर्ती, कामदेव हुए। तीर्थंकर तीन-तीन पद तक के धारी हुए हैं।

टूटे-फूटे बर्तनों के धारियों, अहंकारियों को यह बोध होना कि चाहिए कि ये वीतराग मार्ग भिखारियों का मार्ग नहीं, वैरागियों का मार्ग है। व्यवस्था भंग होने से साधु बनते होते, तो यहाँ ऐसे भी लोग होते हैं जिनको सुबह-शाम का तनाव रहता है। वे भीख माँग लेंगे, लेकिन भिक्षु नहीं बन पायेंगे। भिखारी मुनि नहीं बनता, भिखारी तो भिखारी होता है। भिखारी कभी साधु नहीं बनता और साधु कभी भिखारी नहीं होता, वैरागी होता है। वैरागी होने के लिए नहीं होता है, वीतरागी होने के लिए होता है। अरनाथ स्वामी की स्तुति करते हुए कवियों में तीर्थंकर समंतभद्र स्वामी कहते हैं।

तव रूपस्य सौंदर्य दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान्।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ।।89।। (स्वयंभू स्तोत्र)

भगवन्! आपका इतना सुन्दर रूप था कि सौधर्म इन्द्र दो आँखों से देखकर तृप्त नहीं हुआ तो आश्चर्ययुक्त होकर उसने हजार नेत्र बना लिए। विश्व में सबसे सुन्दर कोई होता है तो तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान में साधुगण तीर्थंकरों के प्रतिरूप हैं। उनमें शारीरिक सौंदर्य मत देखना, उनके गुणों को देखना। वे ज्ञानमूर्ति हैं। वे किन्हीं सांसारिक क्लेशों से व्यथित होकर मुनि बन गये, इस भ्रम को निकाल देना। कोई यह कहे कि प्रज्ञाशील नहीं होते, तो कुन्दकुन्द-जैसे प्रज्ञाशीलों के ग्रन्थ पढ़ लो। समन्तभद्र जैसा महायोगी, किसी में ताकत है आज, जिसने कहा हो- जिसने माँ के आँचल का पान किया हो, मुझसे शास्त्रार्थ करे। मैं वाग्मी हूँ, नय्यायिक हूँ, मंत्रवादी हूँ।

समन्तभद्र स्वामी ने लड्डू खाये, पर वन्दना नहीं की और जब नमस्कार किया, तो चन्द्रप्रभ स्वामी को प्रकट करके किया। भक्ति हो तो ऐसी हो, अहो भक्तो! तुम शान्तिनाथ की भक्ति कर रहे हो, ऐसी भक्ति करना कि अपने हृदय के शान्तिनाथ प्रकट हो जायें। हे प्रभो!

लक्ष्मीविभवसर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्रलाञ्छनम्।।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाऽभवत् ।।88।। (स्वयंभू स्तोत्र)

चक्र लक्षण, ये मुमुक्षु का लक्षण है। जो इस अखंड पृथ्वी के सम्राटपने को सड़े तिनके

के समान छोड़कर चल दिये हैं, उनका नाम तीर्थंकर शान्तिनाथ, अरनाथ है. चक्रवर्त्ती थे चक्रवर्त्ती।

'कोड़ि अट्ठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी' और तेरे घर में एक गाय तक नहीं है, तब भी नहीं छोड़ रहा। वह चक्रवर्ती छियानवें हजार रानियों को छोड़कर चला गया। भैया! प्रथमानुयोग पढ़ा करो, जिससे पता चल जाय कि तुम्हारे पास कितना-सा है। 'महापुराण' में चक्रवर्ती के वैभव का वर्णन है, जिसने साठ हजार वर्ष तक दिग्विजय की हो। इसलिए यह सब कुछ जो दिखाई दे रहा है, धर्म का प्रभाव है। कभी भी इनको निषेध मत करना, ग्रहण में ले जाना। साधु के विनय समाचार के विषय में 'मूलाधार' और 'आचारसार' में लिखा है- दिगम्बर मुनि व आचार्य भगवन्त को भी श्रावक की विनय करना चाहिये। ये आयतन है। तो महाराज पाँव पड़ेंगे क्या? नहीं, नहीं। पाँय नहीं पड़ने का। ये तुम्हारे पाँव पड़े, तो तुम उनको आशीर्वाद दे देना, यही विनय है। यानी वह गद्‌गद् भाव से आया है। उसके उत्साह को बढ़ा देना और कह देना- बेटा! 'सद्धर्मवृद्धिरस्तु' तुम्हारे सद्धर्म की वृद्धि हो। चांडाल नमोऽस्तु करे तो 'पापक्षयोस्तु' तुम्हारे पाप का क्षय हो। ब्रह्मचारी भैया नमोऽस्तु करें तो 'समधिरस्तु'।

'नीतिसार' ग्रन्थ में आचार्य इन्द्रनन्दि स्वामी ने आशीर्वाद और नमस्कार के भेद किये हैं। सबको एक-जैसा आशीर्वाद मत देना और सभी को एक-जैसा नमस्कार नहीं होता। जिनेन्द्र-शासन में पंचपरमेष्ठी मात्र को 'नमोऽस्तु' होता है। वस्त्रधारी को नमोऽस्तु नहीं होता। नरक में पड़े श्रेणिक के लिए भगवान् की ध्वनि खिर गई है। जो भविष्य में होने वाला है, वह सब आगम में आ चुका है। उतना ही मानता हूँ, मनमानी नहीं मानता हूँ। जो है, सो है। भगवान् की देशना में भावकर्म समझ में आते हैं, शुभ परिणाम समझ में आते हैं, अशुभ परिणाम समझ में आते हैं।

जिस देव की वन्दना करते, वह कैसा है? जो स्वयं ऊपर जाये, नीचे आये, जैसे खेल खेले, ऐसे देव को मैं अपने हृदय में क्या अपने मोहल्ले में भी नहीं रखता। ज्ञानी! जो रूठे, मने, रूठना-मनाना तो बालक का खेल होता है, वीर का खेल नहीं होता। इसलिए ध्यान रखो, ज्ञानी! तनक-सी फुड़िया हो जाय तो दुनियाँ में भटकने नहीं जाना। वादिराज मुनिराज से पूछना, उनके पूरे शरीर का कुष्ठ भगवान की भक्ति से क्षणमात्र में विलीन हो गया था। तुम तनक सी फुन्सी ठीक नहीं कर पाते हो। अड़तालीस ताले टूट गये। वही भगवान् वही भक्तामर। फल क्यों नहीं मिलता? भगवान् वही हैं, भक्तामर वही है, लेकिन भक्त वही नहीं है। स्वामी की भक्ति होनी चाहिये, आज भी चमत्कार है। ज्ञानी! ये मस्तिष्क तो मिथ्यात्व में झुकना ही नहीं चाहिये। जीवन चला जाये, पर सम्यक् न जाने पाये। सम्यक् के साथ नरक

जाना श्रेष्ठ है, परंतु मिथ्यात्व के साथ स्वर्ग में जाना अच्छा नहीं है।

वरं नरकवासोऽपि, सम्यक्त्वेन समायुतः।
न तु सम्यक्त्वहीनस्य, निवासो दिवि राजते।। 39।। (सारसमुच्चय)।।

सम्यक् के साथ नरक का निवास श्रेष्ठ है, लेकिन मिथ्यात्व के साथ स्वर्ग का निवास श्रेष्ठ नहीं है। सम्यग्दृष्टि नारकी-मोक्षमार्गी है, परंतु मिथ्यादृष्टि देव संसारमार्गी हैं। बोले- 'महाराजजी! व्यवहार तो देखना पड़ता है।' ज्ञानी! वो व्यवहार किस काम का जो आत्मा का नाश कर दे? तुम तो घिनौची पुजवाओ, मटका/कलश पुजवाओ। कितना अहोभाग्य अपना है, भले अपने पंचमकाल में आये हैं, परंतु भाग्य कितना अच्छा है? यदि बुद्धि लेकर किसी दुष्कुल में जन्मा होता, किसी खोटे कुल में जन्मा होता, तो इस मुख से मिथ्यात्व ही बकता मिलता। आज कितना अहोभाग्य है कि इस मुख से जिनवाणी निकलती है। मैं नाटक का पात्र नहीं हूँ। मैं तीनलोक के नाथ का नाटक देखने का पात्र हूँ। मैं संसार का नाटक नहीं करूँगा। जिन-जिन को मुनि बनना हो, तो खेल वगैरह में नहीं जाना। हाथ-पैर टूट जायेंगे तो मुनि नहीं बन पाओगे। खंडित प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं होती। जो आनन्द मुनि के मन में है, वह आनन्द जगत में कहीं है ही नहीं। तो भैया! ऐसे देव को मन में विराजमान कर लेना। लोक में कहते हैं कि जिसकी छाया पड़ जाय, वैसा रूप बन जाता है। अरहन्त की वाणी की छाया पड़ जाये तो तुम सब निर्ग्रन्थ बन जाओ। जिन्होंने समस्त दुःख के भव-जाल को नष्ट कर दिया हो, जो तीनों लोकों को निहारनेवाले हैं, ऐसे देवों के देव मेरे हृदय में विराजमान् रहें। हृदय में किसी और को विराजमान मत कर लेना।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिसिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।

आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है और आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति नहीं होना ही अहिंसा है - यही जिनागम का सार है

निषूदते यो भव-दु:ख-जालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतो योगि-निरीक्षणीय:, स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ।। 14।।

अन्वयार्थ - (य:) जो (भव-दु:ख-जालं) संसार के दु:खसमूह को (निषूदते) नष्ट करता है (य:) जो (जगदन्तरालम्) जगत् अन्तराल [रूप स्वरूप] को (निरीक्षते) देखता है (अन्तर्गत: य:) जो अन्त: स्थित है (योगि-निरीक्षणीय:) योगीजनों के द्वारा अवलोकनीय है (स देव-देव:) यह देवों का देव (मम हृदये) मेरे हृदय में (आस्ताम्) विराजमान रहे।

सामायिक देशना

यहाँ आचार्यभगवान् अर्हन्तदेव के स्वरूप को प्रकट करते हुए वस्तु के स्वभाव का व्याख्यान कर रहे हैं- देह पर दृष्टि न देकर गुण पर दृष्टि टिकी है। स्वरूप अस्तित्व, सादृश्य अस्तित्व। जब जीव पर्याय को देखता है तो राग-द्वेष में वर्तन होता है। कभी घट को ब्राह्मण के घर का देखता है, कभी घट को वैश्य के घर का देखता है, तो कभी घट को शूद्र के घर का देखता है। हे घटो! आपने पवित्र नर्मदा के नीर में भेद कर दिया। सभी ने मेरे से पानी भरा है। कोई कह रहा कि क्षत्रिय के घर का नीर है। कोई कह रहा है कि वैश्य के घर का नीर है। ध्यान दो, पानी किसका था? ये घट न होते तो पानी में भेद न होता। हे घटो! इन बर्तनों ने पानी का वर्तन (पर्याय) बदल दिया। आपके बर्तन में नानत्व हो सकता है, परंतु पानी में कोई नानत्व नहीं है। नीर वही है नर्मदा का, केवल घटों में भेद है। ऐसे ही जिसको सवा पाँच सौ धनुष की अवगाहना मिली है, उसका घट भिन्न दिख रहा है और जिसको साढ़े तीन हाथ की अवगाहना मिली है, उसका घट भिन्न दिख रहा है; लेकिन अशरीर भगवत्स्वरूप छियालीस गुणों से मंडित अरहन्त अवस्था जैसी साढ़े तीन हाथ के शरीर में है, वैसी ही सवा पाँच सौ धनुष के शरीर में है। उनके स्वरूप में कोई भेद नहीं है। अवगाहना को देखकर भगवान् में भेद मत करो। देही को देखोगे तो भेद नहीं दिखेंगे, देह को देखोगे तो भेद दिखेंगे। अन्तर किस बात का है? किसी की अवगाहना छोटी हो या बड़ी, आप अपने भाव देखो। ज्ञानी! इस उपदेश को छोड़ दो कि देहधर्म आत्मधर्म है। परमार्थ से आत्मधर्म ही आत्मधर्म है। इसलिए आचार्यभगवान् ने जब प्रारंभ किया था अरहन्त के स्वरूप को, तब उन्होंने यही कहा था "दर्शनज्ञानसुखस्वभाव:" जो दर्शन-ज्ञान-सुखस्वभाव से युक्त हैं, ऐसे देव अरहन्तदेव हैं। वे देव मेरे हृदय में विराजमान हों।

स्वरूप अस्तित्व, सादृश्य अस्तित्व पर दृष्टि जाना चाहिए। स्वरूप अस्तित्व भिन्न है,

सादृश्य अस्तित्व भिन्न है। स्वरूप अस्तित्व से हम स्वतंत्र हैं, पर से अत्यंत भिन्न हैं। सादृश्य अस्तित्व कहता है- हे ज्ञानी! चिद्पिण्ड, चैतन्य, अखंड ज्ञान निहारो। भगवान्-आत्मा को निहारो। ज्ञायकभाव से देखो। निगोदिया में भी वह देव विराजा है। चेतनत्व दृष्टि से देखो तो निगोदिया में और तेरे में अभेद है। जिसे तू शूद्र कह कर ग्लानि ला रहा है, कुल की प्रत्यासत्ति की चर्या भिन्न है, उस दृष्टि से भेद स्वीकारना होगा। जाति की प्रत्यासत्ति भिन्न है। लेकिन हे ज्ञानी! अरहन्त बननेवाला जीवजाति को न देखकर उसमें शुद्ध जीवत्व को देखता है। जिस समय आपको विश्व की एकता की बात करना हो तो णमोकार पढ़ना। ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई मंत्र नहीं है जिस मंत्र में विश्व की एकता का कथन किया गया हो।

णमो लोए सव्व अरिहंताणं,
णमो लोए सव्व सिद्धाणं,
णमो लोए सव्व आयरियाणं,
णमो लोए सव्व उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूणं।
'णमो लोए सव्व' अन्त्य दीप है।

लोक के सम्पूर्ण अरिहन्तों को नमस्कार हो, लोक के सर्व सिद्धों को नमस्कार हो, लोक के समस्त आचार्यों को नमस्कार हो, लोक के समस्त उपाध्यायों को नमस्कार हो, लोक में समस्त दिगम्बर तपोधनों को नमस्कार हो। इससे बड़ा लोक में अखंडता को कहनेवाला कोई मंत्र नहीं है। समन्तभद्रस्वामी से पूछेंगे तो वह कहेंगे कि भगवत् अरहंत की शरण में जानेवाला जीव वस्तुस्वरूप को न समझे, ऐसा कैसे हो सकता है? समन्तभद्र स्वामी क्या कह रहे हैं? चांडालपुत्र भी देवों के द्वारा पूज्यता को प्राप्त कर सकता है। जैसे अंगारे पर भस्म आच्छादित हो जाये, तब भी उसमें चिनगारी रहती है। ऐसे-ही चांडाल कुल में जन्मा जीव भी सम्यक्त्व की ज्योति को प्रकट कर सकता है। कुल की प्रत्यासत्ति भिन्न है, जाति की प्रत्यासत्ति भिन्न है, लेकिन श्रद्धा गुण को निहारोगे तो श्रद्धा उसकी वैसी ही है। सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से जैसे आपको सम्यक्त्व होता है, वैसे ही उसको भी हो सकता है। उसकी सम्यक्त्व की चित् ज्योति जाग्रत हुई है। जैसे एकदेश जिन जैनकुल में जन्मा सम्यग्दृष्टि हो सकता है, वैसे ही एकदेश जिन चांडालकुल में जन्मा भी सम्यग्दृष्टि हो सकता है। भैया! जितने गोरे चेहरे दिखते हों, इनको ही धर्मात्मा मत मान बैठना। हमारी चौबीसी में दो तीर्थंकर काले हुए, बहुत अच्छा हुआ। हे नेमिनाथ स्वामी! हे मुनिसुव्रतनाथ स्वामी! आपका वर्ण श्याम था, तो कम-से-कम काले लोगों को धर्म में स्थान तो मिल गया। ये पंचमकाल है। गोरे, गोरे से क्या होता

है? गोरा तो बगुला भी होता है। गोरा यदि धर्मात्मा होता, तो बगुला सबसे बड़ा धर्मात्मा हो जाता। ज्ञानी! शान्त खड़ा होता है। 'उज्जवल वर्ण गरीब हैं, एक टाँग मुख ध्यान। ऐसे बगुलावत् भगत, निपट कपट की खाना।' बगुला सरोवर के बगल में बैठा रहता है। बिल्कुल भक्त जैसा लगता है। लेकिन जैसे ही मछली आती है, झपट्टा मार देता है। इसलिए ज्ञानी! शरीर का गोरापन, शरीर का कालापन, यह मोक्ष का साधन नहीं है, बंध और मोक्ष का हेतु नहीं है।

बंध या मोक्ष का हेतु निम्न श्लोक में देखो-

बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिंत्रयेत्।। (इष्टोपदेश)

अर्थात् ममता बंध का कारण है और समता मोक्ष का कारण है।

जीव को दीक्षा लेना हो तो शान्ति से सुनना और न लेना हो, तब भी शान्ति से सुनना क्योंकि कभी-कभी घर में धर्मात्मा लोग भी बहुत अधर्म फैलाते हैं। वह क्या कहता है अपने बेटे की माँ से ? मुझे दीक्षा लेना है, तुम न होती तो मैं दीक्षा ले लेता। अरे अज्ञानी! वो पहले आयी कि तू पहले से था? किसने कहा था तू लेने जाना। पहले ही चला जाता तो वह क्यों तेरे घर में आती? तू उसको दोष क्यों देता है? अपनी परिणति को दोष क्यों नहीं देता? बेटे की माँ को ताने-बाने देता है कि तू ना होती तो मैं महाराज के साथ चला जाता। वह भी तो कह सकती है 'अरे! तू मेरे घर न आता तो मैं किसी आर्यिकासंघ में आर्यिका बन जाती।' वस्तुव्यवस्था समझिये। जैनदर्शन को प्रतिक्षण प्रयोग करने की आवश्यकता है। घर में ढोंग वाले धर्मात्मा लोग हैं, वे घर को बिल्कुल युद्धभूमि बनाये हुए हैं कि मैं व्रती हूँ, आपको मेरा ध्यान रखना चाहिए था। बहुत अच्छी बात है कि आप व्रती हो। मुझे आपका ध्यान रखने की कोई आवश्यकता न होती, क्योंकि व्रती निशल्य होता है, शल्यरहित होता है। 'विरतिर्व्रतम्' जो विरक्त होता है, उसका नाम व्रती है। आपको तो व्रतों में भी आसक्ति आ रही है तो आपका व्रत तो नष्ट हो चुका है। आपको व्रतों में आसक्ति आ गई। आसक्ति आने का प्रमाण यह है कि मैं आपका पुत्र होते हुए भी आप मुझे किस प्रकार से देखते हो। जबकि व्रती का प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव होता है। आप मुझे भेद करके देख रहे हो। भेद इस बात का कि मैं अव्रती हूँ, आप व्रती हो। लेकिन जीवत्वभाव का भेद तो नहीं है। आप सोले के वस्त्र पहने हो, मैं असोले के पहने हूँ, ये बात बराबर है। आप मेरे से दूर हो, लेकिन ध्यान रखना, ये शुद्धि वस्त्रों की शुद्धि है। यह बहिरंग शुद्धि है। और परिणामों की शुद्धि, अंतरंग शुद्धि मात्र ऐसा मानकर चलना जैसे एरण्ड का वृक्ष। एरण्ड का वृक्ष खुद कितना ही मोटा हो जाये, लेकिन विश्वास रखना, भीतर खोखला ही होता है। जिसके अंतरंग शुद्धि का अभाव है और बहिरंग

चर्या चल रही है, वह एरण्ड के वृक्ष के समान खोखला दिखाई देता है। बहिरंग में ज्यादा छू-छू करता न दिखे, अंतरंग विशुद्ध महक रहा है, तो यह चन्दन का वृक्ष है। चन्दन के वृक्ष की छाल बबूल-जैसी काली होती है, लेकिन अन्दर जाकर देखो, सुगंधमय द्रव्य पड़ा हुआ है।

वात्सल्य का जीवन जीना, त्याग का जीवन जीना, सादृश्य अस्तित्व पर ध्यान रखते हुए जीवन जीना। सादृश्य अस्तित्व पर ध्यान देना। अरहन्त के पास जाओ तो सादृश्य अस्तित्व का ध्यान रखना। निर्ग्रन्थ के पास आओ तो सादृश्य अस्तित्व का ध्यान रखना और अपने भाई-बंधुओं के पास जाओ तो सादृश्य अस्तित्व का ध्यान रखना। आज अपना बुद्धि-विवेक काम कर रहा है। पुण्य के नियोग से निमित्त भी अच्छे मिले हैं। कदाचित् पंचमकाल की अंतिम श्वासों तक पहुँच गये तो न समझानेवाले मिलेंगे, न समझने की बुद्धि मिलेगी। कौन किसको समझायेगा? समय रहते कुछ कर लो। शरीर की ख्याति, पुद्‌गल की ख्याति किसी भी पर्याय में मिल सकती है, परंतु आत्मा की ख्याति आत्मानुभूति सब जगह नहीं मिल सकती है। सादृश्य अस्तित्व क्या कह रहा है? जैसी प्रभुत्व शक्ति तेरे अन्दर है, वैसी ही प्रभुत्व शक्ति उस डाली के अन्दर भी है जिससे तू दातोन कर रहा था। हड्‌डी को घिसने के लिए तूने भगवान्-आत्मा का प्रयोग किया है। उस हड्‌डी में तो आग लगेगी, उसकी राख होगी। राख होनेवाले पर राग करके तू एक जीव का घात करेगा। क्या आपको मालूम नहीं है कि अकौए में महावीर विराजते थे? भूमि पर पैर रखने के पहले सादृश्य अस्तित्व पर ध्यान रखना। 'धण्णा ते भयवन्ता।' हे दिगम्बर तपोधन! रात्रि के समय बोलना तो घोर पाप है, चर्या करना महापाप है। दो प्रकार के निशाचर होते हैं। दिगम्बर तपोधन एक भी प्रकार के निशाचर बनना नहीं चाहते। निशा अर्थात् रात्रि, चर अर्थात् चरना/खाना। जो रात्रि में खायें, वे सब निशाचर हैं और यदि आप खाते हो तो आप भी वही हो। एक चर अर्थात् चरना, एक चर अर्थात् चलना। जो रात्रि में चले। यहाँ कहता- एकेन्द्रिय या द्वीन्द्रिय की विराधना हुई हो, और वहाँ रात्रि में वाहनों में चल रहा है, वहाँ प्रतिक्रमण कर रहा है। निशाचर। तू रात्रि भर चलेगा, कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होगी। यहाँ कह रहा कत्लखाने बन्द करो। यदि आपकी कत्लखाने बन्द कराने की दृष्टि है, तो साथ में आपको अपना सुधार भी करना पड़ेगा। तू जिनालय से जिनदेशना परिसर में पैदल भी तो आ सकता था। एक कदम पैदल चलना नहीं चाह रहा है। गाड़ी में जो पेट्रोल डल रहा है, वह कहाँ से आता है?

मुझे कोई विकल्प नहीं है, मुझे तो सल्लेखना करना है। गुरु से एक बार ही एक ब्रह्मचारी को भेजकर पत्र मंगाया जा सकता है। इस पाप की अनुमोदना का दोष मुनि को भी लगेगा, आर्यिका को भी लगेगा। क्यों लगेगा? विशुद्धसागर चातुर्मास स्थापित कर रहे हैं, क्योंकि

एकेन्द्रिय जीव का भी घात न हो जाये। इधर हजारों वाहन दौड़ रहे हैं। अहो ज्ञानी! हजारों वाहनों के नीचे कितने जीव ध्वस्त हो गए? इधर भी ध्यान दौड़ाना। यदि श्रावक का देशव्रत है, तो अपनी सीमा के बाहर से कोई वस्तु मंगा नहीं सकता और कोई वस्तु भेज भी नहीं सकता, यदि निर्दोष संयम पालन करता है तो। अन्यथा जो है, सो है।

ये बुन्देलखण्ड की माटी है। यहाँ एक श्रावक ने देशव्रत धारण किया, इसी बीच उसके पिताजी की मृत्यु हो गई। सूचना आयी। धन्य हो उस श्रावक के धैर्य को। तुरंत समाचार भेजा- 'मेरा पिता तो चला ही गया, अब वह तो आने वाला है नहीं। अब संस्कार ही होना है, वह तो आप भी कर सकते हो। मेरा हाथ जो धर्म के शीश पर है, उसे मैं बुद्धिपूर्वक क्यों हटाऊँ? मेरा देशव्रत है। जब वह पूरा हो जायेगा, तब मैं आऊँगा। उसने अपना व्रत नहीं तोड़ा। रत्नत्रय के तेज से आत्मा को प्रभावित करना ही प्रभावना है।

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजा-विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः।।30।। (पुरुषार्थसिद्ध्युपाय)

दान के द्वारा, पूजा के द्वारा, विद्या के द्वारा, अतिशय के द्वारा भगवान् जिनेन्द्र के शासन का उद्योतन करना प्रभावना है। ज्ञानी! कभी भी तेरे मुनि बनने के भाव आयें, तो इतनी बातों का चिंतन पहले कर लेना, लेकिन ध्यान रखना, बनकर तो रहोगे, परंतु बन कर (मायाचार से) नहीं रह पाओगे। कुछ भी कठिन नहीं है। थोड़ी मन की मानसिकता को ठीक करना होता है, बाकी सब सरल है। धर्म कठिन नहीं है, मानसिकता को ठीक करना पड़ता है। धर्म एकदम सरल है। स्वरूप अस्तित्व, सादृश्य अस्तित्व को एकेन्द्रिय से लेकर सिद्ध तक लगाना है। हे परमेश्वर! हम राग में इतने लिप्त हो गए कि हमने आपको मंदिर की वेदी पर देखा। हमने आपको सिद्धशिला पर सिद्ध के रूप में देखा। हे परमेश्वर! आपकी आराधना/ भक्ति विशुद्धि का साधन तो है, परंतु दया का साधन कहाँ है? दया पर भी ध्यान देना आवश्यक है। वह विशुद्धि दयाभूत नहीं, आत्मदयाभूत अवश्य है। लेकिन प्राणिदया तो तब जब हम रास्ते में चल रहे थे, तब भावी अरहन्त, भावी सिद्ध इनको भी देखकर चलता। वे पुजे भगवान् थे, ये पुजनेवाले भगवान् थे। इन दोनों को लेकर चलता तो इसी का नाम मुनि महाराज होता। जो पूज्य को भी पूजे और पुजनेवाले को भी पूजे, उसका नाम वीतरागी तपोधन होता है, क्योंकि एक पूज्य हो लिये हैं, दूसरे पूज्य होने जा रहे हैं। ज्ञानी! दोनों में प्रकट, अप्रकट परमात्मा को देखो।

पूज्य को पूज रहे हो और पुजनेवाले को पूछ भी नहीं रहे हो। ज्ञानी! गाड़ी में घूम रहा

था, नीचे आकर श्वान, बिल्ली दब गये और तूने कह दिया कि आगे बढ़ा लो। आज का युग देखो, कोई बालक आ गया गाड़ी के नीचे तो उसको उठाकर देखनेवाले विरले जीव मिलेंगे। कहीं फँस न जाऊँ? उसको कुछ नहीं दिखेगा, आगे बढ़ो। कहाँ जा रहे थे? सम्मेदशिखर की वन्दना के लिए जा रहे थे। रास्ते में गाड़ी के नीचे कोई जीव आ गया। ज्ञानी! वे तो बन चुके, अब आनेवाले भी नहीं हैं। उनकी हिंसा होनेवाली भी नहीं थी। हिंसा व हिंसकभाव का अभाव हो चुका था। उनकी वन्दना करने तू जा रहा था और जो बननेवाला था, कम-से-कम देख ही लेता कि उसकी क्या हालत हो रही है? किञ्चित भी करुणा है, दया है, तो कम-से-कम वाहन का प्रयोग करना। जहाँ जाना है, पांच मिनट और ज्यादा लग जायेंगे, पैदल चले जाना, लेकिन धुआँ मत निकालना। कितनी हिंसा? पेट्रोल आता, उसमें हिंसा। जिस पैसे से खरीदा, उसमें जो हिंसा की, वह हिंसा। जब तू चलायेगा, वह हिंसा और धुआँ निकल रहा, उससे जीव मर रहे, वह हिंसा। ज्ञानी! हिंसा-ही-हिंसा। पुण्य कितना-सा तेरे पास था, पूरा धुएँ में निकाल दिया। यथार्थ मानिये, जितना पुण्य लेकर आये थे, विश्वास मानना, दीर्घ समय तक चलनेवाला था। जितना पैसा आज तक तूने कमा लिया है, यदि समीचीन वृत्ति से चले तो तेरे पूरे जीवन तक चलेगा। और एक बेटे का जीवन भी चल जायेगा, इतना द्रव्य तो तेरे पास था। लेकिन होता क्या है? हम उस द्रव्य को अनियमित अनावश्यक रूप से नष्ट कर रहे हैं। परिग्रह का परिमाण हो जाये, भोगोपभोग व्रत का परिमाण हो जाये, दिग्व्रत व देशव्रत का परिमाण हो जाये। ज्ञानी! मालूम, जैन पैसेवाले क्यों? तुम जितनी मेहनत करते हो, उससे ज्यादा द्रव्य तुम्हारे पास होता है। रिक्सावाले को देखो, कितनी मेहनत करता है? फिर भी गरीब-का-गरीब होता है। लोग इनको देखकर यह तो सोचते हैं कि ये पैसेवाले क्यों हैं? इतनी वृत्ति भी तो देखी जाती है। तुम सौ रुपये कमाकर लाओगे, होटल में पहुँच जाओगे। गरीब उसी सौ रुपये से घर में शुद्ध भोजन बनवाता है और तुमसे अच्छा खाता है। जीवघात नहीं किया, सो पुण्य का आस्रव हुआ, पुण्य का बंध हुआ, पुण्य से पुण्य बढ़ा। यदि तुमसे एक बार अशुभ हो जाये, प्रथम बार के अशुभ करने में सोचना पड़ेगा, लम्बा समय लगेगा। एक बार पाप कर बैठा तो दुबारा पाप करने में संकोच नहीं होता है। पाप में पाप होता जाता है। जिसने एक बार पाप करने से पहले सोच लिया है, वह पाप कर नहीं पायेगा। जितने पापीजीव होते हैं, वे स्वच्छन्द होकर पाप करते हैं, पाप में पाप। जितना पुण्य का द्रव्य था, क्षणमात्र में नष्ट कर लेता है। अरबपति, खरबपति, करोड़पति लोग भी सड़क पर भीख माँग सकते हैं और बोल भी देते हैं कि जो मैंने किया है, वह आप मत करना। यह अरबपति का बेटा कह रहा है।

दो वस्तुएँ सुरक्षित रखना। एक धी और दूसरी श्री। तीसरी वस्तु है यश। तीन वस्तुओं पर आँच नहीं आना चाहिए। इसमें से कोई जानेवाली हो तो सबसे पहले श्री को छोड़ देना।

ज्ञानी! धी को बचा लेता है इन दोनों में से कोई जानेवाला हो तो धी को छोड़ देना, यश को बचा लेना। परिणामों की विशुद्धि में आपका यश भी काम में आता है। देखो, व्यवहार से बोल रहा हूँ। परिणामों की विशुद्धि में आपका अपयश भी काम करता है। आचार्य उमास्वामी महाराज लिखते हैं-

"**दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिवेदनान्यत्म परोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य।**" (तत्त्वार्थसूत्र)

असातावेदनीय कर्म के आस्रव में जो 'ताप' शब्द है, वह दुःख नहीं है, शोक नहीं है, आक्रन्दन नहीं है। ताप अलग वस्तु है। शरीर में पीड़ा हो तो दुःख होता है। इष्ट का वियोग हो जाये तो शोक होता है। विलाप में जोर-जोर से रोये तो आक्रन्दन कहलाता है, और मुख से बोल-बोलकर गुणगान करके रोये तो परिवेदन कहलाता है, किसी जीव का अपयश फैल जाये, उस समय जो दुःख होता है, उसका नाम संताप है। भैया! दुःख दिखाई देता है, शोक दिखाई देता है, आक्रन्दन व परिवेदन दिखाई देगा, परन्तु संताप में अन्दर-ही-अन्दर झुलस रहा है। किसी की वन्दना न कर सको तो ज्यादा विकल्प मत करना, पर किसी को बदनाम करने का विचार कभी मत करना। वध करने की अपेक्षा से किसी को बदनाम करना अधिक हिंसा है। वध किया है तो एक क्षण को दुःख हुआ और वह जीव चला गया, किन्तु जिसको तुम बदनाम कर रहे हो, वह क्षण-क्षण में दुःखित किया जा रहा है। उसको संताप अत्यधिक पीड़ा देता है। माताओ! तुम माँ कहलाती हो। आज कायोत्सर्ग कर लेना, कि मैं अपने जीवन में जैसे चींटी की रक्षा करती हूँ एकेन्द्रिय जीव की रक्षा करती हूँ, वैसे-ही मनुष्य की भी रक्षा करूँगी। किसी का वध तो करूँगा ही नहीं, अपितु अपने मुख से किसी को बदनाम भी नहीं करूँगा। इतना नियम ले सकते हो क्या कि अपने मुख से किसी को बदनाम नहीं करेंगे? वध करना हिंसा है तो बदनाम करना घोर हिंसा है। यदि आपने अणुव्रतों/महाव्रतों को भी धारण कर लिया है, वध करना छोड़ चुके हो, लेकिन बदनाम करना नहीं छोड़ा, तो दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है। जिसने वध करना छोड़ा है, उसको तो चारित्र प्राप्त हुआ है। जो वध करता है, उसको तो चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव होता है और जो बदनाम करता है, उसको दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है। वह मिथ्यादृष्टि होता है।

आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि वह देवों का देव मेरे हृदय में विराजमान रहे। कैसा देव? ज्ञानी! अस्त्रधारी, शस्त्रधारी, लोटाधारी? ऐसा देव नहीं। जो मोक्षमार्ग के प्रतिपादक हैं, जो जन्म-मरण से रहित हो चुके हैं, जो तीनों लोकों का अवलोकन करनेवाले हैं, वे देव हैं। अब जिनको अपने पीछे का ही ज्ञान नहीं है, उनको क्या सर्वज्ञ कहें? शिष्य ने कहा- भगवन्! स्वर्ग, मोक्ष कहाँ है? गुरु कहता है कि मुझे इसको जानने से क्या लाभ? किसी ने प्रश्न किया तो उसको

डाँट-फटकार कर बिठा देना, यह शंका का समाधान नहीं है। सीधी-सीधी कहो, 'बेटा! मेरे से बनता नहीं है। नाथपुत्र के पास जाओ, महावीर से पूछो, वे त्रैकालिक सर्वज्ञ हैं, वही बता पायेंगे।' विश्व में सुमेरु छोटा हो जाये, पर नाक बड़ी होती है। महाराज! सुमेरु को चाहे चावल बराबर बना दो, परन्तु मेरी नाक की रक्षा करना। वसु ने क्या किया, पर्वत ने क्या किया? नाक के पीछे सत्य को झूठ कह दिया और झूठ को सत्य कह दिया।

'नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो।' यह आगमप्रमाण है। इसलिए ज्ञानी! सत्य को सत्य ही रहने देना। सत्य को असत्य करने का प्रयास मत करना। क्योंकि कषाय की सीमा है, अड़तालीस मिनिट ही रहती है। वह अनन्तानुबंधी क्रोध से मान में जाता, मान से माया में आता, माया से लोभ में आता, लेकिन एक समय तो अड़तालीस मिनिट। भैया! विश्वास रखना जीवन में, दूसरों को तो नहीं सुधार सकते। अपन को समाधि करना है तो अपने हृदय से और जो मुमुक्षु जीव हों उनसे कह देना कि जीवन में यदि समाधि करना चाहते हो तो अड़तालीस मिनट अपनी रक्षा कर लो, तो काम बन जायेगा। कोई भी कषाय का उद्रेक आता है तो अन्तर्मुहूर्त के अन्दर ठंडा होता है। यदि अन्तर्मुहूर्त अपनी रक्षा कर ली, तो वह बच जायेगा और यदि अन्तर्मुहूर्त रक्षा नहीं कर पाया, तो बेचारा जीवन भर रोयेगा।

उन्माद होता है उन्माद। वह मदिरा मात्र में नहीं होता, बहुत सारी वस्तुओं में होता है। चरणपादुका में भी उन्माद होता है। जैसे मदिरा का मद कुछ समय चलता है, वैसे-ही हर वस्तु में मद होता है। जो वस्तु नयी होती है, उसमें मद आता है। कुछ दिन बाद पुरानी हो जाती है तो उसका मद उतर जाता है। यदि आप नई चरणपादुका भी पहनते हो तो ये नहीं देखते कि कौन आ रहा, कौन जा रहा। अपनी चरणपादुका ही देखते हो। सामने वीतरागी अरहन्त भी दिख जाये, निर्ग्रन्थ भी दिख जाये, पर एक नजर उनमें जरूर डालता है। अमृतचन्द्र स्वामी ने 'तत्त्वार्थसार' ग्रन्थ में लिखा है कि जो व्यक्ति नये-नये उपकरण खरीदता है, उसको अन्तराय कर्म का तीव्र आस्रव होता है। घर में सामग्री होने पर भी सामग्री खरीदता है, उसको अन्तराय कर्म का तीव्र आस्रव-बंध होता है। उसका कारण यही है कि नयी सामग्री में राग ज्यादा होता है। इसलिए अब नहीं खरीदना। जहाँ राग होता है, वहाँ बंध भी होता है।

जो तेरा जीवन है, वह मेरा जीवन नहीं है। वह जीवन जिओ जो वीर प्रभु का जीवन था। जो शरीररहित हैं, कर्मकलंक रहित हैं, वे अशरीरी सिद्धभगवान् हैं। भैया! मुझे कलंक न लगाओ। भैया! इतने अच्छे हो तो तुम बोल कैसे रहे? जो बोलता है, वह कलंकी होता है। जो अकलंक होता है, वह किसी से बोलने नहीं आता कि मुझे कलंक न लगाओ। अकलंक यदि कोई है तो उसका नाम सिद्ध भगवान् है। जगत में जितने भी हैं, सब कर्मकलंक से किसी-

न-किसी रूप में युक्त हैं।

अकलंक शासन जयवंत हो। सिद्ध शासन जयवंत हो। अब बुरा नहीं मानना जब कोई कहे कि तू कलंकी। क्यों? हाथ जोड़ लेना, तू बिलकुल सही बोल रहा है। तू ही बता दे कि निष्कलंक कैसे बनूँ? अब जो है, सो है। उसको कहने की क्या आवश्यकता? कलंकी वही कह सकता है जो कलंकी होगा। सिद्ध भगवान कलंकी होते नहीं तो वे किसी से कहने भी नहीं आते कि तुम कलंकी हो। कहीं जा ही नहीं सकता हूँ, सिद्ध बनूँगा सो सिद्धशिला पर जाऊँगा। जब तक संसारी हूँ, सो संसार में हूँ। तू तनाव नहीं लेना, कोई भगा ही नहीं सकता। कौन किसको बचा पाया, कौन किसको भगा पाया। अपन चिन्ता ही कर पायेंगे, कर कुछ भी नहीं पायेंगे। चले ही जायेंगे। जब जायेंगे-ही-जायेंगे, तो क्यों इसको लेकर जाने की भावना करें? उसे छोड़कर ही जायें।

आज के आचार्यों को यह बात गाँठ में बाँधने की आवश्यकता है, कि कोई भी अपने पद को सिर पर बाँधकर नहीं ले गया, अपना पद शिष्य को सौंपकर गया। बेटा! तुम ही सम्हालो, मैं जा रहा हूँ। क्योंकि निकलंक स्वरूप मेरा है। ये पद आत्मा का धर्म नहीं है। इस पद पर बैठे-बैठे समाधि होनेवाली नहीं है। जो पीछे दिख रहा है, वह कुछ नहीं है। पाटे पर पाटा चिपका है। व्यवहार से मैं उस पर बैठा हूँ, निश्चय से मैं तो मैं हूँ। 'होता स्वयं जगत परिणाम।' हे ज्ञानी! जब तक आचार्य पद नहीं छोड़ा जायेगा, समाधि ही नहीं होगी, निर्वाण तो बहुत दूर है। वे ज्ञानसागर महाराज जयवंत हों, उनको नमोऽस्तु कर लो। आपने भारतभूमि को एक ऐसा श्रमण प्रदान किया है जो सारे भारत में 'नमोऽस्तु शासन' को जयवंत कर रहा है। ज्ञानियो! यथार्थ मानकर चलना, आचार्य ज्ञानसागरजी ने जो साहितय का सृजन किया है, वह कालिदास की काव्यकला से अधिक महत्त्वपूर्ण है। मंदिर आदि का निर्माण तो कोई भी करा सकता है, लेकिन समाधि का निर्माण करनेवाला निर्ग्रन्थ योगी होता है। ज्ञानसागरजी ने चिंतन किया, आदिसार अंकलीकर ने किया, शांतिसागर ने किया। वैसे-ही जब मेरी भी अंतिम श्वास निकले तो वह देवों के देव मेरे हृदय में विराजमान रहें। मेरा निर्विकल्प भाव से सल्लेखना मरण हो। किस सूत्र के साथ?

"आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।"

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---XXX---

विमुक्ति -मार्ग-प्रतिपादको यो, यो जन्म-मृत्यु-व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोक-लोकी विकलोऽकलङ्कः, स देव-देवो हृदये ममास्ताम्।।15।।

अन्वयार्थ :- (यः) जो (विमुक्ति-मार्ग-प्रपिादकः) मोक्षमार्ग का प्रतिपादक है (यः) जो (जन्म-मृत्यु-व्यसनात्) जन्ममरणादि दुःखों से (विमुक्त :) रहित है (यः) जो (त्रिलोक-लोकी) तीनों लोकों का अवलोकन करता है, (विकलः) शरीररहित है, (अकलङ्कः) कलंकरहित है, (स देवदेवः) वह देवों का देव, (मम) मेरे (हृदय) हृदय में (आस्ताम्) विराजमान रहे।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी सहजस्वरूप का व्याख्यान करके समझा रहे हैं। ऐसे परमेश्वर धन्य हैं, जिन्होंने अपने सम्पूर्ण कर्मों का नाश किया है, अकलंक हैं। वो जननी कितनी धन्य होगी जिसने अपने गर्भ में तीर्थंकर बालक को रखा हो। यही कारण है कि जिनालय में प्रवेश करते ही सबसे पहले देहरी का स्पर्श करते हैं। जब जिनबिम्ब के नियोग से मंदिर की देहरी पुज रही है, तो जिस माँ ने जिनबालक को गर्भ में रखा हो, देवों ने आकर उस माँ का सम्मान किया, इसमें क्या आश्चर्य है? राग/मोह के आवेश में जनक-जननी को थोड़ा विकल्प तो होता है, लेकिन ज्ञानी! वही बालक जब मोह छोड़ कर जाता है तो माता-पिता कहते हैं कि अरे! मेरा कामपुरुषार्थ भी कितना महान हुआ कि सारे विश्व को धर्म का मार्ग दे रहा है। जिनकी सन्तानें मदिरालय की ओर जा रही हों, वैश्यालय की ओर जा रही हों, उन माता-पिता से पूछना कि तुमने कामपुरुषार्थ करते हुये भी खोटे ही परिणाम किये हैं, उसका परिणाम ये है। आपने काम-पुरुषार्थ को सन्तान को जन्म देने के लिये नहीं किया, अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये किया है। जिसने कामपुरुषार्थ को भी भगवान् का नाम लेकर किया है और सनातन धर्म की रक्षा के लिये किया है, उसकी सन्तान तीर्थंकर महावीर जैसे को जन्म देती है, महायोगियों के जैसी होती है। धर्मात्मा जीव की संतान भी धर्मभूत होती है। ये पूर्व की तपस्या है। जिसके कुल में तीर्थंकर हो, कामदेव हो, चक्रवर्ती हो, गणधर हो, कितना पुण्यात्मा कुल होगा? तीर्थंकर ऋषभदेव से पूछना, आप जिस कुल में जन्में हो, सारे-के-सारे पुण्यात्मा इकट्ठे हो गये।

जिस कुल में स्वयं तीर्थंकर, एक भाई नारायण, एक भैया बलभद्र एवं उसी कुल में कामदेव, ज्ञानियो! ऐसे-ऐसे महापुरुष हुये हों, वह धन्य हैं। ऐसा मत मानना ये सब समझौता

करके आये थे। पर ध्रुव सत्य है कि समझौता करके ही आये थे। बाहर से समझौता नहीं दिख रहा है, परन्तु यह यथार्थ मानना कि इन सारे जीवों ने पूर्व में एकसाथ पुण्य किया था। वह समझौता यहाँ काम में आया है कि एकसाथ सभी भाई पुरुष हुये हैं। आप भी यह भावना लाना। यदि अपन सभी भी समझौता करके आये हैं, तभी तो ऐसे खोटे काल में धूप की तपन में बैठ करके एकसाथ जिनवाणी सुन रहे हैं, ये नियम से समझौता करके आये हैं। ये पूर्व का समझौता है कि कौन पुरुष किस नगर में जन्मा, कौन किसका संबंधी था। संबंधी 'संबंधी' रह गये और यहाँ आकर सब समधी बन गये। एवं भूतनय से जब जिनवाणी सुनते हैं, तब सब की धी समधी होती है, तो ये सब समधी हो जाते हैं।

ज्ञानियो! जब तुम किन्हीं वैभवशालियों को देखते हो तो मन में भाव लाते हो कि मेरे घर में भी ऐसी सम्पत्ति हो। ऐसा कोई ज्ञानी नहीं होगा जो अपने घर में सम्पदा को बुलाना नहीं चाहता होगा। तुम्हारे मन में भाव आता है कि मेरे घर में सम्पत्ति होना चाहिए। जब आप विद्यासागर, विरागसागर जैसे मुनियों को निहारते हो और उनके नाम को लेकर प्रसन्न होते हो, उनके माता-पिता को भी आप सम्मान दे देते हो, तो अपने मन में भी ऐसा भाव क्यों नहीं आता है कि भगवन्! एक बेटा घर में भी ऐसा हो जो मेरे कुल को भी और नमोऽस्तु शासन को भी जयवंत करे। मैं भी मुस्कराऊँगी। परिचय मेरा ये नहीं होगा कि मैं अमुकचन्द की माँ हूँ, पिता हूँ। फिर तेरा परिचय होगा मैं अमुक सागर का पिता हूँ। पूछना प्रबुद्धसागर के पिता से, कैसा लगता है? ज्ञानी! दानी जब पहली बार मिला, तो क्या परिचय दिया? मेरी बहिनें आर्यिका हैं और मेरी बिटिया भी ब्रह्मचारिणी है। कितने गद्गद भाव से तू परिचय दे रहा था। हे ज्ञानी! जब संयमी जीव का परिचय देने में इतना आनन्द आता है, जब संयमी बनकर स्वयं का परिचय देगा तब कितना आनन्द आयेगा? जिस घर में, जिस कुल में, जिस नगर में एक संयमी हो जाता है, उस नगर का गौरव हो जाता है। ये पूर्व के तपस्वियों का संयोग है। वो भी एक पुण्य था। उन माता-पिता को निहार लो, क्या सोचते होंगे? जिसके गर्भ में आते ही सबके घर में उपद्रव प्रारम्भ हो चुके थे। जिसके गर्भ में आते ही माँ को दोहला प्रारम्भ हो गया कि नंगी तलवार में चेहरा देखूँ। अब कल्पना करो, वो संतान कैसी होगी? जिसकी माँ का मन कह रहा है कि मैं अपने पति के वक्षस्थल से रक्तपान कर लूँ। सुनते जाइये, यदि जिनवाणी सुनने मिल रही है तो उसका पान करें मन से। पत्नी ये सोचे कि मैं अपने पति के सीने से लगकर रक्तपान कर लूँ, ये पत्नी का दोष नहीं था। अग्नि नीचे तपती है, पर तवे पर हाथ रखोगे तो जल जाओगे। जबकि तवा तो अग्नि नहीं है, तवे के नीचे अग्नि है। जिस पत्नी ने भोजन करवाया हो, जिस पत्नी ने आपको शरीर सौंप दिया हो, वो पत्नी ये कहे कि स्वामी! आपके वक्षस्थल से लगकर

रक्तपान कर लूँ? ज्ञानी! शत्रुता उस जीव में थी, पत्नी में नहीं थी। पर शत्रुपरिणामी के नियोग से माँ के परिणाम भी कलुषित हो रहे हैं। एक तीर्थंकर की माँ, जब तीर्थंकर बालक गर्भ में आता है तो उसकी बुद्धि बढ़ जाती है, विवेक बढ़ जाता है। प्राणिमात्र के प्रति करुणा की बुद्धि आती है। अभय कुमार जब गर्भ में आया, तो उसकी माँ को दोहला हुआ। अपने पति श्रेणिक से कहती है 'स्वामी! कैदखाने में जितने कैदी हों, सबको छोड़ दिया जाय।' प्रशस्त परिणाम। माँ? किसी से पूछने नहीं जाना कि मेरा बेटा भविष्य में क्या होगा? वो तुझे ही मालूम है। जब वह गर्भ में था, तब तेरे परिणाम क्या थे?

उल्लेख आया है कि जब आचार्य विमलसागर जी अपनी माँ के गर्भ में आये, तो उनकी माँ को दोहला हुआ कि सोनागिर में विराजे तीनलोक के नाथ चन्द्रप्रभ स्वामी की वन्दना करूँ। और नियोग देखो, माँ वन्दना करने आयी और सोनागिर में ही जन्म हो गया। नंग-अनंग की प्रतिमाओं को देखकर आज मुसकराते हैं, ये सब उनका ही आशीर्वाद है। नियोग देखो, निमित-नैमित्तिक व्यवस्था देखो, पुण्यात्मा जीव आता है तो दोहला हुआ कि सारे कैदियों को मुक्त कर दो। और वहीं कुणिक, श्रेणिक की सन्तान, चेलनी के गर्भ में आया तो वह कह रही है, 'स्वामी? कौन-सा अभागा जीव मेरे गर्भ में पल रहा है कि आपके प्रति मेरे ऐसे परिणाम हो रहे हैं? अपने गुरु के प्रति, अपने प्रभु के प्रति, अपने पति के प्रति जिस समय अशुभ परिणाम आ रहे हों, समझ लेना कि मेरा तीव्र पापकर्म का उदय चल रहा है। ऐसा होता है, जिन भगवान् की रोज पूजा करता है, ऐसा तीव्र पापकर्म का ही उदय आता है कि भगवान् की प्रतिभा के प्रति भी अशुभ भाव आने लगते हैं। बस, उसी समय समझ लेना चाहिये कि मेरी खोटी गति का बंध हो गया है। जिन गुरु के पादमूल में तुमने सबकुछ प्राप्त किया हो, उन गुरु के प्रति अशुभ भाव आ जाये। जिस पति ने अपना जीवन दिया हो उस पति के प्रति अशुभ भाव आ रहे हैं। इसका तात्पर्य समझना कि अशुभ उदय आ रहा है। जब निमित्त कुत्सित हो जाता है, तब नैमित्तिक भी कुत्सित हो जाता है।

जिसके घर में शालिधान की खीर बनी हो, फिर भी वह कहे कि आज तो बाजरा की महेरी खाने के भाव हो रहे हैं, कोदों खाने के भाव हो रहे हैं, बहू समझदार होगी तो समझ जायेगी कि मेरे ससुर के भाव आज क्षुद्र धान्य खाने के हो रहे हैं। लगता है इनका पुण्य क्षीण हो ही चुका है। ज्ञानी! पुण्य उठ चुका है, इसलिए सुन्दर-से-सुन्दर निमित्त मिल रहे हैं, देव-शास्त्र गुरु का सान्निध्य मिल रहा है, चौबीस घंटे जिनालय के सामने रहता हूँ, तब भी दर्शन के भाव नहीं आ रहे हैं, ज्ञानी? तेरा भव बिगड़ चुका है। बिगड़े होने पर भी जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जा रही है और उसके परिणाम पवित्र होते जा रहे हैं, ध्यान रखना, पुण्य बढ़ रहा है। ये सारी

बातें किसी से पूछने की नहीं हैं। अपने आप में लगाते जाना। यदि पुण्य का द्रव्य तुम्हारे पास है, कोटि-कोटि उपसर्ग आ जायेंगे तब भी तुम्हारा बालबाँका नहीं होगा। ये विकल्प साधु के अन्दर नहीं आना चाहिये कि इसी स्थल में रहूँगा।

ये विशाल-विशाल मंदिर इतिहास बता रहे हैं कि हमारे बुजुर्ग पुण्यात्मा हुये हैं। यदि भौतिकता में लगाया होता द्रव्य, तो उसे कौन देखता? शिवपुरी के पास कोलारस है। वहाँ विशाल-विशाल प्रतिमायें हैं। मन में भाव आया कि हमारे श्रावकों ने बुजुर्गों ने धन का दुरुपयोग नहीं किया। धन को ऐसे शाश्वत बनाकर रखा कि आज ये जिनमंदिर दिखाई दे रहे हैं। 'साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्' साधन से साध्य का ज्ञान 'अनुमान' होता है। जब इतने विशाल जिन-बिम्ब स्थापित करके गये हैं। ये जिन-बिम्ब की स्थापना मात्र नहीं हैं, ये जिनशासन की स्थापना है। जिसने एक प्रतिमा को विराजमान किया है, जितने हजार वर्ष वह प्रतिमा रहेगी, उतने हजार वर्ष वह नमोऽस्तु शब्द गूँजेगा और नमोऽस्तु शासन, जिनशासन जयवंत रहेगा। इसलिए अहो श्रावको! आप ये सोचते हो कि मैंने संतान को जन्म दे दिया है, इसलिए मेरा नाम बचेगा, लेकिन ज्ञानी! विश्वास रखो 'एक लख पूत सवा लख नाती, रावण घर दिया न बाती।' संतान नहीं बचेगी, हम नहीं बचेंगे। कुन्दकुन्द स्वामी इतने बड़े आचार्य हुए तो कोई तो उनका शिष्य होगा ना? शिष्य नहीं दिख रहे हैं। शिष्यों से कुन्दकुन्द का नाम दिखाई नहीं दे रहा है। हे कुन्दकुन्द! शिष्य तो आपने दिये होंगे, उनका कल्याण हो गया, वे चले गए। आप हमें साहित्य देकर गए हो। जिससे जगत का हित हो, उसका नाम साहित्य है। और जिस साहित्य को पढ़ करके राग-द्वेष की बृद्धि हो, कामादिक विकार सताते हों, कलुषित परिणाम होते हों, विभ्रम होता हो, उसका नाम साहित्य नहीं, शस्त्र होता है। जिस ग्रंथ के पढ़ने से वैराग्य हो, जिस ग्रंथ के पढ़ने से चारित्र की बृद्धि हो, विशुद्धि बढ़े, आत्मा की शुद्धि हो, उसका नाम साहित्य है। साहित्य = स+आ+हित्य जो प्राणिमात्र की हितता अर्थात् हितभाव करनेवाला हो, वही साहित्य 'साहित्य' है। जिसमें जीव का कल्याण निहित नहीं है, वो सत् शास्त्र नहीं है, वो है शस्त्र। कोलारस के वे बिम्ब, आज अपन मुस्कुराकर वन्दना कर रहे हैं और कह रहे हैं कि हमारे आचार्यों ने, श्रावकों ने कैसे जिनबिम्ब की स्थापना की है। ऐसा कोई श्रावक का घर नहीं होना चाहिये जिस घर में उचित स्थान पर जिनवाणी विराजमान न हो। आगम ग्रंथ भी घर में होना चाहिए, परन्तु उचित स्थान पर। शयनागार में नहीं रखना। बैठक कक्ष है, शयनागार है, रसोईघर है, तो ज्ञानी! एक शांतिशाला एक और बना ले, जिसमें बैठकर शान्ति से भगवान् के नाम ले सके। उस कक्ष में कुछ नहीं होना चाहिये, मात्र वीतरागी जिनवाणी विराजमान हो। बैठकर स्वाध्याय करो। एक कक्ष ऐसा बनाकर रखो, अंतिम श्वास

आ जाये तब कहीं कोई सद्गुरु न मिल पाये, तो कम-से-कम श्रुत, साहित्य के सामने, जिनवाणी के सामने प्राण छोड़े। तब भी तेरा कल्याण हो जायेगा।

नगर में बड़े-बड़े अनुष्ठान तो बहुत होते हैं, लेकिन भैया! जिन गरीबों को कोई पूछता नहीं है, उनके नाम भी बीच-बीच में बुला लिया करो। उनको लगना चाहिए कि दुनियाँ के द्वार पर भेद हो सकता है, परन्तु पंचपरमेष्ठी के द्वार पर भेद नहीं हो सकता।' "चत्तारि सरणं पव्वज्जामि" चार की शरण जगत् के प्राणिमात्र को है। यदि तिर्यञ्च तक भी आ जाये तो उसको भी शरण है। क्या भगवान् के समवसरण में तिर्यञ्चों को कोठा नहीं होता? जब तीर्थंकर के समवसरण में तियञ्च हो सकते हैं, तो हमारे जो मध्यम व गरीब घर के श्रावक हैं वे पीछे आ के पीछे से ही चले जाते हैं। हर नगर में दस-बारह चेहरे ऐसे होते हैं, वे ही दिखाई देते हैं। ऐसे जो व्यक्ति हीनभावना में चले जाते हैं, वे कहीं मंदिर भी आयें तो तब आते हैं जब कोई न हो। ना अपन कोई को दिखें, ना कोई विकल्प आये। प्रतिदिन जहाँ मंदिरों की समितियाँ आती हैं, वहाँ ऐसे लोगों को भी लाओ ताकि उन्हें लगे कि मैं भी कुछ हूँ। नहीं-तो मंदिर का पुजारी यही सोचता है कि मैं तो समाज का नौकर हूँ।

ऐसे-ऐसे जिनबिम्ब हैं जिनमें अन्ध-घोटक न्याय लगता है। 'महाराजश्री! इतने सारे जिनबिम्ब हो जायेंगे तो इनकी आराधना कौन करेगा?' भैया! विश्वास रखो, यहाँ जबलपुर में हजारों प्रतिमायें भी हों और एक जिनबिम्ब की प्रतिमा निकल पड़े तो पूरा पांडाल खाली हो जायेगा। वो श्रीजी की वन्दना करने जाएगा। कुछ श्रद्धायें दिखती हैं, कुछ अन्दर रखी रहती। वो ऐसे होती हैं जैसे आपके घरों में बहुत सारी सामग्री रखी रहती है, आपको कोई विकल्प नहीं है। यदि कोई कहे कि मैं ये ले जाऊँ, तो कहोगे कि नहीं भैया! ऐसे श्रद्धायें होती हैं। जबलपुर नगर में श्री जिनमंदिर हनुमानताल में है। कितनी वेदियाँ हैं? कितने श्रीजी हैं? यदि कोई चला जाय कि हमारे मंदिर में प्राचीन प्रतिमा नहीं है, दे दो, तो वह समिति हाथ जोड़ लेगी। हमारे बुजुर्गों ने विराजमान किये हैं, आपको दर्शन करना है सो कर लो, लेकिन हम अपने मंदिर के भगवान् आपको दे नहीं सकते। ये अन्दर की आस्था है। ऐसे ही विश्वास रखना, कितनी ही कोटि-कोटि प्रतिमाएँ विराजमान हो जायेंगी, लेकिन परमात्मा को पूजा की आवश्यकता नहीं है। परमात्मा को पूजनेवाले नियम से मिलेंगे।

जिनको अपने मन में नाम चलने का भाव आता हो, यश व वंश चलने का भाव आता हो, तो ये वंश तो मिल जाएगा। आपको यदि नाम का ही भाव है, तो एक अरहन्त की प्रतिमा विराजमान करके जाओ। इस पर्याय में वंश बचे या न बचे, परन्तु वह प्रतिमा बचेगी और जब तक वह प्रतिमा रहेगी, अंधघोटक न्याय चलेगा। कोटि-कोटि जीव वन्दना करके जायेंगे। यदि

लोगों ने मिथ्यात्व को छोड़ दिया, सम्यक् प्राप्त कर लिया, तो तेरा प्रतिमा का स्थापना करना कितना महान हो गया। यदि आपको विश्वास न हो तो भेड़ाघाट के शांतिनाथ स्वामी से मिलो। एक क्षत्रिय युवा, जिसने शान्तिनाथ स्वामी की वन्दना की और वह क्षुल्लक ध्यानसागर हो गया। लोगों को ये संदेश देकर जाना कि जो कौड़ी से रहित होता है, वह दरिद्री नहीं कहलाता है। जो दूसरे को देखकर प्रशंसा करना नहीं जानता, वह दरिद्री होता है। धन तो परवस्तु है। मन विशुद्ध है, अंतरंग में साता चल रही है, तो सम्पत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है और अंतरंग में असाता चल रही है, तो भी सम्पत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। ओ हो ! बड़े-बड़े सम्पत्तिशाली सम्पत्ति के राग में ऊपर चले गए। सम्पत्ति ही उनको ऊपर भेज गई।

ध्यान दो, जब तक ये श्वासें चल रही हैं, नियोग बने तो अपनी इन आँखों से अपने ही द्वारा स्थापित अरहन्त बिम्ब की वन्दना करके जाना। आपका देश भारतदेश है। आपकी मातृभूमि, पितृभूति, तीर्थभूमि का नाम भारत है। देश-विदेश के संग्रहालयों को देखकर आओ। लंदन जैसे स्थानों पर यदि म्यूजियम से तीर्थंकर प्रतिमायें हटा दी जायें तो सारे संग्रहालय खाली हो जायेंगे। अरहन्त की सत्ता को स्थापित करनेवाले पुरातत्त्व व साहित्य हैं। जैनाचार्य यदि साहित्य न लिखते, तो इस श्रीमंडप पर आप जिनवाणी नहीं सुन पाते। आज ये जिनबिम्ब स्थापित न होते तो तुम किसको नमोऽस्तु बोलते? ये जिनबिम्ब है, जिनवाणी है, तो निर्ग्रन्थ दिख रहे हैं। इन दो का अभाव यदि हो जाता तो तीसरे का अभाव तो अपने आप हो जाता। पुराने लोगों ने स्थापित किये, सो आज मुस्कुरा रहे हो। पिसनहारी मढ़िया जिसने स्थापित किया होगा, वो तो गया। सेठ पाहिल से पूछो, हे सेठ पाहिल! आपने खजुराहो में जिनबिम्बों की स्थापना करके विश्व को वीतरागता का ज्ञान कराया। गोम्मटेश्वर में चामुण्डराय से पूछो कि तुमने ऐसे बाहुबली की स्थापना की है। भारत के निर्ग्रन्थ मुनि कहीं पहुँचें या न पहुँचें, लेकिन एक क्षेत्र ऐसा है जहाँ भारत के सारे मुनि इकट्ठे हो लेते हैं। जैनियों का राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कोई भी कार्यक्रम होता है तो उसका नाम है गोमटेश्वर का महामस्तकाभिषेक। दिगम्बर समाज में आनन्द की अनुभूति होना चाहिये। दक्षिण में जिनशासन को बेटा बाहुबली जयवन्त कर रहा है और मध्यभारत में पिता आदिनाथ चमक रहे हैं। बावनगजा चूलगिरि में भगवान् आदिनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान है। यह मध्यप्रदेश का अहोभाग्य है। ग्वालियर गोपाचल में भगवान् सुपार्श्वनाथ स्वामी विराजमान हैं। यह तोमरवंश के खजांची ने स्थापित की है। अहो! सिद्धभूमि है वह। धन तो धन है। उसी का धन 'धन' है जो, जिसके द्वारा धर्म में लगे। नहीं तो क्या है? ''खाया खोया बह गया।''

पूत सपूत तो क्यों धन संचय?

पूत कपूत तो क्यों धन संचय?

यदि अपनी शक्ति को निंदा व प्रपंचों से अलग कर नमोऽस्तु शासन की उन्नति में लगा देंगे तो पंचमकाल के अन्त तक श्री जिनशासन ऐसे ही जयवंत रहेगा। 'जब तक है अम्बर, तब तक रहेगा दिगम्बर।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।।'

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

अहो मुमुक्षु!
धर्म
अहिंसा है
मंगलोत्तम
शाखाभूत।
देव भी
जिसे
करते हैं
नमन।
ऐसे
उत्कृष्ट धर्म को
सदा
स्वीकार करो
निज का
उद्धार करो।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
पर पीड़ा को भी
पीड़ा जानो
पर की
आत्मा को
कष्ट देना
धर्म नहीं।
धर्म
अहिंसा है
वही सत्य है
वही शिव है
अहिंसा ही
परमब्रह्म है।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

क्रोडीकृताऽशेषशरीरि-वर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः, स देव-देवो हृदये ममास्ताम्।।16।।

अन्वयार्थ : (क्रोडीकृताऽशेष शरीरिवर्गाः) समस्त प्राणि-वर्ग को व्याप्त करने वाले (रागादयः) रागादिक (दोषाः) दोष (यस्य) जिसके (न सन्ति) नहीं हैं (सः) वह (निरिन्द्रियः) अतीन्द्रिय (ज्ञानमयः) ज्ञानमयी (अनपायः) अविनाशी (देवदेवः) देवों का देव (मम) मेरे (हृदये) हृदय में (आस्ताम्) विराजमान रहे।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी 'भावना द्वात्रिंशतिका' में ध्रुवधाम ज्ञायकस्वभावी भगवानात्मा के अखंड स्वभाव का व्याख्यान कर रहे हैं। अज्ञ जीव ने वीतरागवाणी को न समझ कर तात्कालीक सुख का मोह बाँधकर रखा है। जहाँ ज्ञानियों को स्वानुभूति होती थी, वहाँ तेरा लक्ष्य ही नहीं गया। राग की मिठाई (मार्ग) को छोड़ कर वीतराग के मार्ग पर चल पड़े। वीतराग तपोधनों का मार्ग ही सत्य मार्ग है, परन्तु सत्य मार्ग पर चलना अत्यंत दुष्कर होता है, हर जीव की पहुँच नहीं है। भैया! इतना ध्यान रखना कि पहुँच पाये या न पहुँच पाये, लेकिन श्रद्धा को बनाकर चलना, आस्था को बनाकर चलना। यदि सत्यमार्ग पर आस्था बनी रही, तो किसी-न-किसी पर्याय में ऐसा पुरुषार्थ जागृत होगा जो ध्रुवधाम अवस्था को प्राप्त करके रहेगा, अकलंक अवस्था को प्राप्त करेगा, निष्कलंक अवस्था को प्राप्त करेगा। श्रुत की परंपरा को अक्षुण्ण रखने की धारा तो श्रुत की आराधना और आत्मसाधना है। ललक होना चाहिए, जिज्ञासा होना चाहिए, उत्साहशक्ति चाहिए। आपको ज्ञात है- हमने कल कहा था कि घर-घर में जिनवाणी विराजमान कर लें। ऐसा कोई घर न हो जिसमें वीतरागवाणी विराजमान न हो। जिनके घरों में अस्त्र-शस्त्र रखे हों उनको उठाकर अलग कर देना। कारण पूछो? इतना जोश, इतनी शक्ति आपके अन्दर नहीं है कि उसका वार आप झेल पाओ। किसी से क्लेश होगा तो घर के ऊपर ही वह न चलेगा। हे भरत! जब आप-जैसे महापुरुष ने अपना चक्र सगे भैया पर चला दिया तो अन्य की क्या बात? भैया! मेरी बात मानना, लोक में कहावत है कि ये जैन हैं, जब लड़ाई होगी तो गड़ी ईंट उखाड़ेंगे। देखो, जो बातें लोक में चलती हैं, उनके इतिहास में तत्त्व निहित होता है। गड़ी ईंट उखाड़ने में क्या रहस्य है? जब तक ईंट उखाड़ेंगे, तब तक कषाय चली जायेगी और जिसको मारनेवाला था, वह भाग जायेगा, तो अहिंसा धर्म का पालन हो जायेगा। ज्ञानी! क्या रहस्य था गड़ी ईंट उखाड़ने में? उखाड़ने में समय लगेगा और कषाय काल

अन्तर्मुहूर्त है। आपकी पहचान कितनी विशाल थी, लोक में व्याप्त हो गई। भैया! गड़ी ईंट उखाड़नेवाले अपने घरों में अस्त्र-शस्त्र नहीं रखते। यह यथार्थ मानकर चलना। यह जो तुम्हारा अस्त्र होगा, परिवार पर ही वार कर पायेगा, दुनियाँ में कुछ नहीं कर पायेगा। इसलिए श्रेष्ठ मार्ग तो यह है कि अस्त्र-शस्त्रों को तो निकाल कर पृथक् कर देना और शास्त्र विराजमान कर देना। ये मत सोचना कि मेरे घर में पढ़नेवाला कोई नहीं है, इनका क्या होगा?

भैया! मंदिर इस बात को सोचकर नहीं बनाया जाता है कि आज समाज में पच्चीस घर हैं। यदि विवेकी समाज होती है तो पचास साल आगे का सोचकर मंदिर बनायेगी। पच्चीस से आगे घर बढ़ेंगे तो मंदिर में स्थान मिलना चाहिए। हो सकता है कि तुम्हारे वंश में कोई ऐसा महापुरुष जन्म ले ले जो तुम्हारे घर में स्थापित ग्रंथों का स्वाध्याय करके निर्ग्रन्थ बन जाये। मेरे कहने का अन्दर का रहस्य यह है कि मंदिरों की जिनवाणी निश्चित स्थान पर है। हे ज्ञानी! जब कभी संस्कृति पर उपसर्ग होता है तो सबसे पहले लोग साहित्य और पुरातत्व पर आँख उठाते हैं। जिस दर्शन का साहित्य नष्ट हो जाता है, उसकी पूरी कुंडली ही समाप्त हो जाती है, पूरा इतिहास ही नष्ट हो जाता है। आज आपको ऐसे सुनानेवाले लोग भी मिल जायेंगे जो ग्रंथों को बाहर निकालने को कहेंगे। उनका सोच विस्तीर्ण नहीं है, वो समझ नहीं पा रहे हैं। घरों के ग्रंथ मंदिर मत भेजिये। हाँ, मंदिर के ग्रंथ घरों में भले ही मत ले जाइये। अपने स्वतंत्र खरीद कर रखो। हर भवन में एक पुस्तकालय होनी चाहिए। अन्दर का रहस्य मैं अभी बताता हूँ। हे ज्ञानी! धर्म-आयतन निश्चित है और वो सबके सामने हैं। यदि कभी संस्कृति पर उपसर्ग होता है और यदि जिनालयों और ग्रंथालयों का सारा साहित्य नष्ट हो गया, तो जो जिनवाणी घरों में है, वह बाहर आकर जिनशासन को जयवंत करेगी। यही कारण है घर में पुस्तकालय बनाने का।

छः माह तक हमारे ग्रंथों की होलियाँ जलाई गईं थी। अब वे ग्रंथ कहाँ से आये? हमारे सुधी श्रावकों ने जो ग्रंथ घरों में सुरक्षित रखे थे, उन ग्रंथों से हमारे पास पुनः ग्रंथ आये हैं। इसलिए माँ! जैसे तू पचास साड़ियाँ सुरक्षित रखती है, इसी प्रकार प्रतिज्ञा कर लो कि इस पर्याय में जब तक श्वास रहेगी, तब तक अपने घर में एक जिनवाणी सुरक्षित करके रखना। एक ग्वाला, जिसने जिनवाणी की सुरक्षा की थी, उससे लिखते नहीं बनता था, परन्तु उसे इतना मालूम था कि यह सद्ग्रंथ है। उसने कोटर से उठा करके वीतरागी पद्मनंदि नामक मुनिराज को भेंट किया। ग्रंथ के दान के प्रभाव से वही ग्वाला कौंड-कौड (कुन्दकुन्द) बना। श्रुत में निबन्धन है कि जो श्रुतदान देता है वह भविष्य का ज्ञानी, श्रुतकेवली और केवली भगवान्

बनता है। साहित्य की रक्षा करो, जिनवाणी की रक्षा करो। प्रज्ञा तुम्हारी प्रशस्त है, आपसे कुछ बनता है तो ज्ञानी! जिनवाणी का प्रसार करो। भैया! स्वाध्याय कभी बन्द मत कर देना। समाधि की अंतिम श्वास में कोई काम आयेगा तो वह भगवती जिनवाणी काम आयेगी। स्वाध्याय कभी बन्द मत कर देना। इस पंचम काल में परिणामों को सुरक्षित करनेवाली कोई विद्या है तो वह स्वाध्याय है। बहुत खोटा काल है। यदि आपका आपस में धर्म-वात्सल्य नष्ट होने लग जाये, तो आप धर्म में कैसे स्थित रह पाओगे? कोई तो आलम्बन चाहिये।

एक माँ से जन्मे दो बेटे, एक ही आँगन में खेलते हैं, एक ही कटोरे में खीर खाते देखे गये। वो बड़े होने पर उसी आँगन में एक दीवाल खड़ी कर देते हैं। ये आँगन की दीवाल नहीं है, ये तो लांछन है, चिह्न है। ये तो कार्य है, कारण भीतर बैठा हुआ है। ये आँगन की दीवाल कह रही है कि सगे भाइयों के मन के अन्दर बहुत बड़ी दीवाल खड़ी की है, लेकिन माँ के हृदय से पूछना-माँ! क्या देख रही हो? तुझे लग रहा है कि मैंने आँगन में दीवाल खड़ी की है, लेकिन माँ के हृदय से पूछो, माँ का हृदय फूट-फूटकर रो रहा है। अहो! मुझे मालूम नहीं था मेरे लालो कि मेरे अखंड आँगन में दीवाल खड़ी कर दोगे। इस ओर माँ रहेगी तो किसकी होगी, उस ओर माँ रहेगी तो किसकी होगी? ये आँगन की दीवाल नहीं है, माँ के अन्दर दीवार खड़ी है। मेरे लालो! ध्यान से सुनो, ये आपको जन्म देनेवाली माँ नहीं बोल रही है, माँ जिनवाणी बोल रही है। स्वरूप से अखंड भगवान् महावीर की संतानो! महावीर की परंपरा में जीने वालो! यदि आपको जिनशासन में दो मत दिखाई देते हैं तो समझ लेना कि माँ जिनवाणी के आँचल में तूने दीवाल खड़ी की है। माँ जिनवाणी ने तुमको चार आँचलों से दुग्धपान करवाया है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। जन्म देनेवाली माँ ने दो आँचल का पान कराया है, परन्तु माँ जिनवाणी ने चार आँचल पिलाये हैं और चारों को पीकर तूने माँ के बीच में दीवाल खड़ी की है। मेरा पंथ ये है, तेरा पंथ ये है। ये तीर्थंकर की वाणी के पन्थ नहीं हैं, ये अहंकारियों की वाणी के पंथ हैं। जबसे मैंने होश संभाला, तब से जिनवाणी का वाचन किया है। जैसे बच्चों को ये सोच रहता है कि डॉक्टर बनेंगे, इंजीनियर बनेंगे। हर बच्चे के अंदर भाव रहता है कि पढ़-लिखकर क्या करूँगा? भैया! मेरा तो एक ही भाव था कि मुझे पढ़ करके तीर्थंकर के शासन को जयवंत करना है, मुनिराज बनना है। मुझे ऐसे सुन्दर निमित्त भी मिले। जिनके बीच में रहता था, उन्होंने रोका तो, परन्तु बांधा नहीं। रोक भी कौन पायेगा? और फिर एक दिन ऐसा भी आया कि आचार्य विरागसागर के पास सौंपकर चले गये। अब ये मेरे वश का नहीं है, जितनी परीक्षा करनी थी सो कर ली, अब तो आप ही सँभालो। मुझे मालूम था अच्छे से कि रागियों की जीत कभी होती नहीं। देश में वैरागी

पिच्छिधारी कितने हैं? हजार या बारह सौ और विश्व में जनसंख्या कितनी है? लाखों-लाखों पर एक त्यागी होता है। भिखारियों की संख्या करोड़ों पर है और निर्ग्रन्थों की संख्या करोड़ों पर एक है। कितनी महान मुद्रा, कितनी महान चर्या है। ये पूरे विश्व को स्वीकार है कि साधु के नाम पर यदि कोई जीवन्त अवस्था रूप है तो उसका नाम दिगम्बर तपोधन है।

मैं केवल दो ही ग्रंथ पढ़ता था। एक पद्मपुराण और दूसरा आचार्य देशभूषणजी के प्रवचन। पद्मपुराण तो विश्व में एक ऐसा ग्रंथ है कि जिसने एक बार पद्मपुराण पढ़ लिया तो विश्व का महान ज्ञाता बन जाता है। धर्मनीति, राजनीति, काव्यनीति, सारी नीतियाँ-विद्यायें हैं। समाज में कैसे रहना पड़ता है? संकट कैसे सहन करना पड़ते हैं? पद्मपुराण से सीखो। जब सीता का हरण होता है, एक अबला को कैसे संकटों के घेरे में डाला जाता है। लेकिन ज्ञानी! सब कुछ तो सहन कर लिया, परन्तु अपने पति को दोष देना सहन नहीं किया। सेनापति से क्या कह दिया था? सेनापति! ये मेरे कर्म का ही विपाक है, मेरे स्वामी से कह देना- 'मेरे कर्म के विपाक में आप विकल्प नहीं करना। परन्तु जैसे लोक-अपवाद से मुझे छोड़ दिया है, ऐसे वीतराग धर्म को मत छोड़ देना।' फिर भी अपनी चिन्ता नहीं की। सही शक्ति को समझना हो तो 'पद्मपुराण' का स्वाध्याय करो कि हर घड़ियों में कैसे जिया जाता है? नारीपर्याय में कितनी विपत्ति आती है? पुरुष से ज्यादा दुःख सहने की क्षमता यदि किसी में है तो वह नारी है। जब सीता को देखकर सूर्पनखा (चन्द्रनखा) कुपित हुई थी। राम लक्ष्मण पर मोहित हो गई। राम से कहती है कि मुझे स्वीकार करो। धन्य हो उन शीलवन्त नरों को। वे श्रीराम कहते है- मेरी शादी हो चुकी है, मेरी पत्नी सामने बैठी है। आप जाओ, लक्ष्मण से मिलो। लक्ष्मण के पास जाती है। लक्ष्मण ने उस समय कहा - तुझे मालूम होना चाहिए कि मेरे ज्येष्ठ भैया पितातुल्य हें, उनकी आज्ञा के बिना मैं किसी से शादी कर सकता हूँ क्या? जाओ, उनके पास जाओ। वास्तव में न उसकी किसी ने नाक काटी, न कान काटे, परन्तु नाक-कान काटने का तात्पर्य क्या था? अपने यहाँ क्या कहते? कटा कर आ गये। न राम ने स्वीकारा, न लक्ष्मण ने स्वीकारा, बेचारी दोनों तरफ भटक रही थी। ज्ञानी! उसकी कट गई। इसका नाम है नकटी। नाक कट गई यानी इज्जत निकल गई। जब व्यक्ति का काम नहीं बनता तो क्या करता है? अपने बुंदेलखंड में कहावत है- 'खिसियानी बिल्ली खम्बा नोंचे। चन्द्रनखा ने क्या किया? जब उसने देखा कि राम भी मुझे नहीं स्वीकार कर रहे हैं, लक्ष्मण भी नहीं स्वीकार रहे हैं, उसे गुस्सा आया तो वह सीता के पास पहुँची। जगत की लीला विचित्र है जब किसी पर बल नहीं चलता, तब अबला को देखता है।

सीता ने उसको उपदेश दिया था। हे माँ! पूरे पद्मपुराण को यदि न पढ़ सको तो सीता ने सूर्पनखा को जो उपदेश दिया था, उसे सभी नारियों को अवश्य पढ़ना चाहिये। सूर्पनखा को दिया गया उपदेश बड़ा रोमांचकारी था– 'हे बाले! तेरी बुद्धि कहाँ विलय हो गई? नारीपर्याय पराधीन है। माया के प्रसाद से नारी बन गई है। अब माया के पीछे पुनः मायाचारी कर रही है, अपने पति को छोड़कर परपुरुष को देख रही है। इससे बड़ा पाप जगत् में क्या होगा? शील से बड़ा जगत् में शृंगार नहीं। जिस नारी के पास शील का शृंगार नहीं, तो वाह्य शृंगार किस काम का? ये शृंगार शोभा पाता है क्या? सीता के वचन सुनो– हे जड़बुद्धि! तुझे मालूम होना चाहिये कि तू भी एक पिता की पुत्री है, मैं भी एक पिता की पुत्री हूँ। जब से जन्म, तब से दुःख के अतिरिक्त क्या पाया है? जब कन्या का जन्म होता है, उसी दिन से घरों में रोष का जन्म होता है। कन्या का जन्म हो जाये तो कैसा उपहास होता है? आ गई लक्ष्मी? उस जीव ने ऐसा कौन–सा पाप किया था जो उसका उपहास कर रहे हो? बेटे का जन्म होता है तो अलग मान होता है। ऐसा अन्दर से दिखाई देता है भैया। जब से होश सँभाला है, पिता के अधीन रही। सम्बन्ध हो गया तो पति के अधीन रही। जब पति का वियोग हो गया, सो पुत्र के अधीन हो गई। जीवन भर हर अवस्था में पराधीनता–ही–पराधीनता है। इसके बाद भी यदि घर में किसी की मृत्यु होती है तो उसी को रोना पड़ता है। क्या रोने के लिए ही वह स्थान है? घर में कोई काम बिगड़ जाय तो ताने–बाने उन्हीं को मिलते हैं। हे माँ! पुनः आप नारी बनना चाहती हो क्या? बड़ा आनन्द है ना आपकी पर्याय में? यदि नहीं बनना चाहती हो, तो माया को आज यहीं छोड़कर चले जाना। कोटि–कोटि काम बिगड़ रहे हों तो बिगड़ जाने देना, लेकिन माया को यहीं छोड़ देना। ये मत सोचो कि मैं इनके लिए ही कह रहा हूँ। जिनशासन में जो नारी की परिभाषा लिखी है, वो भाव व द्रव्य दोनों रूप है। यदि किसी पुरुष के अन्दर भी ऐसे परिणाम चल रहे हैं मायाचारी के, तो वह द्रव्य से पुरुष है, लेकिन भावों से स्त्री है। अन्तर इतना है कि ये कार्यस्त्री है, ये कारणस्त्री है। ज्ञानी! कुम्भकार के घर में मटका बना हुआ है, चाक पर मिट्टी कारणघट है। इस प्रकार हे मुमुक्षु! जो नारी पर्याय को प्राप्त कर रहे हैं, वो नारीपर्याय का कारणधर्म है। एक ओर कार्यस्त्री हैं, दूसरी ओर कारणस्त्री है।

लोगों ने तो समुद्र को नापने का व तारों को गिनने का प्रयास किया है। जैनदर्शन कहता है कि अभी तुम्हारी गिनती छोटी है। जिनशासन में तारे गिनना बहुत सरल है। जीव के अनन्त भवों के भावों को गिनने की गिनती किसी में है, उसका नाम लब्धिसार, क्षपणासार ग्रंथ है। प्रतिसमय भाव बदलते हैं। समय बहुत सूक्ष्म है। एक समय यानी नेत्र का पलक झपकने में जो काल लगता है, उसमें असंख्यात समय हो जाते हैं। एक समय में सिद्धों के अनन्त गुणे,

अभव्य सिद्धों के अनन्तवें भाग समयप्रबद्धप्रमाण कर्म का आस्रव-बंध हो जाता है। इतने कर्म का आस्रव-बंध होता है।

सेठपुत्र सम्राट हुआ, सम्राट होकर उसका अपहरण हुआ। ये अपहरण आदि की विषमतायें नई नहीं हैं, बहुत पुरानी हैं। अपहरण के बाद उसे जंगल में छोड़ दिया गया। पुण्य के नियोग से उसे वीतराग दिगम्बर मुनिराज मिल गए। कहीं भी चले जाओ, पुण्य तो काम करता है। वे मुनीश्वर अवधिज्ञानी थे। वह मुनिराज को नमस्कार करके निवेदन करता है, हे स्वामी! आप मेरे चेहरे को तो पढ़ ही रहे हो। मैंने ऐसा कौनसा पुण्य किया जो सेठपुत्र होकर सिंहासन पर आसीन हुआ। हे नाथ! ऐसा कौन-सा दुष्कर्म किया जिससे मेरा अपहरण हुआ और जंगल में भटक रहा हूँ। भैया! कर्म-सिद्धान्त में तो दूध-का-दूध और पानी-का-पानी होता है। विश्वास रखना, ग्वाले से कह देना कि तू दूध में नर्मदा का कितना ही पानी मिलाकर लाना, यदि मशीन मेरे पास है तो तेरा कितना दूध कितना पानी है पता चल जायेगा। तू मिला तो सकता है, लेकिन मिला हुआ पिला नहीं सकता, क्योंकि मशीन मेरे पास है। करणानुयोग कहता है, ज्ञानी! तू छुप करके पाप कर तो सकता है, लेकिन पाप के फल को तू पुण्य में बदल नहीं पायेगा। यदि तूने पाप ही किया, पुण्य नहीं किया, तो जब उदयकाल आयेगा तो पाप अलग दिखाई देगा और पुण्य अलग दिखाई देगा। जैसे जब दूध फटता है तो पानी अलग दिखाई देता है, दूध की पर्तें अलग दिखाई देती हैं। वह पूछता है कि मैंने कौन-सा पुण्य किया और कौन-सा पाप किया है? निर्ग्रन्थ तपोधन स्मित-स्मित मुस्कराने लगे और उस भव्य पर करुणा करके कहने लगे- हे वत्स! दोष स्वयं का ही होता है। दोष में सहयोगी निमित्त अनेक हो जाते हैं, लेकिन बंधक उपादान ही होता है। 'बेटे! तू अपनी पूर्व पर्याय में गरीब वणिक था।'

चीख ही पाओगे, चिल्ला ही पाओगे, पर किसी के पुण्य-पाप को बाँट नहीं पाओगे। न पुण्य को बाँटा जाता है, न पाप को बाँटा जाता है। हे कैकई! तुम राम को जंगल तो भिजवा सकती हो, परंतु राम को जंगली नहीं बना सकती हो। आपने भेजा जंगल में था, राम बन गए, सो वे 'राम' बन गए। भैया! आपके पिता भगायें तो भग जाना, परंतु पिता को गाली मत देना। भैया! तुम्हारा बेटा डंडा मार कर घर से भगाये तो प्रेम से छोड़कर चले जाना, लेकिन उसको गाली देकर मत जाना। वो आपको लग ऐसा रहा है कि बेटा भगा रहा है, परंतु ध्रुव सत्य यह है कि हमारा पूर्व का कर्म ही भगा रहा है, वो तो निमित्त मात्र है।

इतना अधीर हो गया वह सम्राट। बोला- हे स्वामी! मुझे शीघ्र बताओ, मैंने कौन-सा दुष्कर्म किया था? जब आप बात सुनोगे ना, तब लगेगा नहीं कि उसने कुछ किया है। आप जब

वणिकपुत्र थे, (यह गुणभद्र स्वामी के जिनदत्त चरित्र से बोल रहा हूँ) बंजी करने जाते थे। बाँध ली हल्दी, सोंफ आदि सामग्री की पुटरिया और गाँव-गाँव घर-घर बेचने जाते थे।

पुणे में पढ़ता बालक जबलपुर का, रात्रि में भोजन नहीं करता था। भोजनालय चलाने वाले ने उसे अलग से बुलाकर दिन में भोजन करा दिया। आप प्रतिज्ञा में दृढ़ रहो, आपका पालन करानेवाले मिलेंगे। ढील मत डालो। वह बंजी करने जाता था, पर धर्म नहीं छोड़ता था। उसका नियम था त्रिकाल सामायिक करने का। छोटा व्यापार अच्छा है क्योंकि धर्म करने को समय मिलता है। उस श्रावक का जैसे-ही सामायिक का समय होता था, सारा काम छोड़कर सामायिक करने बैठ जाता था। एक दिन वह सामग्री लिए जा रहा था, जंगल में मार्ग भटक गया, और उस जगह पहुँच गया जहाँ दिगम्बर मुनिराज मिल गए। वे महाराज मासोपवासी थे और चातुर्मास कर रहे थे। मुनिराज की वंदना करके उसने विचार किया कि अब तो इसी मार्ग से प्रतिदिन निकला करूँगा। भगवान् के दर्शन करूँगा, यहीं सामायिक करूँगा। उनके सामने सामायिक करूँगा तो परिणाम विशुद्ध होंगे। ऐसा विचार करके वहीं से जाने लगा। लेकिन बीच में तेरे भाव क्या हुए ? अब देखो ये तो सहज व्यवस्था है। श्रावक के मन में आता ही है। नहीं आये, ऐसा हो नहीं सकता। हे भगवान्! ऐसे निर्ग्रन्थ, वीतरागी, तपोधन की पारणा मेरे घर में हो जाये तो कितना आनन्द आयेगा? एक दिन का उपवास करके महाराज निकले और जिस घर में पारणा हो जाये, तो श्रावक के भाव देखो कितने गद्गद् होते हैं। आहार तो प्रतिदिन होता है, लेकिन पारणा हो जाये और फिर मासोपवासी मुनि की पारणा। अब समय की बलिहारियाँ और लोक की व्यवस्था तो हर समय रहती है। तब उसके मन में क्या विचार आया? लेकिन मैं गरीब हूँ। पारणा करने बड़े-बड़े सेठ आयेंगे, मुझे कहाँ इन मासोपवासी तपोधन को आहार कराने का मौका मिलेगा? ऐसे भाव मन में आये, तब भी कोई विशेष विकार नहीं आया। नियमित ऐसा प्रतिदिन बंजी करने जाता, प्रतिदिन मुनिराज के सामने सामायिक करता, प्रतिदिन भावना भाता कि इनकी पारणा मेरे घर में हो जाए। पर ध्यान रखना, महाराज से नहीं कहता था। आगे क्या हुआ? उस जीव ने इतना पुण्य का संचय कर लिया कि जिस दिन पारणा थी, महाराज ने उसी नगर में प्रवेश किया, जिस नगर में वह श्रावक था। क्या नियोग बना? पुण्य परिणामों का परिणमन होता है तो भाव मिल जाते हैं। मुनिराज ने नियम लिया कि एक श्रावक हाथ जोड़े खड़ा होगा, वहीं पर पारणा करूँगा। सारे नगर में चर्चा कि मासोपवास की पारणा करने आये हैं। बड़े-बड़े कलश लिए पूरे नगर में लोग पड़गाहन करने खड़े थे। वह सोच रहा था, 'हे भगवान्! मेरे घर कैसे आयेंगे? मैं तो अकेला हूँ।' हे ज्ञानी! जिसका कोई नहीं होता, उसके प्रभु होते हैं। सारे नगर में ईर्यापथ से शोधन करते हुए साधु पधारे चर्या हेतु।

सबके मन में पड़गाहन के भाव थे। कोई फल लिए, कोई मोती लिए प्रतीक्षारत थे। उस श्रावक ने सोचा 'भैया! अपन तो जैसे हैं, वैसे ही खड़े हो जाओ।' वह कुछ भी नहीं लिए था। खाली हाथ बेचारा खड़ा था। हे ज्ञानी! आप तो प्रतिदिन चौका लगाओ, पर कोई लगाये तो उसको मना नहीं करना। जिसका अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा, उसको मिलेगा। वह श्रावक खड़ा हुआ था। वीतरागी तपोधन पूरे नगर में घूमकर आ गये। अंतिम मकान पड़ा, उसी श्रावक का था। जैसे ही उसने देखा, उसके नयनों से नीर झरने लग गया- हे स्वामी! नमोऽस्तु। और वे धरती के देवता जाकर खड़े हो गए। उसे लगा कि जैसे कोई चमत्कार हो गया हो। कल्पना में डूब गया। लोग चिल्लाये- भैया! परिक्रमा तो लगाओ। जैसे परिक्रमा लगा रहा था, वहाँ नयनों से नीर झर रहा था। वहाँ आकाश से पुष्पवृष्टि होने लग गई। वे वीतरागी तपोधन मासोपवासी ऋद्धिधारी मुनिराज थे। पंचाश्चर्य होने लग गए। उस गरीब के घर में महाराज के आहार हुए। अब देखो एक समय में कितने पुण्यकर्म का बंध हुआ। पाप तो नहीं कर रहा था ना? कितने प्रशस्त परिणाम थे। यदि किसी के घर में हंडा निकले तो घर में छुपाकर रख लेते हो और तीन-लोक के रत्नों के धारी रत्नत्रयधारी आयें और तू ये कहे कि भैया! चौका लगा लो, अपने घर ले जाओ। तो ऐसे पाप का बंध कर मत लेना। आज आए हैं अंजुलि लगाके, कल चले जायेंगे। सिद्धालय में तो अंजुलि जोड़ ही पाओगे, अंजुलि में दे नहीं पाओगे। परंतु देखो कर्मसिद्धान्त की विचित्रता। वो श्रावक आहार देना प्रारंभ करता है। ज्ञानी! एक समय में अन्तराय कर्म का बन्ध कैसे होता है?

संसार की विचित्र दशा है। एक परिवार में माँ भी धर्मात्मा हो, पिता भी धर्मात्मा हो, बेटी भी धर्मात्मा हो, तीनों के एक-जैसे भाव मिल जायें, भैया! विश्वास मानना, पूर्व भव के तपस्वी लोग मिल गये हैं। ऐसा बहुत कम होता है कि माँ के परिणाम, पिता के परिणाम, बेटे के परिणाम एक-जैसे धर्म में लीन हो जायें। वो घर, घर नहीं है, वो तो साधुओं का घर है। इस वणिकपुत्र की जो माँ थी, उसका मन साधुओं के प्रति अच्छा नहीं था। क्या करें? कर्म की विचित्रता है। आहार देते समय उसके मन में क्या भाव आ रहे हैं? कहीं मेरी माँ न आ जाये, जो कलह करने लगे। शांतिधारा चल रही थी। जो लोटे से बीच-बीच में डालते हैं तो वह टूट जाती है। आप पहले से व्यवस्था करके चलो, थोड़ा-थोड़ा डालो भगवान् के ऊपर, जिससे धारा टूटे न। शांतिधारा तो अखंड कर लेते हो। वह तो जड़पानी की धारा थी। उसकी तो चिन्ता कर लेते हो कि कहीं टू न जाये। उसका टूटना व्यवहार की भाषा है। यदि धारा बीच में टूट जाये, तो तुम अशुभ मानते हो, अच्छा नहीं मानते हो। ऐसे ही ज्ञानी! जब तुम पुण्य कार्य करने जाओ, तो अपने परिणामों की धारा को अखंड रखना, ये बीच में टूट न जाये। मेरे

परिणाम इधर-उधर न चले जायें। प्रवचन सुनने आयें तो अखंड धारा में सुनो। आहार देने गये तो अखंडधारा में दो। प्रभु की पूजन कर रहे हो तो अखंडधारा में करो। जब अरहन्त की पूजा करने जाओ तो ये मोबाइल की डिबिया घर में रखकर आया करो, क्योंकि आप तो शुभोपयोग में लगे थे और एक घंटी आयी तो आपकी धारा खंडित हो गई। चौबीस घंटे में दस-पाँच मिनिट को तो मंदिर आते हो, वो भी अच्छे से भगवान् को नहीं देख पाये।

वो श्रावक आहार दे रहा था, मन में इतना भाव आया था कि मेरी माँ न आ जाये, क्योंकि वह विघ्न कर देगी। इतना मात्र चिंतन करने से ऐसे पाप का बंध हुआ हे सम्राट! जो तूने दिगम्बर मासोपवासी मुनिराज को आहार दिया, उससे तुझे सेठपुत्र होने के बावजूद भी सम्राट पद मिला है, किन्तु बीच में तूने माँ का चिंतन करके शुभोपयोग का अपहरण कर लिया था, उससे तेरा इस पर्याय में अपहरण हुआ। चिन्तन करना हे प्रभो! वह दिन कब आये जब ऐसा परमेश्वर मेरे हृदय में विराजे और वह दिन कब आये जब मैं स्वयं परमेश्वर बन जाऊँ।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---XXX---

सच्चा ब्रह्मचर्य

जीवन दर्पण की तरह जियो।
स्वागत सबका
पर संग्रह किसी का भी नहीं

योो व्यापको विश्व-जनीनवृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुत-कर्म-बन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ।। 17 ।।

अन्वयार्थः (यः) जो (व्यापकः) सर्वव्यापक है ज्ञान की अपेक्षा व (विश्व-जनीन वृत्तेः) विश्वकल्याण करने के स्वभाव की अपेक्षा, जो (सिद्धः) सिद्ध है (विबुद्धः) ज्ञायकस्वभावी है (धुत-कर्मबन्धः) कर्मबन्धनों का विध्वंसक है, (ध्यातः) ध्यान में चिन्तन किया गया जो (सकलम्) समस्त (विकारम्) विकारी भावों को (धुनीते) नष्ट करता है (स देव-देवः) वह देवों का देव (मम) मेरे (हृदये) हृदय में (आस्ताम्) विराजमान रहे।

सामायिक देशना

आचार्य अमितगति स्वामी 'द्वात्रिंशतिका' के 17वें श्लोक में कह रहे हैं कि हे जीव! तेरा जो ज्ञान है, वह कौए के दाँत नहीं, ये कौए की आँख का गोलक है। कौए की कितनी आँख होती है? और गोलक कितने होते हैं? न्यायशास्त्र में एक काकाक्षी न्याय है। कौए की आँख दो होती हैं, परंतु कौए की गोलक एक होती है। जब दायीं आँख से देखता है तो बायीं आँख बंद हो जाती है। जब बायीं आँख से देखता है तो दायीं आँख बंद हो जाती है। वही गोलक इधर-उधर आता है। इसी प्रकार जैनदर्शन है। हे ज्ञानी! ज्ञान एक होता है। ज्ञान जब शुभ में जाता है तो अशुभ की आँख बन्द हो जाती है और ज्ञान जब अशुभ में चला जाता हो तो शुभ की आँख बंद हो जाती है। गोलक एक है, ज्ञान एक है और उसका नाम ज्ञायकभाव है। ज्ञायकभाव जब शुभ में जाता है तो शुभोपयोग बनता है और अशुभ में जाता है, तो अशुभोपयोग बनता है। जब वही ज्ञान तेरा चिद्रूप चैतन्य में लीन होता है, तो शुद्धोपयोग बनता है। ज्ञान जब मोह-क्षोभ से रहित होता है, तो परम कैवल्य को प्राप्त हो जाता है। सहजशुद्ध ज्ञायकभाव है। ये वस्तु का दोष नहीं। आज समझ में आना चाहिए कि जिस परमात्मा को मैं भजता हूँ, पूजता हूँ वह ज्ञायक वभावी है, ज्ञाता-दृष्टा मात्र है। ध्यान रखना, जब से मैंने होश सँभाला है, तब से इस पर्याय का अपहरण हुआ है। देवपूजा करते समय जितनी बार दुनियाँ को देखते हैं और एक पूजा करने में कितने लोगों को टोकते हैं, उसका कुछ हो या न हो, लेकिन तू अपने पुण्य का अपहरण कर रहा है।

'इस विध ठाड़ो होयके' मुख से कह रहा है, परन्तु पूरे मंदिर में घूम रहा है। यहाँ की थाली वहाँ पटक रहा है, द्रव्य उठा रहा है और कह रहा है इस विध ठाड़ो होयके। ज्ञानी! उसका अर्थ ये है कि सब सामग्री लगाने के उपरांत कायोत्सर्ग करके खड़े हो जाना चाहिए।

फिर कहीं भी हिलने-डुलने की आवश्यकता नहीं है। तीनलोक के नाथ के सामने कह रहा है। तीर्थंकर के सामने झूठ बोल रहा है, तो दुनियाँ के सामने क्या करता होगा? तुम ऐसा चिन्तन करो कि हमने ऐसा पुण्यकार्य करके कितने बार विघ्न किया है? दान देते समय भाव बिगाड़े 'आप ही आप दोगे क्या?' दूसरे से छीना-झपटी भी की। कोई दे रहा था तो उसका ग्रास छीन लिया, ऐसे भाव अपन ने बिगाड़े। भैया! ये कर्मसिद्धान्त है, ये किसी को छोड़ता नहीं। ये मत कहना कि आपको भयभीत करने के लिए सुनाया जा रहा है। नहीं, ऐसी वस्तुव्यवस्था है। कभी-कभी आप लोगों के मुख से मैं सुनता हूँ कि महाराज! अच्छे से भक्ति पूजन सबकुछ करता हूँ, लेकिन ये छोटे-मोटे उपसर्ग क्यों आते रहते हैं? भैया! सुन, भक्ति पूजन कर रहा है, इसलिए छोटे-छोटे आ रहे हैं। यदि इनको ही छोड़ बैठा, तो बड़े-बड़े आयेंगे। बोले, महाराज! आ क्यों रहे हैं? तुम जब पूजा कर रहे थे, जब तुम्हारे द्वारा किन्हीं अन्य पूजकों को कुछ विफलता हुई होगी, उसमें तुमने अन्तराय डाल दिया, सो एक अन्तराय ये खड़ा हो गया। वो छोटा-मोटा उदय में आयेगा। जब उस वणिक पुत्र को 'माँ न आ जाये' इतने विकल्प मात्र से इतना बंध हो गया कि उसका अपहरण हो गया, अब आप अपने बारे में सोचो कि आप चौबीच घंटे में पुण्य करते हुए क्या-क्या सोचते हो? इसलिए आज से तन्मयीभूत होकर बैठना। जब तक आराधना करने बैठो, धनञ्जय बनकर बैठ जाना। बेटे को कालिया नाग ने डस लिया हो और पत्नी बेटे को लेकर भी आ गई हो, तब भी भगवान् से कह रहे हैं कि कामपुरुषार्थ का फल पुत्र तो चला ही गया, अब धर्मपुरुषार्थ को क्यों छोड़े जो मोक्ष का कारण है? और जब आँख खोलकर देखा और कहा हे- स्वामी! ये मेरी हँसी का काम नहीं है, पुत्र राग नहीं है। जिनशासन से लोगों की श्रद्धा न टूट जाय, अतः गंधोदक का एक छींटा मारा, तो बेटा उठकर बैठ गया, बोला, फ्माँ! कहाँ लेकर आ गई हो?' जब श्रद्धा उठती है, तो ज्ञानी! निम्नलिखित फल होता है-

विघ्नौघा प्रलयं यान्ति, शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे।।

श्रद्धागुण होना चाहिए, जगत के भूतप्रेत सब समाप्त हो जाते हैं। प्रभु पर श्रद्धा को डाँवाडोल मत कर लेना। वर्तमान के भोगों की इच्छा के अंधियारे में भविष्य की पर्याय को बिगाड़ मत लेना। माँ! सीता ने जो चन्द्रनखा को उपदेश दिया था, उसका ध्यान रखना और अपने जीवन में 'पद्मपुराण' का स्वाध्याय कर लेना। संस्कृति की रक्षा जब भी होगी, जिनवाणी से ही होगी। शास्त्र/साहित्य नहीं बचा, तो संस्कृति बचनेवाली नहीं है। ये उद्यापन में, जिनालय में जिनवाणी विराजमान करो, श्रीजी विराजमान करो, सामग्री रखो। एक अरहन्त की प्रतिमा

को देखकर एक जीव को भी सम्यक्त्व पैदा हो गया। एक ग्रंथ आपने प्रकाशित किया, उसका हजारों-हजारों लोगों ने वाचन किया। उस वाचन के मध्य में जो परिणामों की विशुद्धि आ रही है, उसको खरीदने जाओ, कहाँ मिलती? कोई ये कहे कि इतना बड़ा पाण्डाल लगाकर कितना खर्च कर दिया? हमारी आँखों को खर्च दिख रहा है, पर भैया! इतने तो प्रवचन सुने, फर्क पड़ा नहीं।' ये शब्द कभी नहीं निकालना। प्रतिदिन प्रवचन सुनें, आपको क्या मालूम क्या फर्क पड़ा! कभी जीवन में पानी पिया क्या? पिया है। जो तू पानी पी रहा है, वह कौनसा पानी है? जो तेरी छत पर बरसा था, तेरे घर की नाली से बहकर गया था, वही पानी जो आज तुझे नहीं दिखाई दे रहा है। ये पानी जमीन में प्रवेश कर चुका था। छनते-छनते पाताल में पहुँच गया। जो कुए की झिर से निकलना प्रारंभ हो गया, आज तेरे ग्लास में आ गया है। तू पानी को मधुर कह रहा है, ज्ञानी! वह जो पानी की बूँद गिरी थी, वही कुए से निकलकर आयी है। ऐसे ही जो आज की जिनवाणी है, वह छन-छन कर केवली की वाणी बनकर कैवल्य रूप में उद्घाटित होगी। पहले जो 'द्वात्रिंशतिका' का पाठ किया था, वह आज फलित हो रहा है। नये मटके में पानी की एक बूँद दिखाई नहीं देती, लेकिन वही बूँद पड़ती रहे तो मटके में पानी दिखना प्रारंभ हो जाता है। ये नये मटके, ये नये सकोरे हैं, तत्त्वज्ञान से शून्य हैं। इनमें बार-बार पड़ेगा, तो एक दिन दिखना प्रारंभ हो जायेगा। इसको व्यर्थ मत समझना। आज का उपदेश तुम्हारे लिए भविष्य का भगवान् बनायेगा और लाभ क्या मिल रहा है? इतना लाभ तो मिल ही रहा है जब तक यहाँ बैठे हैं। प्रत्यक्ष लाभ है। साथ ही विषय-कषायों से निवृत्त होने से पाप से रक्षा है।

हमारे आचार्यप्रणीत आगम-अनुकूल सम्यक् ग्रंथों का जो प्रकाशन कर रहे हैं, उनकी प्रशंसा होनी ही चाहिए। परन्तु जो समाज का निखण्डन करें, उनकी प्रशंसा नहीं करना। जिन ग्रंथों का अध्ययन करने से हमारे टूटे हृदय जुड़ जाएँ, भैया! उनका अध्ययन करना। जिनवाणी का काम गोंद का है, सुई का काम है, तलवार का काम नहीं है। जिनवाणी दो टूटे हृदयों को जोड़ देती है।

हे वर्द्धमान! आपके समवसरण में सिंह भी बैठा और गाय भी बैठी। हम तो ये समझते थे कि प्रवचन सुनना बूढ़ों का काम है, लेकिन हमें पता नहीं था कि प्रवचन में इतना आनन्द आता है। विश्व का सबसे सुन्दर भोजन दूध है। जन्म से लेकर मरण तक भोजन का काम करता है गोरस। जैसे माँ का दूध अंतिम श्वासों तक काम में आता है, ज्ञानी! वो माँ का दूध छूट भी जाय, लेकिन माँ जिनवाणी के आँचल का पान अंतिम श्वास क्या, भवों तक पहुँच जाता है। ऐसी माँ के आँचल को छोड़ मत देना। धर्म को कौन सँभालेगा? इस सनातन जिनशासन की

रक्षा तुम्हारे हाथ में है और सनातन धर्म की रक्षा तभी कर पाओगे जब जिनवाणी का पाठ तुम्हारे मुख में होगा। जीवों की रक्षा तभी हो पायेगी जब सत्य का बोध होगा। जीवों की रक्षा के भावों की अनुमोदना किया करो। प्राणिमात्र को सुख हो, शान्ति हो। छठे काल से बचने के लिए चारित्र का पालन करो, फिर चाहे विदेहक्षेत्र में, चाहे भरतक्षेत्र में आकर जन्म लेना। फिर केवली मिलेंगे, उनके चरणों में मुनि बनेंगे, फिर मोक्ष चलेंगे, यही भावना लाओ।

यहाँ आचार्यमहाराज कह रहे हैं कि जिनका ज्ञान सारे विश्व में व्याप्त है, उन केवली के ज्ञान में जगत का चराचर द्रव्य झलकता है और विश्व के कल्याण की जिनकी दृष्टि हो, जिनका स्वभाव हो, ऐसी वृत्ति से युक्त सिद्ध परमेश्वर निकल हैं, ज्ञायकस्वभावी हैं, जिन्होंने कर्म के बंधन को नष्ट कर दिया है, जला दिया है। मैं उस परमात्मा को नमस्कार कर रहा हूँ जो नित्यनिरंजन, ज्ञानमयी है, जिन्होंने ध्यान की अग्नि के माध्यम से कर्मकलंक को ध्वस्त कर दिया है। ऐसे परमेश्वर, ऐसा देवों का देव मेरे हृदय में विराजमान हो। कैसा देव? जिसने ध्यान की धोंकनी में सारे कर्मों को जला दिया है। ऐसा देवों का देव अरहन्त, सिद्ध परमेश्वर मेरे हृदय में विराजमान हों। अब वे परमात्मा मुक्ति को पाकर संसार में कभी नहीं आयेंगे। जब से समझ आयी है, तब से मात्र इतना समझ में आया है कि वीतराग अरहन्त देव से बड़ा जगत में कोई देव नहीं होता है और उस देव के अलावा ये मस्तक किसी को झुका नहीं है। जिनवाणी से बड़ा कोई ग्रन्थ नहीं है। निर्ग्रन्थ से बड़ा कोई गुरु नहीं है। सारे जगत को सिद्ध कर लो तो आँख बन्द होने तक ही साथ देंगे, यदि पुण्य रहा तो।

ज्ञानी! अपनी ससुराल गया और सासू ने हरे-हरे नोट पकड़ाये, सो उसने हाथ से पकड़ लिए, छोड़ भी नहीं रहा है और कह रहा 'नहीं चाहने, नहीं चाहने' और मन कह रहा है कि रख लो, 'रख लो जेब में'। अरे भाई! इसमें क्या? जो है, सो है। ये ज्ञानी किसी के घर निमंत्रण में जाये भोजन करने, अब बेचारा सोचे, 'सब तो उठ गए खाकर, शर्म तो लग रही है' और कहीं मित्र आ जाये और-परोसने को, तो थाली के बगल में हाथ हिलाकर कहता है 'अब नहीं चाहने।' कैसे-कैसे जीव हैं? ज्ञानी! जब भोजन करना ही था, तो मायाचारी क्यों? शान्ति से खा लेना। आहार लेना है तो अंजुलि खोलो और नहीं लेना है तो अंजुलि बंद कर लो। दोनों की मिश्र क्रिया चलती है। सबसे ज्यादा वजन कौन ढोता है? बेचारे गधे में इतनी ताकत है नहीं, और घोड़ा तो दौड़ता ही है। वह न घोड़ा होता है, न गधा होता है, खच्चर होता है, जो सबसे ज्यादा ईंटें ढोता है। मिश्र। दो जातियों के संयोग से जो नवीन पर्याय उत्पन्न होती है, तीसरी जाति, उसका नाम खच्चर होता है। ज्ञानी! सुन, मन कह रहा है, ये मिश्र धारा चल रही है। कर्म कह रहा, 'बेटा! तुम बन गये खच्चर, हम आ रहे हैं, तुम ढोओ अब।' इसलिए सुनो भैया!

ससुराल भी जाओ तो नाटक मत करना। वहाँ रूठा बैठा है। कहा कि भोजन कर लो, तो कहता है कि अभी रुपया नहीं पड़े थाली में। ज्ञानी! कभी नहीं रूठना ससुराल में टुकड़ों के पीछे।

सोना बनाने की बता दो तो कल से व्यापार बन्द करके घर में बैठेंगे आराम से। तांबा, शीशा, हथिनी का मूत्र इन द्रव्यों को एकत्रित करके मंद धोंकनी में धोकने से सोना बनता है, पुण्य हो तो। हे मुमुक्षु! समयसार में सोना बनाने की विधि लिखी हुई है, लेकिन पुण्य हो तो। और पुण्य नहीं है तो ज्ञानी खाक हो जायेगा, राख हो जायेगा, सोना बननेवाला नहीं है। ऐसे ही ये भगवानात्मा भगवान् बनती है रत्नत्रय की साधना से। कब बनती है? भव्य है तो। भव्य नहीं है तो भगवान बननेवाला नहीं है। कितने ऊपर ले जाते हैं और धड़ाम से नीचे। हाँ, सामग्री आप खरीद कर ला सकते हो, परन्तु पुण्य खरीदने कहाँ जाओगे? जीव का परिणमन ज्ञानधारा है। परन्तु ज्ञान का परिणमन नीचे कर रहा है। श्रद्धान में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। दर्शन में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। चारित्र में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। और ज्ञानी! असंयम में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। मिथ्यात्व में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। योग की चंचलता में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। अविरति में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। ये मुमुक्षु यहाँ आया है तो ज्ञान से ही आया है। घर में जायेगा तो ज्ञान जायेगा। कितनी महान वस्तु है जिसे मैं अपनी पर्याय में परिणामों के साथ कहाँ-कहाँ ले जाता हूँ? कभी-कभी आपको नहीं लगता कि धिक्कार है मेरी परिणति को कि जिस ज्ञान से सिद्धशिला पर बैठा जाता हो, उस ज्ञान से निगोद में बैठने जा रहा हूँ, तो मैं हंस हूँ कि कौआ हूँ?

बालयति तो महान हैं ही, लेकिन उनके द्वार पर आनेवाला भी सम्मान को प्राप्त होता है। आपकी भक्ति ने आपको आगे बैठने को स्थान दिया है। आपकी श्रद्धा ने आगे बिठाल दिया है। भैया! यदि युवाओं ने भगवान् के चरणों में बैठकर भक्ति की है, तो अच्छा काम करने का फल है कि भरी सभा में आगे बिठाला गया है। हे ज्ञानी! ज्ञान कह रहा है कि जैसे धन का एक सिक्का चाहे तू टेलीफोन के डिब्बे में डालकर बातें कर सकता है, तू चाहे तो जिनवाणी की आराधना में लगा ले, तू चाहे तो जिनालय में द्रव्य खरीदकर पूजा कर ले। लेकिन फल सामने दिखाई देगा। ज्ञान का परिणमन तेरे हाथ में है। ये पानी की धार ज्ञान की धार है। ये ऊपर भी जाता है, ये नीचे भी जाता है। नीचे जाने के लिए ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ती और ऊपर ले जाने के लिए टुल्लू पम्प लगाना पड़ता है। ज्ञान को ज्ञान में स्थित करने के लिए शक्ति चाहिए और ज्ञान को विषयों में डालने के लिए कोई शक्ति नहीं चाहिए।

श्रेयांसगिरि का वटवृक्ष भी दिखता है, वहाँ के भगवान् भी दिखते हैं। जिस क्षेत्र में जिस व्यक्ति से जिस वस्तु से तेरी आत्मा को किंचित् भी कल्याण का मार्ग मिला हो, व्यवहार से

मैं कह रहा हूँ, उस कारणभूत द्रव्य को कभी भूल मत जाना, कभी मत भूलना। एक छोटी-सी बात बताऊँ आपको। एक सम्राट जंगल में जा रहा था, अचानक मार्ग में भ्रमित हो गया और सेना तितरबितर हो गई। वहाँ किसी साधारण व्यक्ति ने भी यदि मार्ग बता दिया तो वह अपने परिकर को व्यवस्थित कर कल्याण प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार के कारणों को भूलना नहीं।

जबलपुर नगरी में कोई मुनिराज आयें, त्यागी-व्रती आयें तो लाखों का खर्च तू मत करना, लेकिन उनको आहार के लिए जरूर ले जाना। श्रद्धा का ग्रास रखनेवाले भव्यजीव ही मिलेंगे। जो ग्रास की स्मृतियाँ हैं, उनकी आयु लम्बी है और हजारों नोट फेंकने की आयु बहुत छोटी है। किसी जीव ने गरीबी अवस्था में तुमको एक ग्लास पानी भी पिलाया हो तो उसे भूलना मत। सम्राट भटक गया। उस क्षण न राज्य का वैभव दिखाई दे रहा था, न अन्तःपुर की महारानियाँ याद आ रही थी। उस समय तो एक ग्लास पानी की याद आ रही थी। जंगल में और-अन्दर गया। एक पुरुष झोपड़ी बनाये जंगल में निवास कर रहा था। सम्राट जैसे ही गरीब की झोपड़ी से गुजरता है, गरीब सोचता है कि ये सुन्दर पुरुष दिख रहा है, यह देव है कि नर है? सम्राट कहता है कि मुझे प्यास लगी है। मैं इस देश का राजा हूँ। महाराज! बस एक ग्लास पानी मेरे पास है, मैं मर भी जाऊँगा तो मेरे मरने से क्या बिगड़ता है, परन्तु मेरा सम्राट बचा रहेगा तो पूरा देश जीवन्त रहेगा।

पन्द्रह वर्ष का एक युवा व हम सुबह शुद्धि से आ रहे थे। रास्ते में दो वाहन निकले। अचानक एक का गेट खुल गया, तो बालक उस ओर आ गया। मैंने पूछा, तो बोला- महाराजश्री! वह वाहन निकल रहा था, उसका गेट उसमें टकरा गया, लेकिन आपको कुछ नहीं होना चाहिए था, इसलिए इस ओर आ गया। मैंने कहा-बेटा! ये क्या बोल रहा है तू? तू एक माँ का लाल है। मुझे कुछ हो भी जाता हे तो मेरे आगे-पीछे कौन है? परन्तु तेरे तो माता-पिता हैं। 'जी महाराज! निर्ग्रन्थ गुरु सुरक्षित रहेगा तो निर्ग्रन्थ मार्ग भी सुरक्षित रहेगा और गुरु ही सुरक्षित नहीं रहेगा तो 'नमोऽस्तु शासन' कहाँ जीवन्त रहेगा?

नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो।

अब बताओ, आज भी नमोऽस्तु शासन जीवन्त है कि नहीं? उस छोटे से बालक को किसने कहा था कि तुम ऐसा कर लेना? तुरन्त वह मुड़ कर खड़ा हो गया। तब लगा कि नहीं, तीर्थंकर महावीर की वाणी आज भी जीवन्त है और आगे भी जीवन्त रहेगी। आज जब ऐसे भाव नहीं होते, तो बच्चे सिनेमाहाल की ओर दौड़ते होते। अब वे सुबह साढ़े पाँच बजे भवन के गेट पर खड़े मिलते हैं क्योंकि महाराज को शुद्धि के लिए लेकर जाना है। जो कभी 8 बजे जागते होंगे, 10 बजे जगते होंगे। धर्म है कि नहीं? इसलिए आज से मेरा वृद्धों से कहना है कि

इन युवाओं के शीश पर तुम आशीष देते रहो। ये विश्वास रखो, ये ही तुम्हारे सनातन धर्म का लेकर चलेंगे। लेकिन ऐसा मत कहना कि धर्म नहीं है। इनको सिखाने की आवश्यकता है। ये अनभिज्ञ हो सकते हैं, परन्तु ज्ञान से रहित नहीं हैं।

माँ यदि मंदिर लेकर आई और महाराज के पास लेकर आयी, तो विश्वास रखना, जब तू बूढ़ी हो जायेगी तो वे तुझे मंदिर लेकर जायेंगे। यदि आज तुमने संस्कार नहीं दिये, तो ध्यान रखना, वे कहेंगे, कि तुमने मुझे सिखाया ही नहीं है कि क्या होता है? अब तुम यहीं पड़ी रहो।

ज्ञानी! ध्रुव सत्य ये है कि न बुराई छुपती है, न अच्छाई छुपती है। ज्ञानी! अग्नि के कुण्ड में चंदन का मूठा डाल देना, अग्नि उसे जलायेगी, फिर भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ेगा। और सूखा विष्ठा डालोगे तो वह भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ेगा। ज्ञानी! अच्छाई भी दिखती है, बुराई भी दिखती है। तनक समय दो। पाप मगरे पर चिल्लाता है। किसी को मालूम नहीं होता है, स्वयं चिल्लाता है और पुण्य भी रत्नों की वर्षा करता है यदि समय को समय दो तो। अग्नि में ईंधन डालने पर ऐसा लगता है कि बुझ रही है, शान्त हो रही है। लेकिन वह बुझ नहीं रही है, समय चाहती है। तनक मैं ऊपर ले आऊँ, ऊपर आता हूँ, फिर मेरी हालत देखना क्या होती है? समय दो, किसी के बारे में कुछ मत बोलो, अपने आप सामने आयेगा। कोई बुरा भी करे, किन्तु यदि आप अच्छे हो तो कोई बुरा न कर पायेगा। बुरा करनेवाले का जो बुरा करे, उसे मैं अच्छा कहता नहीं हूँ। बुरा करनेवाले का भी जो भला करे, उसका नाम जिनशासन की अच्छाई है।

जो बुरा करे, उसका बुरा करना और जो भला करे, उसका भला करना, ये तो स्वार्थियों की वृत्ति है। बुरा करनेवालों का भी भला सोचे, यह जैनदर्शन है। लाल चींटी काटती है तो भी हम उसकी रक्षा के भाव रखते हैं, मरने नहीं देते हैं। हम उस कुल में जन्मे हैं। दूध पिलाने वाले को भी कसाईखाने भेजनेवाले जैनकुल के नहीं हैं। धिक्कार है उन पापियों को, जो अति उपकार करनेवाली बूढ़ी गाय को कसाई को दे देते हैं।

सम्राट, पास में एक ग्लास पानी, उसने पकड़ा दिया और कहता है- महाराज! जंगल बियाबान है। बावड़ी से लेकर आया हूँ। पानी एक ग्लास मात्र है। आप पी लीजिए। सम्राट पी लेता है। सम्राट ने अपने जीवन में ऐसा स्वादिष्ट पानी कभी नहीं पिया था, क्योंकि अभी तक प्यास लगती ही नहीं थी, उसके पहले ही पी लेता था। आज प्यास लगी, इसलिए प्रेम से आनन्द ले रहा था। सुनो ज्ञानी! भोजन की कीमत तभी है, जब भूख लगे। पानी की कीमत तभी है, जब प्यास लगे। जिनवाणी की कीमत तभी है, जब श्रद्धा जगे।

अठारह वर्ष का एक युवा महाराष्ट्र में बोला- महाराज श्री! मेरा सफरचन्द का त्याग है। क्यों भैया? मेरी बूढ़ी माँ जब तक है, तब तक उसकी सेवा करूँगा। आगे भी तक तक सफरचंद (सेवफल) का त्याग है जब तक मुनिदीक्षा न ले लूँ। कोई इसलिए त्याग करता है तब तक के लिए, जब तक कि मेरा शत्रु का नाश न हो जावे। तू काहे का त्याग कर रहा है? तब तक का त्याग है जब तक...। और अन्य कह रहा है कि मेरे कर्मों का नाश हो जाये। सम्राट ने पानी पी लिया और जब प्राण बचाके नगर पहुँचा दो घंटे बाद, फिर बहुत बड़ी सेना आकर खड़ी हो गई उस गरीब के यहाँ। चलो, आपको सम्राट ने याद किया है। बेचारा सोचता है कि जरूर हमारे पानी में कुछ मिल गया, कुछ हो गया। अब तो हमारी फाँसी निश्चित है। क्या करूँ? गरीब चना चबा ले तो कहते हैं कि कछू खावे नइयाँ सो फाँक रहा है और अमीर चबाये सो कहते है कि मन भओ। जगत की लीला ऐसी ही है। बेचारा घबराते-घबराते जैसे-ही महाराज के यहाँ पहुँचा, वहाँ सेनापति खड़ा है, मंत्री खड़े हैं, 'आइये? उसे राजसम्मान के साथ प्रवेश कराया गया। सम्राट कहता है कि इसने मेरे प्राण बचाये हैं, इसको एक भवन और दस गाँव दे दो। उपकारी के उपकार को नहीं भूलने का। परन्तु क्या करूँ? दुनियाँ बदल जाय, परन्तु मचला मन नहीं बदलता। भैया? किसी को सँभालकर रख पाओ या न रख पाओ, पर मन को सँभाल कर रखो। इसने जो अनष्टि किये हैं, वो जगत में किसी ने नहीं किये। ज्ञान की कुबुद्धि देखो- जिसने दस गाँव दिये हों और इतना प्रेम दिया। राजा की प्रीति ही बहुत बड़ी चीज होती है। राजा का इकलौता राजकुमार हर समय आता-जाता रहता था उसके यहाँ। उसका मन मचल गया। जवाहर जेवरातों से लदे पुत्र राजकुमार को अकेले में पकड़कर घात कर दिया और उसके जेवर को घर में रख लिया। सम्राट को कुछ दिनों के अन्दर मालूम चल गया कि मेरे इकलौते बेटे का घात उस व्यक्ति ने किया जिसके घर मैंने पानी पिया था। तब राजा राजसभा में पुनः बुलाता है और अपने सेनापति से कहता है- सेनापति! इसने जो अपराध किया है, वो यथार्थ में अक्षम्य है। इतनी ताकत इसके इन्दर आ गई कि इसने मेरे राजकुमार का घात कर दिया। जिसके बल पर राज्य चलनेवाला था, उस उत्तराधिकारी को ही समाप्त कर दिया। लेकिन फिर भी मेरे सेनापति! इस व्यक्ति को मृत्युदंड मत देना, क्योंकि उपकारी के उपकार को साधुपुरुष भूलते नहीं हैं। जब मेरे प्राण तड़प रहे थे, तब इसने एक ग्लास पानी पीने को दिया था, इसलिए आप इसको ऐसे ही छोड़ दो। सम्राट इकलौते बेटे के घात होने पर भी इस बात को दोहरा रहा था कि मुझे जंगल में इसने पानी पिलाया था। 'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति।' साधुपुरुष उपकारी के उपकार को नहीं भूलते हैं। जब बेटे के जाने के बाद भी सम्राट ने उपकार को स्वीकार किया, हे ज्ञानी! ये भगवती माँ जिनवाणी, ये जिनदेव, ये निर्ग्रन्थ गुरु आपसे कुछ लेते नहीं हैं, देते-ही-देते हैं। इनके उपकार को भूल मत जाना। पापकर्म के

उदय से नरक में भी चले गये, तब भी वहाँ बैठकर भी नाम लोगे तो स्वर्गकारी काम बनेगा। दुनियाँ को भूल जाना, परन्तु जब दुनियाँ तुझे भूल जाये तब तू परमात्मा को याद करना। जीवन भर तुम्हें भगवान् याद नहीं आते, क्योंकि दुनियाँ की भीड़ में भगवान् दिखाई देते नहीं हैं। ये कौन आश्चर्य की बात है? द्रोपदी से पूछो ना? युधिष्ठिर को देखा, अर्जुन को देखा, भीम, नकुल, सहदेव को देखा। सबको देखती रही। जब देखा कि अब कोई करनेवाला नहीं है, तो फिर कहती है-

एक ग्रामपति जो होवे, सो भी दुःखिया दुःख खोवे।
तुम तीनभुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अन्तर्यामी।।

ये कब बोली? जब देख लिया कि अन्य शक्ति कुछ भी नहीं कर रही है, तब जिनेन्द्र प्रभु को निहारा। वही मैं आपसे कह रहा हूँ, भैया! अपने सबको देख लेना। जब तुम्हें अपने न दिखें, कम-से-कम अंतिम समय में भगवान् को देख लेना। वे ही काम में आयेंगे, ये दुनियाँ काम में आने वाली नहीं है।

ज्ञानियो! संकटकाल में अन्य शरण न जाकर, हमें वीतरागदेव की शरण में जाना चाहिए। परमात्मा की शरण में जाने से अन्य किसी की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं है।

मानतुङ्ग स्वामी कह रहे हैं, प्रभो! खारे नीर को पीने से क्षीरसागर के नीर की याद आती है। आप ऐसे क्षीरसागर हो कि फिर खारे नीर की याद ही नहीं आती है। ऐसे परमात्मा की वन्दना करना जिनके अन्तस् में कर्म झलक कर भी स्पर्श को प्राप्त नहीं होते हैं। उन्होंने अन्धकार के समूह को नष्ट कर दिया है। जैसे सूर्य अंधकार से स्पर्शित नहीं होता, उसी प्रकार वे कर्मकलंक के दोषों से स्पर्शित नहीं होते। अंधकार में सूर्य नहीं दिखता, वैसे-ही कर्मकलंक के दोषों से आत्मा नहीं दिखती।

परमात्मा नित्य हैं, निरंजन हैं। एक बार परमात्मा बनने के उपरान्त पुनः च्युत नहीं होते हैं। ऐसा नहीं होता है 'जब-जब होये धर्म की हानी' जब धर्म की हानि होने लगती है, असुर बढ़ जाते हैं, पापों की वृद्धि होती है, तब परमात्मा पुनः लौट कर आ जाते हैं। नहीं, ज्ञानी! नवीन-नवीन तीर्थंकर होते हैं। वही भगवान् पुनः लौटकर नहीं आते हैं। इसलिए ध्यान दो 'महावीर बनके, पारसनाथ बनके चले आना', ये कर्ताबुद्धि है। बुद्धि लगाइये। ये जैनशासन है, इसको सुरक्षित रखिये। नकल करने से कहीं जिनवाणी का घात न हो जाये, इतना ध्यान रखो। आप ईश्वरवादी नहीं हो, आप 'स्वतंत्रतःकर्ता'-वादी हो। हे ज्ञानी! जितने संगीतकार देश में हैं, इन सबसे कह देना- मेरा परमात्मा निर्गुण नहीं होता है। अष्टकर्म के नाश होने से

आठ गुणों को प्राप्त होता है ऐसे सगुणी परमात्मा की वन्दना है। निर्गुणी परमात्मा की वन्दना नहीं है। गुणविहीन कोई वस्तु नहीं होती है। जब गुण ही नहीं बचे, तो वस्तु कहाँ गई? ''द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।'' जो द्रव्य के आश्रित होते हैं, वे गुण हैं। गुण के गुण नहीं होते हैं और निर्गुण हो जाये तो द्रव्य ही नहीं बचा। अब बात ये है कि लोग नकल तो कर लेते हैं, लेकिन सिद्धान्त/दर्शन का ज्ञान नहीं होता है। विश्वास रखो, शास्त्र कम पढ़े जाते हैं, भजन ज्यादा सुने जाते हैं। भजनों में सिद्धान्त होना चाहिए। भजनों में बाहर की नकल नहीं होना चाहिए। वह परमात्मा निर्गुण नहीं होता। जो प्रभु नित्य हैं, निरंजन हैं, अनेक और एक स्वरूप हैं, ऐसे देवों के देव की मैं शरण ग्रहण करता हूँ। सूर्य का प्रकाश भी उनके प्रकाश से धीमा दिखता है।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

अहिंसा धर्म को
जान
यही है
इंसान की शान
मानव के लिये
वरदान
मानवता की पहचान।
जो भी
'जियो और जीने दो'
की राह
अपनाता है
वही तो
सही अर्थों में
अहिंसक
कहलाता है।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

यथार्थ पूछो तो
धर्म
संत-भेष में नहीं
संत-स्वभाव में
होता है।
जो
भेषधारी संत
ध्र्म के मर्म को
नहीं जानते
संत-स्वभाव को
नहीं पहचानते
वह 'स्व' को
धोका देता है
अपने भव को
खो देता है।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

न स्पृश्यते कर्म-कलक-दोषैः, यो ध्वान्त-सङ्घैरिव तिग्म-रश्मिः।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।18।।

अन्वयार्थ :- (ध्वान्त-सङ्धैः) अन्धकार समूह से (तिग्मरश्मिः इव) जैसे सूर्य स्पृष्ट नहीं होता है उसी प्रकार (यः) जो (कर्म-कलंक-दोषैः) कर्मकलंक और रागादि दोषों से (न स्पृश्यते) स्पृष्ट नहीं होता है, उसी प्रकार (निरंजनं) निरंजन/निर्मल (नित्यं) नित्य (अनेकम्) अनेक और (एकं) एकस्वरूप (तं) उस (आप्तम्) आप्त (देवम्) देव की (अहम्) मैं (शरणम्) शरण (प्रपद्ये) ग्रहण करता हूँ।

विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासि।
स्वात्म-स्थितं बोधमयं-प्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।19।।

अन्वयार्थः (भुवनावभासि) त्रिभुवन के प्रकाशक (विद्यमान) जिनके विद्यमान रहने पर जहाँ सूर्य (न विभासते) शोभा नहीं पाता (स्वात्म-स्थितं) ऐसे अपने आत्म-स्वरूप में स्थित (बोधमयं-प्रकाशम्) ज्ञानमय प्रकाश वाले (तं आप्तं देवं) उस आप्तदेव की (शरणं प्रपद्ये) मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

सामायिक देशना

आचार्यप्रवर अमितगति स्वामी वस्तुतत्त्व का व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं। लोक में अनन्त देव हुये। अनन्त ही नहीं, अनन्तानन्त देव हुये, पर देवत्वशक्ति को प्राप्त होने पर भी देवाधिदेव अवस्था को प्राप्त नहीं हो सके। जिनका क्रीड़ा करना स्वभाव है, उनका नाम देव है। जो क्रीड़ा करे, वह देव। जो दिव्य है, वह देव। लेकिन क्रीड़ा करनेवाला देव हमारा आराध्य देव नहीं है। जिनशासन में परमात्मा की आराधना होती है। लोग एक सामान्य व्यन्तर को भी ऐसा मानते हैं कि कौन-सी वस्तु आ गई। भूतों को सिद्ध करने में भभूती में लिप्त हो रहे हैं, लेकिन धन्य हो जिनशासन, ऐसे देव की आराधना करते हैं जहाँ सौधर्म इन्द्र स्वयं आकर चरणों में शीश टेकता है। सौ-सौ इन्द्रों से वन्दनीय है जो, वह जिनेन्द्र है।

'इन्दसद वंदियाणं' जो सौ इन्द्रों से वंदनीय है, उस देव का नाम है जिनेन्द्रदेव। परन्तु जिनेन्द्रदेव बने कैसे? देवत्व की सिद्धि के लिये बहुत कुछ नहीं करना पड़ता, परन्तु देवाधिदेव बनने के लिये बहुत कुछ किया जाता है। उन संसारी अन्य देवत्वों के सब प्रयत्नों को छोड़ना पड़ता है। देवाधिदेव बनने के लिये कुछ भी नहीं करना पड़ता। आश्चर्य करेंगे आप। देव बनने के लिये पूजन करनी पड़ती है, पांच पाप करने पड़ते हैं, परिग्रह का संचय करना पड़ता है।

खून-पसीना एक कर लेता है, दयाधर्म को खो बैठता है।

पैसे के पीछे क्या-क्या नहीं किया आपने? सगे भाई का सगे भाई से सम्बन्ध टूटा तो पैसे के कारण। पिता-पुत्र का सम्बन्ध टूटा है तो पैसे के कारण। माँ-बेटे का सम्बन्ध टूटा है तो पैसे के कारण। जिसकी कलाई में राखी बाँधती थी, वो बहिन भी भैया को भूल गई पैसे के कारण। हे श्री! तू कितनी महान है। कितने श्रीमानों को तूने अपनों के वात्सल्य से दूर कर दिया है। सगे भाई-भाई में महाभारत हुआ है तो उसका कारण था पैसा। अपने भैया से कह देना- भैया! जो तुझे लेना हो सब ले लेना, लेकिन इतना ध्यान रखना कि मेरी माँ के आँचल का तूने पान किया है उसको बदनाम मत कर देना। जैसे दुनियाँ के घरों में दो चूल्हे होते हैं, वैसे मेरे घर में दो चूल्हे न रखे जायें, हम दोनों एक चूल्हे का ही भोजन करें। भैया! मेरे घर के आँगन मे ंदीवार खड़ी न होने पाये। भैया! ध्यान रखना, धन-धरती तो बँट जायेगी और मेरा पुण्य होगा तो एक मकान की जगह दस मकान खड़े कर सकता हूँ, एक खेत की जगह पचास खेत खरीद सकता हूँ, मगर भैया! मेरे पास कोई ताकत नहीं है कि एक भैया की जगह दस भैया बना सकूँ। भाई को बनाने की कोई ताकत मेरे पास नहीं है। बेटे को जन्म दे सकते हो। एक बेटा ऊपर चला भी जाय तो तुम दूसरा बेटा पैदा कर सकते हो, लेकिन भाई को पैदा नहीं कर सकते हो। इसलिये भैया के प्रेम को मत ठुकराना। भूमि के पीछे सगे भाई से सम्बन्ध मत तोड़ देना। कह देना, 'भैया! तुम सब ले जाओ, लेकिन इतना ध्यान रखना कि मेरा 'भैया' भैया बना रहे।' धन के राग में भाई का सम्बन्ध मत छोड़ देना। धन के राग में माँ-पिता को मत भूल जाना। माता- पिता को भूल जाना बहुत सरल है। धन का राग परमात्मा को भी भुला देता है। जब घर में कुछ नहीं था, तब दिन में तीन बार मंदिर जाया करता था और जिस दिन से तेरे घर में पैसा आ गया है, अब मंदिर जाने को समय नहीं है। ज्ञानी! क्षण भर को ये तो सोच लेता कि ये 'धन', धन से आया है कि 'धर्म' से आया है? पुण्य के फल से धन मिला है और धर्म के फल से पुण्य मिला है। ज्ञानी! विश्वास रखना, बिना पुण्य के एक सिक्का भी कोई नहीं कमा सकता। जिनका कमाने का अहं है, उनसे कह देना-आकांक्षा से और कमाने से द्रव्य आता होता, तो लोक में कमाने वाले बहुत हैं। मुख्य चौराहे पर बैठे हैं, फिर भी सुबह के बैठे शाम को सूखे चले जाते हैं। और पुण्य प्रबल होता है तो कुछ लोग गलियों पर बैठे-बैठे करोड़ों का व्यापार करके चले जाते हैं। पुण्य भी कुछ है। धन के राग में सगे सम्बन्ध मत छोड़ देना। भूमि के राग में प्रभु को मत भूल जाना। 'नगर नारि का प्यार यथा काँदे में हेम अमल है।' युवाओ! ध्यान से सुनना। वेश्या, उस नारी का राग कितने समय तक है? तुम्हें ये भी भुला देगी कि तेरी स्वयं की पत्नी का कैसा राग होगा। चारूदत्त से पूछना। कोटि-कोटि दीनारों का स्वामी संडास में

पड़ा। जब तक द्रव्य/पैसा तेरे पास है, तब तक नगर-नारि तेरी पत्नी बनके रहेगी। लेकिन विश्वास रखना, तेरे-जैसे पागल उसके यहाँ कई पहुँचते हैं। जिस नगरनारि का प्यार त्रैकालिक नहीं है, पैसे पर टिका है, वैसे ही सम्पत्ति का राग पुण्य पर टिका है। जैसे ही पुण्य क्षीण हो जायेगा, वैसे ही सम्पत्ति कब विलीन हो जायेगी, पता नहीं चलेगा। जब नगरनारि का प्यार नष्ट होता है, तब घर की ओर मुड़ता है, 'मेरी पत्नी कहाँ है?' ऐसे नगरनारी के राग में लिप्त हुआ कि अपनी पत्नी के मंगलसूत्र का भी सौदा कर आ गया। वो मुस्करा रही थी कि यदि मेरे राग में अपनी पत्नी का मंगलसूत्र दे सकता है, तो कभी दूसरे के राग में मेरा भी नाश कर सकता है। और फिर क्या कहती है वो नगरनारि वेश्या- हे स्वामी! मैं आप से प्रसन्न हूँ, आप मुझे अपनी माँ का कलेजा लाकर देना। धिक्कार हो उस पापी को।

विषयासक्त चित्तानां, गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं, नाभिजात्यं न सत्यवाक्।।10।।

जिसका चित्त विषयों में आसक्त हो चुका है, उसके सभी गुण नष्ट हो जाते हैं। न सत्य नजर आता है, न धर्म नजर आता है। न मानवता दिखती है, न देवत्व नजर आता है। सभी समाप्त हो जाते हैं। उस अज्ञानी ने क्या किया? छुरी लेकर पहुँचा और माँ से कहता है कि माँ! मेरी प्रेमिका ने आपका हृदय माँगा है।

'बेटे! तू नहीं मानता तो ले जा।' उस अभागे ने ये नहीं देखा, कि जिसने नौ माह मुझे उदर में रखा है, पालपोस कर इतना बड़ा किया है, आज ये काम में आसक्त होकरके माँ के हृदय को चीरने खड़ा हो गया। वह माँ के हृदय को चीर करके दौड़कर प्रेमिका के पास जाने लगा। मार्ग में एक पत्थर की ठोकर लगती है। माँ का हृदय हाथ से गिरा। हृदय से आवाज निकलती है - 'मेरे बेटे! तुझे कहीं चोट तो नहीं लगी?' वह वेश्याव्यसनी हृदय लेकर जैसे-ही नगरनारि के पास पहुँचा, बोला, 'हे प्रिय! लो ये मेरी माँ का हृदय।' वो नारी चीख पड़ी, रो पड़ी। हे पापी! तू यहाँ से भाग जा। वह बोला, अरे! तूने ही तो कहा था कि माँ का हृदय लेकर आओ। रे दुष्ट! जब मेरे राग में तू माँ का हृदय चीर सकता है, तो किसी दूसरे के राग में मेरा भी हृदय चीर सकता है। भाग जा। कहाँ क्या बचा? माँ को हाथ से नष्ट कर बैठा और जिसके लिये माँ को नष्ट करके आया था, उसने भी तुझे छोड़ दिया।

तुम जैनकुल में जन्मे हो, जिनशासन में आपने जन्म लिया है। 'नमोऽस्तु शासन' कहने का आपको मौका मिला है। ऐसे उज्ज्वल कुल में जन्म लेकर अपने कुल की आन-बान-शान का ध्यान रखना। किसी नगरनारि के द्वार पर अपने प्राण गँवाने मत जाना। अरहन्त के चरणों

में समाधिमरण कर लेना। यदि तेरी शादी न हो तो निर्ग्रन्थ साधु बन जाना। यदि साधु न बन सको तो साधुओं की सेवा करते रहना, लेकिन जिनकुल को लजाने का काम मत करना। जिस कुल में अरिहन्तों/सिद्धों की आराधना होती हो, निर्ग्रन्थों की आराधना होती हो, हे मेरे बेटो! हे मेरी बेटियो! उस कुल में तुम किसी जैन से अन्य कुल की कन्या और बेटे को लेकर मत आ जाना। इस 'नमोऽस्तु शासन' को जयवन्त रखना। विद्वानों को कहना चाहिए, लेकिन वे नहीं कह पायेंगे। क्यों नहीं कह पायेंगे? उन्हें अपने हृदय में भरोसा करके कहना चाहिए। समाज अपना ही है, दूसरों का नहीं। समाज की रक्षा करना है, धर्म की रक्षा करना है तो संतान की रक्षा करना पड़ेगी। सनातन धर्म को जीवन्त रखना है तो सन्तान को जीवन्त रखना पड़ेगा।

जन्म देना सीखा है तो पालना सीखना चाहिए था। पिता बनने का शौक था तो संतान को समझाकर रखने की पहले विद्या सीख लेनी चाहिये थी। पिता बनने का शौक है, माँ बनने का शौक है तो पहले बेटा-बेटियों को सँभालने की विद्या सीखना चाहिये। ये मोबाइल की डिबियाँ पकड़ा दी, पता नहीं कहाँ क्या चर्चा हो रही है। पता नहीं क्या हो रहा है। मालूम चला कि कॉलेज के नाम पर धर्म ही नष्ट हो गया। हाँ। 'समयसार' की रक्षा तभी होगी, जब संतान की रक्षा होगी। निर्ग्रन्थ कहाँ से आयेंगे? एक अभियान हाथ में लेना है- हमारा जैनशासन जीवन्त हो आपके माध्यम से, क्योंकि वृद्ध वृद्ध को ही समझा पायेंगे। आप अपने मित्रों को समझा देना, भैया! हर दर्शन अपने धर्म की रक्षा में लगा हुआ है। हमारा वीतराग दर्शन अपने ही हाथ में है। दुनियाँ की तो बहुत संख्या है, हम ही क्षीण हो जायेंगे। माँ! जिस घर में कोई दूसरे पंथ की बेटी आ जायेगी वो तुम्हारी संतान को वहीं की घंटी बजवायेगी। यदि जैनकुल का पैसा लगेगा और घंटी दूसरे कुल की बजेगी तो नमोऽस्तु शासन का क्या होगा? बहुत अच्छा होगा कि सभी बेटे-बेटियाँ मुनि-आर्यिका बनें। नहीं है सामर्थ्य, तो निजकुल को छोड़कर परकुल की ओर जाने से भी डरना। इतना ध्यान रखना। साढ़े अठारह हजार वर्ष तक इस धर्म को आपको ही तो लेकर चलना है।

आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के सामने एक युवक ने रात्रिभोजन का त्याग किया। आचार्य भगवन्त कहते हैं 'इसकी पीठ ठोको। ये सौधर्म इन्द्र से बड़ा है।' क्यों? सौधर्म इन्द्र क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है, सबकुछ होता है, लेकिन उसकी रात्रिभोजन त्याग की प्रतिज्ञा नहीं होती है, जबकि इसने इतना बड़ा नियम लिया है। यदि आज का युवा धोती-दुपट्टा पहने मुनिराज को पड़गाहन करते मिल जाये, तो जितने बुजुर्ग बैठे हैं, अपनी तरफ से पहले उससे जयजिनेन्द्र कर लेना! वो आपको देखेगा तो कहना, 'शरमाओ मत। मैं जयजिनेन्द्र आपसे बड़े प्रेम से इसलिये कर रहा हूँ, क्योंकि जिनेन्द्र के शासन को तुम जयवन्त कर रहे हो। जैसे मैं

अपनी सम्पत्ति अपने बेटे को सौंपता हूँ, वैसे ही आज मैंने जिनशासन की सम्पत्ति तेरे हाथों में सौंप दी है। भविष्य में तू ही जिनशासन का नाद करायेगा। जिनशासन को आगे तू ही बढ़ायेगा।' कोई युवा धोतीदुपट्टा पहने मिल जाये, जिनवाणी हाथ में लिये मिल जाये, तो उसे आप सबसे पहले जयजिनेन्द्र कर लेना।

भैया! अपन ने बहुत अच्छी तरह से देखा है कि यदि कोई अधिकारी बूढ़ा हो गया, उसका कार्य समाप्त हो गया तो उसकी बड़े सम्मान के साथ बिदाई की जाती है। लेकिन जो नया अधिकारी उसी सीट पर बैठता है, उसका भी उस सीट पर सम्मान के साथ तिलक किया जाता है। अब बुजुर्गों को चाहिये कि आज से युवाओं को तिलक करना प्रारम्भ करो। बेटे! जैसे समाज के बीच में रख करके हमने निर्ग्रन्थों की सेवा की है और जिनेन्द्र भगवन्तों की सेवा की, वैसे तुम भी सेवा करते रहना। इस भूमि पर कोई निर्ग्रन्थ योगी पधार जायें, तो अगवानी करने पहुँच जाना। रागियों की अगवानी अनन्त बार की है, बरातियों की अगवानी अनन्त बार की है। एक बार शिविरार्थियों की अगवानी करो। नगर में कोई भी बरात आये तो पूरा नगर पहुँच जाता है। बेटा! वह तो संसार की वधू से मिलन करने आया है, नवकोटि जीवों की हिंसा करेगा, उसकी तो अगवानी करने पहुँच रहा है। तेरे नगर की सीमा पर कोई दिगम्बर मुनिराज पधार जायें, उनकी अगवानी करने पहुँच जाना और कहना 'हे भावी सिद्ध परमेश्वर! जब तुम सिद्ध बन जाओगे तब माँडना बनाकर मैं आराधना कर पाऊँगा। आज तो आप हमारे सामने खड़े हो, मैं तो पडगाहन करके आहार भी दूँगा।' ऐसा बोलो कि बच्चे-बच्चे की पिच्छि-कमण्डलु पर श्रद्धा और-अधिक जग जावे। साधुओं में भेदभाव नहीं, मुझे तो वीतराग श्रमण-संस्कृति दिखती है।

एक-एक मुनि हमारे जिनशासन के स्तम्भ हैं। वे माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने अपने बेटे को जिनशासन में सौंप दिया हो। ये जितने धोती-दुपट्टा वाले ब्रह्मचारी बैठे हैं, ब्रह्मचारी एक भी भगोड़े नहीं हैं। नहीं तो आप सोचो कि महाराज पुचकार-पुचकार कर लाये हैं। नहीं, भैया! इनके माता-पिता सौंपकर गये हैं। नाटक नहीं करना। वैराग्य है तो घर छोड़ा है।

धर्म की रक्षा हमारे इन युवाओं के हाथ में है। बेटियों से भी मेरा कहना है- वासना का काल दीर्घ नहीं है। धर्म का काल दीर्घ है। भावुकता में चले तो गये दूसरे के घर में, लेकिन हमारी बेटी किसी के घर में सफेद द्रव्य को बना रही हो, लाल द्रव्य को बना रही हो, तब सोचना हाय-हाय! कैसे उज्जवल कुल में जन्मी थी मैं, और आज मेरे साथ क्या हो रहा है? वासनाओं का ऐसा जहर घुल गया है आज युवा-युवतियों में कि कुल-परम्परा को भी भूल जाते हैं।

ब्राह्मी, सुन्दरी को निहारो, जिन्होंने पूछ लिया था 'हे तात! सभा में लोग आपको भेंट दे रहे हैं, क्या आप भी किसी को भेंट देते हो? क्या आप भी किसी को नमस्कार करते हो?' उस समय ऋषभदेव ने कहा था 'बेटियो! मैं किसी को नमस्कार नहीं करता हूँ, लेकिन जिस दिन आपका हाथ किसी वर के हाथ में सौपूँगा,उस दिन मुझे जरूर उसकी विनय करना पड़ेगी।' अहो तात! कदाचित नहीं। ऐसा कभी नहीं हो सकता है कि हमारे निमित्त से मेरे तीर्थंकर पिता को सिर झुकाना पड़े। हे पिताश्री! आज से हम अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करती हैं। धन्य हो बेटियो! जिन्होंने अपने पिता की लाज को बचाया हो। अपने संसार के सुख को छोड़कर तीर्थंकर की लाज को रखा हो। पिता को नीचे नहीं झुकने दिया। धन्य हो उन बेटियों को। हे बेटियो! तुम भी अपने माता-पिता की लाज को नीचे नहीं होने देना। जहाँ वे भेजें, वहीं चले जाना, लेकिन अपने मन का पति चुन कर जिनशासन को बदनाम मत करना। माताओ! सार्वजनिक पढ़ाई ज्यादा अच्छी है कि शील ज्यादा अच्छा है? शील ज्यादा अच्छा है। पढ़नेवालों का इतिहास नहीं लिखा, परन्तु शीलवन्ती नारियों का इतिहास रचा है। चाहे सीता हो या सोमा हो, चाहे द्रोपदी हो या चन्दनबाला हो, इन शीलवन्तियों से देश उज्ज्वल हुआ है और शील गया तो सबकुछ चला गया। बाजार में सीलबंद सामग्री की कीमत होती है। इस भ्रम को निकाल दो कि यह नियतिवादी दर्शन है। एकान्त नहीं है यहाँ पर। फिर तो आप मैनासुन्दरी जैसी कन्या को जन्म दो ना? जिसके पिता ने कह दिया था कि बेटी! माँगो, कौन-सा पति चाहिये तुझे? कन्या ने कह दिया 'पिताश्री! चाहे सुन्दर हो अथवा असुंदर, जो मेरे भाग्य में होगा, वही पति होगा। कुलवंती कन्यायें अपने मुख से अपने पति का वरण नहीं करतीं।' पिता अहंकार में डूब गया 'बेटी! पछतायेगी, फिर तुझे रोना पड़ेगा।' फिर भी मैनासुन्दरी अपने भाग्य पर दृढ़ रही। सिद्धों की आराधना तुम करने जा रहे हो। भले ही सौधर्म इन्द्र, कुबेर कोई बना हो, वो तो पुण्यात्मा है, परंतु जितने दिन तक सिद्धों की आराधना चलेगी, यहाँ पर बैठकर अनन्त की आराधना कर लो। लेकिन द्रव्य अपने घर से लेकर आना, तो-ही बैठकर पूजना करना। एक बार भी ज्ञानी! मिथ्यात्व पर आँख पड़ गई, कोटि-कोटि कर्म का बंध होता है और एक बार भी सिद्धों पर दृष्टि पड़ गई यानी कोटि-कोटि भवों के पाप क्षणमात्र में समाप्त होते हैं।

भो ज्ञानी! जैनदर्शन की प्रत्येक विधा रासायनिक है और इस रासायनिक विधा को तुम लोग बता नहीं पा रहे। विश्व समझता है कि जैनदर्शन क्रियाकाण्ड मात्र है, भ्रम है। जैनदर्शन का अध्यात्म, जैनदर्शन का रसायन, जैनदर्शन की तात्त्विक विद्या सारे विश्व में उत्कृष्टता को प्राप्त है। एक बार मैं विहार करता आ रहा था। रास्ते में कई अजैन बंधु मिलते थे। उनके भद्र परिणाम थे। एक सज्जान बोले- नमोऽस्तु। मैंने कहा कि ये श्रावक कहाँ से आ गया? बोले-

महाराजश्री! वो पारस चैनल पर आपके प्रवचन सुने थे। जैन मुनियों के जो तत्त्व के उपदेश आते हैं, उनसे बच्चों में संस्कार बन रहे हैं। टीवी के नाम पर हम लोग चिड़ते थे, आज हम पारस चैनल खोलकर अपने बच्चों को वीतराग धर्म की बातें सुनवाते हैं। ये अजैन बंधु के शब्द हैं। बानपुर में एक सोनी डॉक्टर साहब थे। वो मुझे बताते थे कि कल ऐसा-ऐसा हुआ है, मंदिर की ये विधि है, ऐसे मंदिर जाना चाहिये। मैंने कहा-कहाँ से सीखे? पारस चैनल से। अच्छा है, दृष्टि है। दुनियाँ सुधर रही हो और आप बिगड़ने जाओ, तो ये अच्छी बात नहीं है।

उपदेश तो तत्त्व के ही होना चाहिये। आज बहुत सारे वकील व जज आये हैं। इन ज्ञानियों से कहना है कि कालाकोट शरीर पर रखें, पर परिणाम काले न हों। काले कारनामें जिसने किये हों, उनको सफेदी तो दिलाना, पर काले की शिक्षा मत देना। भैया! सुनना। रासायनिक क्रिया कैसी है? यहाँ से जो बोला जा रहा है, बोलनेवाला भिन्न है, सुननेवाला भिन्न है। जैसे भाव से वक्ता बोलता है, श्रोता के अंदर वैसी गुदगुदी होती है। कभी मुस्कराता है, कभी गंभीर होता है, कभी हँसने लगता है, कभी ताली बजाने लगता है। वक्ता तो बहुत दूर बैठा हुआ है, वो कह रहा है 'महाराज! हल्दी में चूना डालने से रंग बदलता है, तो अरहन्त की वाणी से मेरा हृदय भी बदलता है।' यही रासायनिक क्रिया है। अशुभ कामुक शब्दों को सुनते ही जीव के परिणाम कामुक हो जाते हैं और शान्त रस का वातावरण हो तो ज्ञानी शान्त हो जाता है। वीर रस में जब सेनापति बोलता है तो युवाओं की भुजायें फड़कने लगती हैं। वाणी में वो ताकत होती है कि कालिया नाग को भी नाचना प्रारम्भ करा देती है। वाणी में वो ताकत होती है कि बामी में बैठा भुजंग बाहर आकर नाचने लगता है। ये वाणी की शक्ति है। जब बीन की आवाज सुनकर कालिया नाग भी शान्त होकर नाच सकता है, तो जिनेन्द्र की वाणी को सुनकर ये काले हृदय शुद्ध न हों, यह हो ही नहीं सकता है। जाओ, आज की चर्चा घर में जरूर करना। आपको अपना घर दिख रहा है। देखो, बिना स्वार्थ के संसार में कोई होता नहीं। मैं तो परम स्वार्थी हूँ, यह मैं पहले से ही कहे देता हूँ। हाँ, यथार्थ मानिये। जब मैं समय पर सामायिक में बैठता हूँ, तब मुझे मेरी आत्मा मात्र दिखती है। आपसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। जब मैं श्रावकाचार में दृष्टि डालता हूँ, तब मुझे वीतराग शासन दिखाई देता है। श्रावकों का धर्म जीवन्त रहेगा तो हमारा श्रमणधर्म भी जीवन्त रहेगा। एक रथ के दो चक्के हैं। दायाँ-बायाँ दोनों चक्के जब होंगे, तभी रथ चलेगा। श्रावकधर्म तभी पलेगा, जब मुनिराज होंगे और मुनिधर्म तब पलेगा, जब श्रावकराज होंगे। इन दोनों के माध्यम से मोक्षमार्ग का रथ चल रहा है। इसलिये इस भूमण्डल पर जितने मुनिराज हों, सबकी वन्दना करना और जितने दिगम्बर मुनिराज हों, इन श्रावकों को वात्सल्य देना, इनका अनादर मत करना। इनको रुष्ट मत करना क्योंकि एक-एक श्रावक को

तोड़ोगे तो पूरी समाज टूट जायेगी। इनके अन्दर वात्सल्य भरना। मुमुक्षु! विष्णुकुमार की कथायें सुनने मात्र को न मिले। मुझे विष्णुकुमार चाहिये। आप लोग विकल्प नहीं करना। आचार्य महावीरकीर्ति मुनिराज! नमोऽस्तु स्वामी। कितना अद्‌भुत वात्सल्य था पहले के मुनियों में। वीरसागर आचार्यभगवन्त की सल्लेखना चल रही थी। आचार्य महावीरकीर्ति महाराज, आचार्य आदिसागर महाराज के शिष्य, जैसे ही जयपुर में पहुँचे, आचार्य वीरसागर महाराज मुस्करा गये, जो कि आचार्य शांतिसागर की परम्परा के पट्टाचार्य थे।

जीव अपनी प्रज्ञा का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। एक वे हैं जो पीछे जा रहे हैं। मंजिल तय ही नहीं कर पाओगे। जो पच्चीस वर्ष तक, पचास वर्ष तक भूत चढ़े,. उसे मत दोहराइये। तत्त्व की प्ररूपणा का प्रयोग तो तुमने किया, पर क्या किया? तेरे पास इतनी बुद्धि नहीं आयी। हम अपने आचार्यमहाराज के पादमूल में बैठ करके सरस्वती की आराधना करते और समयसार के तत्त्व की प्ररूपणा अनेकान्त दृष्टि से करते। आखिर हमारी अखण्ड समाज क्यों विभागों में बँटी? आपने शक्ति का नाश विरोध में किया। यदि वही शक्ति विधि में लगा दी होती, तो हम सब आज भी एकसाथ बैठे होते।

'अनेकान्त में जो आनन्द है, वह एकान्त में नहीं है?' जिन वचसि रमन्ते, ये स्वयंवान्त मोहाः। भगवान जिनेन्द्र के वचन में जो रमण करता है, उसके मोह का वमन हो जाता है। जिसका मोह वमन हो गया, वह निर्मोही परमात्मा हो जाता है। विधि का व्याख्यान करना सीखो, निषेध में शक्ति का नाश करना मत सीखो। समय देखो, आयु कम है और ज्ञानी! किसे अपना मानते हो? भैया! सुनो। जिसे सदियों से तुम अपना नहीं मानते थे, अन्त समय वे काम में आ गये। जिन्हें अपना मानते रहे, वे देखने तक नहीं आये। हाँ, ऐसा नियोग बनता है। इन वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन से तुम अपरिचित थे और बेटे से परिचित थे। अंतिम समय वे घड़ियाँ आयीं कि वो तो कमरे के एक कोने में फफककर रोने लग गया और वीतरागी गुरु कान में णमोकार सुना रहे थे। इसलिए भैया! शक्ति को गठित करो। जो नगर में दुःखी जीव हों, क्लान्त जीव हों, अंतिम श्वासें भर रहे हों, इनके घर में जाकर इनसे प्रेम की दो बातें कर लेना। धन मत देना, लेकिन प्रेम दे देना। विश्वास रखना, उनके आधे कष्ट उसी क्षण दूर हो जायेंगे। पैसे देनेवाले बहुत मिल जायेंगे, लेकिन समय देकर सुननेवाले बहुत कम मिलेंगे। भैया! विश्वास रखो। यहाँ लोग प्रवचन सुनने मात्र ही नहीं आते। थोड़ी देर, क्षण भर शान्ति की अनुभूति करने को आते हैं। बोले- महाराज! प्रवचन तो हम पारस चैनल में भी सुन लेंगे, लेकिन शान्ति का जो वेदन होता है, उस वेदन के लिए यहाँ से हिल नहीं पाते हैं। इसलिये मैं दूर से दौड़ा चला आया हूँ। देखो भैया! क्या हो गया? माँ अपने बेटे को आँचल का पान कराये, लेकिन रोते बेटे

को आँचल के पास भी रख लेगी तो वह बिलखता बेटा चुप हो जायेगा। बस, हे माँ! पर्यायें अनन्त मिली है। जिसे तू आज पति बोल रही है, वो पुत्र भी हो चुका है। इसलिये किसी एक सम्बन्ध के राग में दूसरे सम्बन्ध से द्वेष मत करना।

'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' की टीका में लिखी है अठारह नाते की कथा। एक ही भव में एक ही जीव के साथ अठारह रिश्ते बन गये। कौन, किसका, कौन होता है। एक ही जीव के साथ एक ही भव में अठारह नाते। किसको अपना मानते हो? विचित्र लीला है जगत् की एक यादव कुल में कन्या थी और इकलौती बेटी थी। इकलौती होने के नाते पूरे परिवार की शुभकामनायें उसे रोज मिलती थी। अड़ोस-पड़ोस के लोग भी उस कन्या के प्रति अच्छे भाव रखते थे। अशुभ कर्म के नियोग से उसे असाध्य रोग हो गया, चन्द दिनों के अन्दर उस कन्या की मृत्यु हो गई। तीन वर्ष बाद एक दृश्य देखने को मिला। एक बालिका उसी घर की ओर आ रही है और कहती है कि ये मेरे पिताश्री हैं। यहाँ मेरे खिलौने रखे हुए हैं। ये मेरा मकान है। मुझे दे दो। उस मरी हुई कन्या की जो बुआ थी उससे वो कन्या कहती है कि मैंने घर के चार घर आगे एक साहू के घर में जन्म ले लिया है। यादव की कन्या ने साहू के घर में जन्म ले लिया, अब देखो संसार की दशा। जिस कन्या के लिये सारा परिवार बिलख रहा था, रो रहा था, आज वही कन्या दूसरे घर में आकर रह रही है कि मेरा घर है, मेरी बुआ, मेरे पिता हैं। वही बुआ डण्डा लेकर आयी, 'भाग मेरे घर से।' मैं दृश्य देख रहा था। उस दृश्य को देखते ही मैंने निर्णय कर लिया था कि कोई किसी का होता नहीं। ये पर्याय का राग होता है। पर्यायी का कोई राग नहीं होता। यदि पर्यायी में राग होता, तो वह मुख से बोल रही है कि मैं वही हूँ, तब भी बेचारी को खिलौने तो दूर रहे, डण्डा और मार दिया। मैंने कहा, ज्ञानी बेटा! तेरे साथ भी ऐसा ही होगा। तू भी कितने घरों को सता कर आया है, कितने घरों को रुलाकर आया है। अब ऐसे घर में जाना, जिस घर से कभी लौट कर न आना पड़े- वो घर सिद्धालय है। उस दिन का निर्णय था, उस कन्या को देखकर के। उसे जातिस्मरण हो गया था। परंतु ध्यान रखना, जातिस्मरण भूत का होता है, भविष्य का नहीं होता। आजकल भविष्य का जातिस्मरण होकर जो तीर्थंकर बन गये हैं, ये आगम में कहीं वर्णन नहीं है। जातिस्मरण भूत का होता है, भविष्य का नहीं होता। न्यायशास्त्र पढ़िये। बताइये कौन किसका हुआ? लेकिन भैया! इतना ध्यान रखना कि किसी को हेय मत कहना। आज जो हेय बने दिख रहे हैं, ज्ञानी! वे भी उपादेय हो जायेंगे। ज्ञानी! जब तक पुण्य काम कर रहा है, तब तक सबकी प्रीति झलक रही है। जब मेरा पुण्य नहीं होगा, तो मेरे ही मेरे नहीं होंगे। जब मैं मेरा नहीं होऊँगा, तो ये मेरे क्या होंगे? जिस तन में मैं रहता हूँ, वह तन ही मेरा नहीं बचेगा, तो दुनियाँ के शरीर मेरे लिए क्या बचेंगे? कौन होगा?

जागृत होकर जीना, अब मरके नहीं जीना। सोकर नहीं जीना, जागते-जागते जीना। जितने सम्बंधी हैं, उनके साथ रह लेना, लेकिन अंदर से इनको अपना मानना मत। 'जब भी दगा देगा, तो सगा ही देगा', विश्वास न हो तो विभीषण से पूछ लो। राजनीति की दृष्टि से विभीषण ने अच्छा नहीं किया। सगे भाई का रहस्य श्रीराम को सुनाकर आ गया। राजनीति की दृष्टि से बता रहा हूँ। 'घर का भेदी लंका ढाये' उसी दिन से कहावत बन गई। धर्मनीति से ठीक किया विभीषण ने, कि असत्य का पक्ष नहीं लिया, रावण का पक्ष नहीं लिया, परन्तु राजनीति कहेगी कि भैया! तूने गलत किया है। तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी से पूछना, 'हे प्रभो! आपके ऊपर उपसर्ग करने कौन आया था?' कमठ सगा भाई था। सुकुमाल, सुकौशल मुनिराज से पूछना कि आपके तन पर उपसर्ग किसने किया? माँ और भाभी थी। भैया! बच कर रहियो- 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्'। बचके रहना, क्योंकि जो जितने नजदीक रहते हैं, उनको तुम्हारी सब बातें मालूम होती हैं, वे ही तुम्हारे लिये छलेंगे। जो है, सो है।

केवली के ज्ञान में जैसा झलक रहा होगा, वैसा ही होगा, तुम चिंता मत करो। जो है सो है, तनाव करने की क्या आवश्यकता? हे ज्ञानी! तूने अपने जीवन में घी पिया, दूध पिया, लेकिन आज के बच्चों को इतना अच्छा पानी भी पीने को नहीं मिलता। खूब तेल लगाया, काले के गोरे हो गये, लेकिन अब वे भी नहीं बचे। बताओ क्या होगा?

जिस पर्याय की परिणति जैसी है, उसे केवली भी नहीं टाल पाएँगे।

जं जस्स जम्हि देसे, जेण विहाणेण जम्हि कालम्हि।
णादं जिणेहिं णियदं, जम्मं वा अहव मरणं वा।।320।।
तं तस्स तम्हि देसे, तेण विहाणेण तम्हि कालम्हि।
को सक्कदि वारेदुं, इन्दो वा अह जिणिंदो वा।।321।। (कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

जिस जीव का, जिस देश में, जिस काल में, जिस भाव में आयुकर्म निश्चित हुआ है, उसको वैसा होना है। उसे जिनेन्द्र भी नहीं टाल पाये थे। यहाँ गाथा में 'णियदं' शब्द आया है, उसका आशय यह है कि नियत को नियतरूप जानते हैं, अनियत को अनियतरूप जानते हैं। एकांत नियतिवाद तो मिथ्यात्व है, जिसे 363 मिथ्यामतों में से एक माना गया है। (गोम्मटसार कर्मकाण्ड)। अपने परिणामों को पवित्र करो। बच्चे घर में कितने चंचल होते, वे बालक इतने शान्त बैठे रहते हैं। और आश्चर्य ये है कि यदि दो मातायें एकसाथ बैठ जायें तो बाजार लग जाये। यहाँ हजारों मातायें बैठी रहती हैं, लेकिन आवाज भी नहीं आती। क्यों माताओ! आप अपने नारीपर्याय के गुण को कहाँ रखकर आ जाती हो हमारे पास? एक बात लिख लेना कि धार्मिक अनुष्ठानों में ज्यादा व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती है। व्यवस्थित रहना सीखो,

व्यवस्था बनाना छोड़ो। इस वर्ष आठ गजरथ हुए। व्यवस्था बनाना समाप्त कर दो, व्यवस्थित रहने लग जाओ। तीर्थंकर का गजरथ है, तीर्थंकर का कल्याणक है, वहाँ देव व्यवस्थायें बनाते हैं। जहाँ सौधर्म इंद्र खड़ा हो, क्षायिक सम्यग्दृष्टि, वहाँ व्यवस्था की आवश्यकता क्या है?

ज्ञानी! हर प्राणी के अन्दर सीधापन है। मैं किसी को अज्ञानी क्यों नहीं बोलता हूँ? क्योंकि भैया! कोई अज्ञानी है ही नहीं। हर व्यक्ति सीधा है। पत्थर उठाना, ठण्डा मिलेगा, लेकिन यदि रगड़ दिया, जैसे दोनों पत्थरों को भिड़ाया, तो अग्नि निकल पड़ी, चिंगारी। हर व्यक्ति ठण्डा होता है। क्या करें? एक दूसरे के साथ भिड़ जाते हैं तो चिंगारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यहाँ क्यों ठण्डे हैं? सबको शीतल पानी छिड़का जा रहा है जिनवाणी का। घर्षण नहीं हो रहा है, इसलिये सब ठण्डे बैठे हैं। पत्थर तो ठण्ड ही होते हैं। उन्हें रगड़ो मत। दीक्षा से आज तक मुझे तो गर्मी मिली ही नहीं है। किसी चातुर्मास, किसी वाचना में विवाद सुनने नहीं मिला मुझे। समाज कहीं की भी खराब नहीं होती है। दिगम्बर जैन समाज पानी छानकर पीने वाली, तीर्थंकर का अभिषेक करनेवाली, निर्ग्रन्थ मुनियों को दान देनेवाली, खराब हो सकती है क्या? पूरे देश की समाज गुरुभक्त है। ज्ञानी बोलते हैं- महाराज! ऐसा आशीर्वाद दे दो कि आँख बन्द होने के बाद आँख जब खुले, तो जैनकुल में ही जन्म हो। ऐसा क्यों नहीं बोलते कि आँख का खुलना और बन्द होना ही बन्द हो जाये और शिवालय पहुँच जायें ?

जो आनन्द श्रुत में है, वो जगत् में कहीं दिखाई देता नहीं। यही कारण है कि घण्टे-घण्टे निकल जाते हैं, पता ही नहीं चलता। भैया! जो भक्तों को देखकर प्रसन्न होते हैं, अभक्तों को देखकर नाराज होते हैं, वे महाराज नहीं हो सकते, तो भगवान कहाँ हो सकते? जो नाराज होता है, वह महाराज नहीं होता और जो महाराज होता है, वो नाराज नहीं होता। भैया! ऐसा मत करना। हे ज्ञानी! तुझे उपवास करना हो तो कर लिया करना, लेकिन मन की इच्छा पूरी नहीं हुई सो समाज में भूख हड़ताल में भूख हड़ताल मत करना।

कोई कहने लग जाये कि मैं पंचकल्याणक करना चाहता हूँ। यदि समाज नहीं करती तो मैं आहार को नहीं उठूँगा। तू महाराज बन गया, पूरी समाज के लिए तू ठेगों बन के आ गया। जैसे गाय, मरखनी गाय को ठेगों डाल देते, भैया! ऐसा मत करियो। 'साधु कार्यं तपः श्रुतं' तप करो, श्रुत की आराधना करो, रूठ कर मत बैठ जाना। आज प्रवचन नहीं करूँगा, क्यों? आज तुम पाँच मिनिट देर से आये हो। ज्ञानी! अच्छा सीचना सीखो ना? महाराज बन गये, चौके में पहुँचे, 'हूँ-हूँ' करके पूरे चौके को अस्त-व्यस्त कर दिया। व्यन्तर बनेगा 'हूँ-हूँ' करेगा तो। ये तो कहता नहीं है कि तुमने उसको क्या दिया? वह तो सुबह से जगकर कुए से शुद्ध पानी

लेकर आया। कितनी मेहनत की? श्रद्धापूर्वक तुमको हे स्वामी! कहकर पुकार रहा है। कौन तुझे स्वामी कहता? ये अरहन्त की मुद्रा है, सो स्वामी बन गया। इसलिये आहार करने भी जाना तो किसी श्रावक को सताना मत। शान्ति से दृष्टि को नीची करके प्रासुक शुद्ध आहार करके आ जाना। अन्तराय भी हो जाये तो मुस्करा कर चले आना, मुँह नहीं फुलाना। हाँ, ये अरहन्त की मुद्रा है। ये टुकड़ों के लिए नहीं है। ये शिवत्व की प्राप्ति के लिए है। इसे लजाना मत। जितने युवा बैठे हैं, तुम्हारे मन में आ रहा हो कि मैं मुनि बन जाऊँ, तो इतना सुन लेना कि इतना कर सको तो मन में विचार लाना, यदि नहीं कर सको तो वीतरागी मुनियों की पूजा करते रहना। 'हूँ-हूँ' नहीं करना।

हे प्रभो! समस्त आडम्बर का आपने त्याग कर दिया है। जैसे माँ अपनी कोख में बच्चों को सहलाती है, हे प्रभो! आपने समवसरण की निश्रा में प्राणिमात्र को स्थान दिया है। सिंह आया तो उसको भी स्थान है, अजगर आया तो उसको भी स्थान है। ये जिनशासन है। मैं उस परमात्मा का आराधक हूँ, जिसमें रागादि दोष नहीं होते। भैया! रागादि दोष होते, तो हम चौबीस ही भगवान् और अनन्तानन्त केवलियों की आराधना कैसे कर पाते? एक-एक रूठ जाये तो हमारा जीवन तो इसी में चला गया, हम किस-किस को मनाते रहेंगे? श्रावक अपना घर देखें कि इन रूठे भगवानों को देखें? मुनि बन गए तो अपनी आत्मा को देखें। हमें तो बड़े अच्छे भगवान मिल गये। उन्हें न राग है, न द्वेष है। उन्हें पूजने तो पूजो, नहीं पूजने तो न पूजो। उन्हें तुम्हारी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है। कछू लोग कहन लगत- महाराज! जिस दिन हम अभिषेक करने न पहुँचें, उस दिन तो भगवान उपासे बैठे रहत। ज्ञानी! तुझे अपने कर्म का प्रक्षालन करना हो सो पूजा करने चले जाना। भगवान् उपासे नहीं रहते, उनका तो कवलाहार का त्याग है। उनके तो आहार होते ही नहीं हैं। ज्ञानियो! हम भगवान् को भगवान बनाने के लिये पूजा करने नहीं जाते हैं। अपने अघ का नाश करने के लिये भगवान् की पूजा करने जाते हैं। अपने परिणामों को पवित्र करना हो तो प्रतिदिन पूजा करना। आज भी धर्म है। मैं जानकर ऐसा कह रहा हूँ, क्योंकि निषेधरूप जो शैली चली है, उससे लोगों के हृदय कुलषित होते हैं। यदि प्रशंसा नहीं कर सकते, तो आप निन्दा भी नहीं करो। पूजा में चिटक की जगह किसी नू धूप भी चढ़ा दी हो, तो ज्ञानी! तुम धूप-जैसे मत जलने लगना। तीनलोक के नाथ के सामने तुम कषाय करोगे तो पुण्य करने कहाँ जाओगे? सामने-सामने कोई भूल भी कर जाये, तो बाद में समझा देना। भैया! तुमने बहुत अच्छा किया कि पूजा की, लेकिन थोड़ी भूल हो गई थी। उसको सुधार लेना, वो तुम्हारे पैर पड़ेगा और अपनी भूल को सुधार लेगा। यदि तुम वहीं बरसने लगे, तो वो कहेगा कि तुम कम हो तो हम तुमसे ज्यादा बड़े हैं। भावों की विशुद्धि के

लिये भगवान् के पास आये हो कि लड़ने के लिये आये हो? कोई भूल हो जाये तो बता देना, समझा देना। प्रेम से कह दो, क्या जा रहा तुम्हारा? जिसके रागादिक नहीं हैं, उसको पूजता हूँ। हे प्रभो! आपका ज्ञान अतीन्द्रिय है, पाप से रहित है। ऐसे देवों के देव मेरे हृदय में विराजमान हों।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---XXX---

भो प्रज्ञ!
दिव्यध्वनि का
सार है
एकत्व-विभक्त।
निज
ध्रुव-आत्मा पर
रखो
अनुराग।
अन्य
जगत में
कण मात्र भी
तेरा है नहीं।
तू
उनसे
भिन्न है,
वे
तेरे से
भिन्न हैं।
निज
ध्रुव चैतन्य
मात्र
अभिन्न है।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

स्भावना द्वात्रिंशतिका

विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्तमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ।।20।।

अन्वयार्थ :- (यत्र) जहाँ अर्थात् आशय यह है कि जिसके द्वारा (विलोक्यमाने) अवलोकन (सति) किए जाने पर (इदम्) यह (विश्वं)विश्व (स्पष्टं) स्पष्ट रूप से (विविक्तं) पृथक्-पृथक् (विलोक्यते) दिखाई देता है, (शुद्धं) शुद्ध (शिवं) शिव (शान्तं) शान्त और (अनाद्यनन्तं) आदि व अन्त से रहित (आप्तं-देवं) उस आप्त देव की (शरणं प्रपद्ये) मैं शरण को प्राप्त होता हूँ।

सामायिक देशना

अहो ज्ञानियो! जयवंत हो 'श्री जिननमोऽस्तु शासन', वीतराग श्रमणसंस्कृति। हम सभी अंतिम तीर्थेश भगवान् महावीर स्वामी के शासन में विराजते हैं।

आज श्रुतपंचमी है। जयवंत हों श्रुतदेवता, 'जिनश्रुत', वीतराग-जिनेन्द्रवाणी। श्रुत की सुरक्षा के लिए हम श्रुतपंचमी पर्व मनाते हैं।

श्री वर्द्धमान स्वामी, तीर्थंकर देव, सर्वज्ञ, वीतराग, परम भट्टारक के निर्वाण के उपरान्त पाँच श्रुतकेवली हुए, उनमें अंत के श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी हुए।

अहो? धन्य है वह भूमि जहाँ आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने चौबीस हजार श्रमणों के साथ मंगल विहार किया होगा। अहो-अहो! क्या दृश्य होता होगा जब वह चौबीस हजार दिगम्बर साधु गाँव की गलियों में चर्या को निकलते होंगे। जयवन्त हो 'नमोऽस्तु शासन', जयवन्त हों भद्रबाहु स्वामी, श्री जिन वीतराग शासन।

भद्रबाहु स्वामी तक तो द्वादशांग शास्त्र के प्ररूपण से व्यवहार-निश्चयात्मक मोक्षमार्ग यथार्थ एवं सम्पूर्ण रूप में प्रवर्त्तता ही रहा। तत्पश्चात कालदोष से अंगों के ज्ञान की व्युच्छित्ति होती गई। कितने ही मुनि शिथिलाचारी हुए, उनमें श्वेतपट्ट हुए। उन्होंने शिथिलाचार पोषने को स्वतंत्र सूत्र बनाये। उनमें शिथिलाचार पोषने की अनेकानेक कथायें लिखकर अपना संप्रदाय दृढ़ किया, जो अभी तक प्रसिद्ध है। परन्तु जो जिनसूत्र की आज्ञा में रहे, उनका आचार यथावत् ही रहा। वे दिगंबर कहलाये। दिगम्बर संप्रदाय में श्री वर्द्धमान स्वामी के निर्वाण (मोक्ष) होने के बाद इसी परम्परा में धरसेन नामा मुनि हुए, उनको आग्रयणीय पूर्व के पाँचवें वस्तुअधिकार के महाकर्म प्रकृति नामा चौथे प्राभृत का ज्ञान था। यह प्राभृत भूतबली और पुष्पदंत नाम के

दो युगल मुनियों को पारायण कराया। पश्चात् उन दोनों श्रमणों ने आगामी कालदोष से बुद्धि की मंदता जान उस प्राभृत के अनुसार ''षट्खण्ड सूत्र'' लिखकर उनकी प्रवृत्ति की। उनके बाद जो श्रमण (मुनि) हुए, उन्होंने उन्हीं सूत्रों को पढ़कर उनकी टीका विस्तार रूप करके 'धवल', 'महाधवल' सिद्धांतग्रंथ रचे। उनके आधार पर अन्य उत्तरवर्ती आचार्यभगवंतों ने गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार आदि शास्त्रों का उद्योतन किया।

दिगम्बर दीक्षा अर्थात् निर्वाण दीक्षा। वीर दीक्षा जीवन में मात्र एक बार ही होती है। परिणामों की विशुद्धि के लिए ही निर्ग्रन्थता है। धन्य हैं वे जीव, जिन्होंने परविषयों से शून्य होकर, निज में स्थिर होकर, कैवल्य दिवाकर को उद्घाटित कर लिया। जयवंत हों वे केवली भगवंत, अरिहंतदेव जिन्होंने कैवल्यज्योति को प्रकट किया है।

तुम किसी को क्यों दोष देते हो? जो तुम्हें कष्ट दे रहा है, वह तो निमित्त मात्र है। तुम किसी की सहायता की ओर क्यों निहारते हो? होगा वही जो तेरे कर्म का उदय होगा। तुम अपनी प्रज्ञा को भूतबली स्वामी की ओर क्यों नहीं ले जाते हो? प्रज्ञा है, तो उसे संसार में भटकने के लिए प्रयोग मत करो, वरन् अपनी आत्मा के कल्याण के लिए प्रयोग करो। अहो ज्ञानियो? जिस प्रज्ञा से बंध किया है, उसी से निर्बंध होगा। अहो ज्ञानी? प्रज्ञा की महिमा देखो। जितने भी विशिष्ट ज्ञानी होते हैं, वे सभी परिणामों की विशुद्धि से ही होते हैं। ज्ञान हो भी जावे, लेकिन परिणामों की कुटिलता होते ही सब ज्ञान क्षीण हो जाता है। प्रशस्त चिन्तन से प्रज्ञा की उन्नति होती है, विशुद्धि होती है। अप्रशस्त चिन्तन से, कषाय से अनुरंजित होकर जीव श्रुत की आराधना से शून्य हो जाता है और जगत् की कषाय में लग जाता है। उत्कर्ष-अपकर्ष हमारे परिणामों पर है। कोई हमारा उत्कर्ष-अपकर्ष का कर्त्ता नहीं हो सकता है। उत्कृष्ट पुरुष कभी किसी की बात को नहीं सुनता है, वरन् अपनी साधना में लवलीन रहता है।

अहो ज्ञानियो? संतान न हो तो आप चिन्ता करते हो, आपको सम्पत्ति की चिंता रहती है कि कौन सँभालेगा। श्रुत की चिन्ता के लिए निहारो आप। भद्रबाहु स्वामी अंतिम श्रुतकेवली हुए। कैसे हुए? सुनें। एक बालक गोटी पर गोटी रख रहा था। गोटी पर गोटी जमा रहा था बालक धूल में। अब तो माँ, हे जननी! तू स्तनपान की जगह कठोर बोतल पकड़ा रही है। अब बालक भी कठोर हो गये हैं। धन्य हो गोवर्धन स्वामी की भविष्यवाणी, यह बालक अंतिम श्रुतकेवली बनेगा और जिनशासन की, श्रुत की रक्षा करेगा तथा जिनशासन जयवंत करेगा।

आचार्यमहाराज की अंगुली पकड़कर बालक चल दिया घर की ओर। (पुराण की चर्चा करने में परिणामों की विशुद्धि होती है।) गोवर्धन स्वामी बालक के जनक से कहने लगे, 'मुझे

आपका बेटा चाहिये।' जनक बोले, 'बालक की माँ से पूछना पड़ेगा।' आचार्य महाराज बोले 'मैं आपके बेटे को जिनागम की शिक्षा देना चाहता हूँ।'

ज्ञानियो! आत्मदेव से मिलन करना है तो राग का अभाव करना पड़ेगा। राग ही रुलाता हे, राग ही भ्रमण कराता है संसार में।

मनीषियो! सामान्य जीव के राग की क्या बात करें? तीर्थंकर की जन्मदात्री माँ तीर्थंकर के दीक्षाकाल में रुदन कर रही थी। जहाँ वर्द्धमान की दीक्षा हो रही थी, उस वन में माँ विलखती हुई पहुँच गई। बेटा! दीक्षा मत लो, मुझे छोड़कर मत जाओ। इस विशाल राज्य का संचालन कौन करेगा? माँ के रुदन को देखकर सौधर्म इन्द्र की शची इन्द्राणी कहती है 'हे त्रिजगत की माँ! तीनलोक के नाथ को जन्म देने वाली माँ! तुम क्यों बिलखती हो? ये तो इसका नियोग है, इसको कौन टाल सकता है? ये आपके घर में रहने के लिये नहीं आये हैं। ये विश्व के घरों को सुरक्षित करने के लिये आये हैं। कुछ वे लोग होते हैं जिनकी यादें परिवार कर पाता है। कुछ लोग वे होते हैं जिनकी यादें माँ भी नहीं कर पाती है। कुछ वे लोग होते हैं जिनकी यादें मोहल्ले वाले करते हैं। कुछ वे लोग होते हैं जिनकी याद राष्ट्र करता है। और ऐसे भी लोग हुआ करते हैं जिनकी याद सारा विश्व किया करता है, उनका नाम तीर्थंकर भगवान होता है।

हे वर्द्धमान! जयवन्त हों आप। मैं भी इस बात की सराहना करता हूँ। भले पंचमकाल में जन्म लिया हो, परन्तु आपके शासन में जन्मा हूँ, बड़ा पुण्य का उदय है। विश्वास रखना ज्ञानियो! आप तो परम सौभाग्यशाली हो कि जिस कुल में जिनवाणी जयवन्त होती है उसमें जन्म हुआ है। माँ कहती है- भगवन्! उसके पिता से पूछो न, सामने तो बैठे हुये हैं? वे दोनों प्राणी ये भूल कर रहे थे कि जिसके सामने मैं चर्चा कर रहा हूँ वह कोई सामान्य जीव नहीं है, इस भूमण्डल के एक प्रधान दिग्म्बराचार्य गोवर्द्धनाचार्य हैं। माँ सोच रही है कि महाराज बातों में आ जायेंगे। स्वामी! क्या कहते हो? अच्छा, तुम ऐसा करो, तुम दोनों ही तो खड़े हो, निर्णय करके बोलो, क्या करना? बेटा तो लेके जाऊँगा। और जिसके लिये वीतरागी दिगम्बराचार्य प्राचार्य बनके स्वयं खड़ा हो, कि मैं तुम्हारे बेटे को जैनविद्या देना चाहता हूँ। एकदो विद्या नहीं, 'मूलाचार' जी में लिखा हुआ है कि दिगम्बराचार्य को चौदह विद्याओं का ज्ञाता होना चाहिए। इन चौदह विद्याओं का नाम चौदह पूर्व है और जिस काल में जितना साहित्य हो, उतना ज्ञान तो होना ही चाहिये। जैनमुनि बनके मात्र आहारचर्या करके और विश्राम करके जीवन बिता देना, ये पृथ्वी के लिये बहुत शोभा की बात नहीं है। जो निर्ग्रंथ मुनि बनके जिनशासन की प्रभावना नहीं करता है, वह भूमि पर भारभूत है। यह वीरनंदि स्वामी का कथन है, 'आचारसार'

में लिखा है। दिगम्बर मुनि बनकर जिनवाणी के स्वाध्याय में लग जाना चाहिये, शेष समपूर्ण काम से विराम ले लेना चाहिये। ''साधु कार्यं तपःश्रुतं''। अब समझने का समय है, जानने का समय है। साधु कोई दूसरा काम करते दिख जाये तो धीरे-से कहना-भो स्वामी! नमोऽस्तु। दुनियाँ के काम तुम्हारे नहीं हैं कि मेरी संस्था कैसे चलती, तेरी संस्था कैसे चलती? मेरे परिणामों की संस्था सँभालो कि कैसे चले और शिवालय की ओर कैसे जायें? दिगम्बर मुनि के मात्र दो ही काम हैं। तपस्या करना और श्रुत की आराधना करना। दिगम्बर मुनि का कोई तीसरा काम जिनागम में, सम्पूर्ण द्वादशांग में है ही नहीं।

दाणं पूया मुक्खं, सावयधम्मे ण सावया तेण विणा।
झाणाज्झयणं मुक्खं, जदिधम्मे तं विणा तहा सो वि।।11।। (रयणसार)

दान करना और पूजन करना, ये श्रावक का मुख्य धर्म है। यदि श्रावक दान व पूजा नहीं करता हो, तो वह श्रावक शोभा को प्राप्त नहीं होता। ध्यान करना और अध्ययन करना यति का मुख्य धर्म है। यदि ध्यान व अध्ययन मुनि नहीं करता है, तो मुनि 'मुनि' कहलाने का पात्र नहीं बनता है, शोभा को प्राप्त नहीं होता है। स्वामी! आपको कोई दूसरा काम करते ये आँखें न देखें। इन आँखों का यही पुण्य है कि दिगम्बर निर्ग्रन्थ योगी को ज्ञान व ध्यान में लीन देखें। आयुकर्म के निषेक नष्ट हो रहे हैं। ज्ञानी! आत्मदृष्टि के परिणाम भव-भव में नहीं मिलते।

वो माता-पिता कितने धन्य होंगे जिनके द्वार पर सैकड़ों योगियों के साथ आचार्य खड़े थे। जब कहा कि इस बेटे को दे दो, तो भद्रबाहु स्वामी के पिता जी उच्च कोटि के दर्शनाचार्य थे, भद्र ब्राह्मण। देखो, भैया! क्षत्रियों से निकली, ब्राह्मणों ने झेली और जैनी भोग कर रहे हैं ये जिनवाणी। क्षत्रिय नाथपुत्र वर्द्धमान के मुख से निकली ये वाग्गंगा और गौतम गणधर ने झेली बग्गंगा , भद्रबाहु स्वामी ने झेली, और आज हम जैनियों के हाथों में हैं हम मजा लूट रहे। शुद्ध क्षत्रिय लोग हैं। वेदों-उपनिषदों में लिखा है कि ये वीतराग धर्म क्षत्रियधर्म है। जो ऋषियां ने अध्यात्मविद्या पायी है, वो क्षत्रियों से लेकर आये हैं कि वे क्षत्रिय तीर्थंकर भगवान् थे। जो प्राणिमात्र को अपनी छाती से लगा ले, उसी का नाम क्षत्रिय है। निर्णय हो गया कि हम अपने बेटे को आपको दे तो सकते हैं, लेकिन एक शर्त आपको स्वीकार करना होगी।

बोले-सोलह वर्ष तक इसको अध्ययन कराओगे, फिर दीक्षा नहीं दोगे।

-तेरी शर्त मुझे स्वीकार हे, लेकिन मेरी शर्त के साथ।

-सोलह वर्ष में जैसे ही इसकी विद्या पूर्ण हो जायेगी, मैं इसको आपके पास भेजूँगा। यदि ये पुनः मेरे पास आ गया, तो मैं आपसे पूछने नहीं आऊँगा, फिर मैं उसी दिन दीक्षा दे दूँगा।

–वे ज्योतिषाचार्यजी धीरे–से क्या कहते हैं? स्वामी! स्वामी सुनो ना। ऐसे नक्षत्र देवता संलग्न होता है, ऐसे मुहूर्त होते हैं कुण्डली में, जिनमें स्पष्ट उद्‍घाटित होता है कि यह पुण्यात्मा जीव जैनाचार्य बनेगा। हमारी जैन आम्नाय में ''करलक्खण' नाम का एक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में किस व्यक्ति को दीक्षा देना चाहिये, किसको नहीं देना चाहिये, इसका वर्णन है। उसकी हस्तरेखा को देख करके और जरूरी नहीं है कि हाथ पकड़कर ही हस्तरेखा देखो। बस, दिख जाता है। जिसके मणिबंध पर तीन रेखायें सबल हों, ज्ञानी! वह जीव निरोग जीवन व्यतीत करेगा। जिसके मणिबंध पर रेखायें जवा के आकार की हों, ऐसे व्यक्ति को शीघ्र दीक्षा ले लेना चाहिए। जिसकी ये रेखायें टेड़ी–मेड़ी, कटी–फटी हों, उसे तनक दूर रहना चाहिये। मणिबंध पर पूरा जीवन का इतिहास लिखा होता है। कौन आचार्य बनने का पात्र है, कौन उपाध्याय बनने का पात्र है और कौन मुनि बनके जीवन जीयेगा, ये सब हाथ पर लिखा होता है और दीक्षादाता गुरु जिस नक्षत्र में दीक्षा देता है, उस नक्षत्र से फलित होता है कि जीव आचार्य बनेगा कि नहीं बनेगा। गुरु ने ऐसे नक्षत्र में दीक्षा दी है कि तुम कितने ही ज्ञानी बने रहो, लेकिन कभी आचार्य नहीं बन पाओगे। ये नक्षत्र भी ज्ञानी दिगम्बर आचार्य के पास होते हैं। गूढ़विद्या यदि आचार्यों के पास न हो, तो आचार्यत्व का निर्वाह कैसे करेंगे? इसलिये आचार्यों को विद्याओं का ज्ञाता तो होना चाहिये, लेकिन आचार्य को इन विद्याओं का व्यापारी नहीं होना चाहिए, आजीविका नहीं चलाना चाहिये। जो आजीविका चलाता है, नियम से कुधर्म को प्राप्त होता है। गोवर्द्धनाचार्य भद्रबाहु स्वामी को उनके पिता से माँग कर ले गये। सोलह वर्ष तक इस महाप्रज्ञावंत जीव ने अपने गुरुमहाराज के चरणों में बैठकर द्वादशांग का पाठ किया था। सोलह वर्ष के संस्कार पूरे हुये। श्रावक एक चातुर्मास में प्रवचन सुनता है तो दौड़ा–दौड़ा चला आता है, मुनिराज बन जाता है, फिर जिसने सोलह वर्ष तक गुरु की वाणी सुनी हो, वह घर में जायेगा क्या अब? स्वामी! विद्या पूरी हो गई, दीक्षाम् देहि।

नहीं वत्स! दिगम्बर मुनि का सत्य परमधर्म है। मैं आपके जनक–जननी से बोलकर आया था कि आपको वापस भेजूँगा। आपको एक बार घर जाना होगा। ठीक, स्वामी! जैसे–ही नगर में प्रवेश किया, वहाँ के सम्राट को मालूम चला। ऐ भैया! क्या सुन्दर समय था। आज नगर में त्यागी–विद्वानों को इतना सम्मान नहीं मिलता है, क्योंकि त्यागियों की संख्या बढ़ने के साथ–साथ साधना बढ़ी दिखनी चाहिये। संख्या का सम्मान नहीं होता, साधना का सम्मान होता है। धन्य हो। जब नगर में प्रवेश हुआ बालक भद्रबाहु का, तो राजसम्मान के साथ, क्योंकि ब्राह्मणपुत्र था। ये वह समय था जब विद्यार्थी अध्ययन करके आता था तो राजसम्मान मिलता था। भद्रबाहु गोवर्धन आचार्य के यहाँ से विद्या अध्ययन करके आया है। और ऐसा नियोग बना

कि एक शास्त्रार्थ भी हुआ, उसमें भद्रबाहु स्वामी ने स्याद्वाद ध्वज को लहरा दिया। सारे जगत् में अनेकान्त स्याद्वाद दर्शन जयवन्त हो गया। भद्रबाहु कहता है- पिता! आपने देख लिया अपने बेटे को। माँ! अब मैं आपसे भीख माँगता हूँ। किस बात की?

हे जनक! हे जननी! आपने मेरी ध्रुव आत्मा को जन्म नहीं दिखा। आपने जिसको जन्म दिया है, उसका नाम शरीर है। आप दोनों के शरीर के माध्यम से मैं भगवान्-आत्मा की आराधना करना चाहता हूँ, इसकी मुझे भीख दे दो। मैं अपने गुरु गोवर्द्धनाचार्य के चरणों में निर्वाण दीक्षा लेकर, निर्ग्रन्थ पद को प्राप्त करके, शिवत्व की सिद्धि करना चाहता हूँ। माँ आँख में आँसू ढोलती रही, पिता शिशराते रहे, बेटा भद्रबाहु जंगल की ओर पुनः पहुँच गये गोवर्द्धन स्वामी के चरणों में। गोवर्द्धन स्वामी ने कुछ नहीं देखा कि मुहूर्त क्या है? ज्ञानी! भाव ही मंगल है, दिन भी मंगल है और जहाँ मंगल श्रुत बैठा हो, वहाँ तो मंगल-ही-मंगल है और जैनेश्वरी दीक्षा दे दी। अब वे बेटा, विद्यार्थी, भद्रबाहु नहीं बचे। वे महान जैनाचार्य मुनिराज भद्रबाहु स्वामी हो गये। ये वही भद्रबाहु स्वामी हैं जिनके चरणों में 24000 साधु साधना किया करते थे। (कहीं-कहीं बारह-हजार का उल्लेख भी आता है।) ये भारतभूमि के प्रधान आचार्य थे। ज्ञानी! ऐसा आचार्यत्व होना चाहिए कि एक आचार्य ने एक शब्द बोल दिया तो सारे मुनि एक साथ एक शब्द में बोलें। यह तभी संभव है जब तुम्हारे पास सभी के प्रति वात्सल्य का भाव होगा। जिसके पास वात्सल्य की न्यूनता है वो कितना ही महान होगा, सब व्यर्थ है। 'माधुर्य गुण प्रीतिः' भैया! तेरे घर में शक्कर में चींटी लगती कि नमक में? महाराज चींटी तो दूर है। बाजार में शक्कर तो अन्दर पैक होती है, नमक के बोरे बाहर पड़े रहते, चोर भी नहीं ले जाते। जिसका हृदय नमकीन है, वहाँ चींटी क्या करेंगी? 'माधुर्य गुण प्रीतिः' जिसमें मधुरता होती है, चींटी वहीं जाती हैं। इसलिये मुनि के अन्दर वात्सल्य भरा होना चाहिये।

भद्रबाहु स्वामी से लेकर श्रुतपरम्परा चलती रही। धीरे-धीरे श्रुत का ह्रास हुआ और एक बार गिरनार पर्वत पर चंद्रगुफा में विराजे वृद्ध आचार्यस्वामी धरसेनाचार्य के मन में भाव आया। जैसे आप लोग ये सोचते, कि मेरे घर का क्या होगा? ऐसे वीतरागी सोचते हैं कि मेरे धर्म का क्या होगा, द्वादशांग का अंश मात्र मेरे पास है। श्रुत का लोप हो जायेगा। यदि मेरे साथ श्रुत नष्ट हो गया, तो श्रुत की परम्परा कैसे चलेगी? ऐसा सोच रहे थे कि उनको मालूम चला कि दक्षिण देश महाराष्ट्र में वेणा तट पर महिमानगरी में अर्हत स्वामी के संघ के सान्निध्य में पंचवर्षीय युगप्रतिक्रमण चल रहा है। यति सम्मेलन हो रहा है।

जैसा यतिसम्मेलन ज्ञानियों! वेणा नदी के तट पर हुआ है, ऐसा यतिसम्मेलन हमारे नर्मदा के तट पर हो जाये तो आज हमारे देश से सम्पूर्ण विषमतायें समाप्त हो जायें। एक यति सम्मेलन

की आवश्यकता है। बेचारी समाज दो पाटों के बीच पिस रही है। करूँ तो क्या करूँ? इन योगियों से कहो कि एकसाथ बैठकर यति-सम्मेलन कर लो और आपस में चर्चा कर लो, बेचारी समाज को क्यों पीसते हो? ज्ञानी! अहो आश्चर्य। श्रावकों के तो सम्मेलन हो रहे हैं, राजनेताओं के सम्मेलन हो जाते हैं, योगियों का सम्मेलन क्यों न - होना चाहिये। सबसे सुन्दर स्थान यदि कोई है तो ये महाकौशल में नर्मदा तट पर जबलपुर है। यति सम्मेलन चल रहा था, तो उसमें धरसेन स्वामी का एक पत्र वाँचा गया। उसमें यथायोग्य नमोऽस्तु-प्रति नमोऽस्तु के बाद यही लिखा था ''स्वस्ति भद्रं क्षेम कुशलं तथास्तु'' मेरी अवस्था वृद्ध है। कब ये हंस निकल जायेगा, निश्चित नहीं है। अपने संघ से कोई युवक, प्रतिबुद्ध दो शिष्य भेज दो जिनको मैं अपनी विद्या दे सकूँ। पूरा संघ बैठा हुआ था। आचार्य अर्हद्बलि स्वामी के द्वारा लिखे पत्र की महिमा देखो। पिता की पाती आये, भोजन भी कर रहा होगा तो पहले पाती खोलेगा। एक बार पढ़ने के बाद फिर-फिर पढ़ेगा। आचार्यश्री के यहाँ से पत्र आया, दो-तीन बार तो पढ़ ही लिया। पूरे यतिसंघ के सामने पत्र की वाचना हुई। ये कोई छोटे-मोटे जीव का पत्र नहीं था, इस भारत की भूमि पर अंतिम श्रुतधर महाज्ञानी धरसेन स्वामी का पत्र था। उस पत्र को ही शीश पर लगाया। पत्र पढ़ते ही जैसे ही अर्हद्बली स्वामी ने यतियों की ओर दृष्टि डाली, दो मुनिराज, क्षण नहीं लगा, खड़े हो गये, स्वामी! श्रुत की आराधना करने का अवसर मुझे प्रदान कीजिए। इससे बड़ा अहोभाग्य क्या होगा? और उन्होंने युगल योगियों को आशीर्वाद दिया कि बेटा! जाओ, भगवान् जिनेन्द्र की वाणी का अध्ययन करके श्रुत को पंचमकाल की अंतिम श्वासों तक जयवन्त करो।

श्रुत की क्या अद्भुत लगन थी। मार्ग में आहार भी नहीं किये। आहार में जितना समय लगाऊँगा उतने समय में आगे विहार कर लेंगे। सामायिक किये, विहार किये और अल्प समय में ही दक्षिण देश से आकर सौराष्ट्र के गिरनार पर्वत पर पहुँच गये। आचार्य धरसेन स्वामी श्रुत के महान् ज्ञाता, ज्योतिष, तंत्र-मंत्र के भी ज्ञाता थे। इन्होंने 'योनि प्राभृत' नाम का एक मंत्र-शास्त्र भी लिखा है, जो विदेश की लाइब्रेरी में सुरक्षित रखा है। धरसेन स्वामी चन्द्रगुफा में विश्राम कर रहे थे। उनको स्वप्न आया, दो नये बछड़े-जैसे सुन्दर युवक-मुनि सामने खड़े हैं, उनकी निद्रा भंग हो गई। उनके मुख से निकल पड़ा 'जयउ सुय (द) देवता'- ये जयवन्त शब्द घरसेन स्वामी ने बोला, श्रुतदेवता जयवन्त हों। आज दो वृषभ दिखे हैं। उनको तो पहले से ही मालूम था कि मेरा कार्य सफल होगा। बैल नहीं देखे, वृषभ देखे, वृषभ। अब प्रश्न करो महाराज! बैल और वृषभ में क्या अन्तर है? ज्ञानी। जो नपुंसक हो गये, वे बैल हैं। जो साँड हैं, वे वृषभ हैं। जो नपुंसक नहीं होते हैं, वे वृषभ कहलाते हैं। यथार्थ ये है कि वृषभ ही शुभ

होता है। जिनके बच्चे उत्पन्न होने की सामर्थ्य नष्ट हो गई अथवा नष्ट करा दी है, ऐसे व्यक्तिों को पंचकल्याणक में तीर्थंकर का माता-पिता नहीं बनाना चाहिये। मनीषियो! चेहरा मत बनाओ। जो है, सो है। सुबह की बेला, दैनिक क्रिया से निवृत्त हुए। प्रातःकाल में युगल मुनिराज खड़े हो गए। जैसे ही मुनिराज पधारे, उन्होंने सबसे पहले आचार्य भगवान् की तीन परिक्रमा लगाई और गवासन से बैठकर नमोऽस्तु प्रतिवेदित क्रिया और आचार्य भगवान् ने भी दोनों महाराज को पिच्छि उठाकर प्रति नमोऽस्तु किया।

ध्यान रखना! मुनि को कभी आशीर्वाद नहीं दिया जाता है, मुनि को प्रतिनमोऽस्तु किया जाता है। ऐसा उल्लेख है। आचार्यभगवान् भी क्यों न हों, वे अपनी पिच्छि उठाकर नमोऽस्तु बोलते हैं। क्यों? शिष्य आपका है, लेकिन मुद्रा तीर्थंकर की है। इस मुद्रा की कभी अवहेलना नहीं होती है। इसको नमन किया जाता है, 'णमो लोए सव्व साहूणं।' यदि कोई आचार्य से कहे कि शिष्य के लिए पिच्छि कैसे उठायें? ज्ञानी फिर तो तुम णमोकार भी नहीं पढ़ पाओगे। उसमें 'णमो लोए सव्व साहूणं' होता है। आचार्यभगवंत भी णमोकार पढ़ते हैं। पद तो पद है। परन्तु परमेष्ठी सबके लिये पूज्य ही होते हैं। उन्होंने पिच्छिका उठाकर प्रतिनमोऽस्तु किया, फिर आशीर्वाद दिया कि जाओ बेटे! विद्या देने के पहले इतना ध्यान रखना कि जिसे विद्या दे रहे हैं, वो चलनी तो नहीं है, जो सार-सार को छोड़ देती है और तिनके के छिलके को रख लेती है। आटा नीचे गिर गया, उसमें क्या बचा? हँसजलून (जोंक), पानी का कीड़ा गाय के, भैंस के थन में तो लगता है, लेकिन ऐसा पापी होता है कि दूध नहीं पीता, खून ही पीता है। जगत में बहुत सारे ऐसे तोता होते हैं, जिनवाणी की सभा में आकर भी एक छोटा-सा गुण ग्रहण नहीं करते, वो यही देखते हैं कि वक्ता में कौन-सा दोष है। पक्के जोंक हैं, जोंक। हजारों गुण नहीं दिखते इसे। तोता जैसा-कहो, वैसा रट लेता, सुना देता है, लेकिन स्वयं के लिये कुछ भी नहीं रखता। एक श्रोता होता है भैंसा जैसा। महापुराण में आचार्य जिनसेन स्वामी ने वर्णन किया है। कितना ही स्वच्छ सरोवर हो, कितना ही सुन्दर पाताल-तोड़ पानी भरा हो इसमें, लेकिन वह जाकर स्वच्छ पानी नहीं पियेगा। पहले लोटेगा, फिर उसी में लघुशंका करेगा, फिर पियेगा। ऐसे-ही कुछ श्रोता हैं, जो पूरी सभा में कोलाहल मचा देते हैं।

शुद्ध श्रोता होता है हंस जैसा। क्षीर-नीर को भिन्न कर देता है। ऐसे ही जो वस्तुस्वरूप को जानता है, वह हंस-जैसा श्रोता होता है। इसलिये आचार्यभगवान् ने तुरंत विद्या नहीं सिखाई। तीन दिन तक परीक्षा की। मुनि ही मुनि की परीक्षा करता है। जो बिना परीक्षा के विद्या दे देता है, वह अपने द्वारा अपना घात करता है। यह समझ लेते महाराज की ये प्रौढ़ ज्ञानी लोग हैं। लेकिन नहीं, तीन दिन तक परीक्षा की। ये परीक्षा की विधि मुनि द्वारा मुनि की है,

श्रावकों की नहीं है। एक गाँव में मैं पहुँचा, तीन दिन तक उन्होंने रखा, तीसरे दिन कहने लगे महाराज! प्रवचन करोगे? मैंने कहा- ज्ञानी! सुनोगे? बोले- हओ महाराज! प्रवचन करो। भैया! अब एक बोरा श्रीफल लेकर आ गये। बोले, महाराज! रुको, ठहरो। हमें आपसे कुछ सीखना है।

मैंने कहा- अब हमें जाना ही है।

बोले- क्यों? बोले - महाराज! हमें तीन दिन तक देखने तो, सो देख लओ। हमने कहा, इतनी और बता दो कि का देखो? पास भये कि नहीं? बोले- महाराज! तभी तो नारियल चढ़ाये। मैने कहा- अब ठीक है भैया! पास हो गये, प्रमाणपत्र तुमने हमें दे दओ, अब हम जा रहे।

तो ज्ञानी! ध्यान रखना। ये श्रावकों की परीक्षा का समय नहीं बता रहे। मुनि ही मुनि की परीक्षा करता है। तुम्हारे लिये तो-

दाणं भोयणमेत्तं, दिण्णदि धण्णो हवेदि सायारो।
पत्तापत्त-विसेसं, सद्दंसणे किं वियारेण ।। 15।। (रयणसार)

भोजन/आहार मात्र देने वाला श्रावक तो धन्य हो जाता है। तू क्या साधु की परीक्षा करता है? परीक्षा के लिये उन्होंने दो मंत्र दिये और दोनों मुनियों से कहा, 'जाओ, जंगल में साधना करो, दो उपवास करके। ऐसे ही नहीं। आजकल लोग तपस्या करना नहीं चाहते, सिद्धि चाहते हैं। भैया! सिद्धि, प्रसिद्धि सब साधना से मिलती है। तपस्या करने गए, दो उपवास लेकरके। आराधना की। गुरु तो गुरु होता है। धरसेन स्वामी ने विद्या तो दी, मंत्र दिये, परन्तु एक मंत्र में एक अक्षर कम कर दिया और एक मंत्र में एक अक्षर अधिक। जैसे-ही आराधना की, वहाँ पर दोनों मुनिराजों के सामने विद्यादेवी आकर खड़ी हो गईं। एक के लम्बे दाँत, दूसरे की आँख फूटी।

तो जैसे ही देखा, चिन्तन किया कि आगम में तो लिखा है कि देव सर्वांग सुन्दर होते हैं। लेकिन, स्वामी! ये क्या? दाँत निकले वाली देवी जिन मुनिराज के सामने आयी, उनने गणित देखा, व्याकरण देखा। एक अक्षर अधिक है, तो हटा दिया। दूसरे मुनि ने देखा कि एक अक्षर कम है, तो उसको जोड़ दिया। जैसे-ही पुनः बैठे, सर्वांग सुन्दर देवियाँ सामने खड़ी हो गईं। हे स्वामी! 'किम् कारणम् अहं स्मृतम्' आपने मुझे किस कारण स्मरण किया है। 'आज्ञां देहिं', आज्ञा दो कि मैं क्या करूँ। आपका आदेश पालन करती हूँ।

यह ज्ञातव्य है कि देशना में 'जैनशासन' के लिए नमोऽस्तु शासन पद का प्रयोग किया गया है। यहाँ 'मूलाचार' जी की गाथा व आचार्य वसुनंदि की 'आचारवृत्ति' टीका का एतद्विषयक उद्धरण प्रस्तुत किया जाता है। इस आगम प्रमाण को स्वीकार कर दृष्टि सम्यक् करणीय है।

सच्छंदगदागदीसयणणिसयणादाणभिक्खवोसरणे।
सच्छंदपंजरोचि य मा मे सत्तूवि एगागी।। 150।।(मूलाचार)

ईत्याह-सयणं-शयन। णिसयणं-निषदनं आसनं। आदानं ग्रहणं। भिक्ख-भिक्षा। वोसरणं-मूत्रपुरीषाद्युत्सर्गः। एतेषु प्रदेशेषु शलनासनादानाभिक्षाद्युत्सर्गकालेषु। सच्छंदजंपिरोचिय-स्वेच्छया जल्पनशीलश्च स्वेच्छया स्वपने रुचिर्यस्य वा एवंभूतो यः सः। मे मम शत्रुरप्येकाकी माभूत् किं पुनर्मुनिरिति।

सोने में, बैठने में, किसी वस्तु के ग्रहण करने में, आहार ग्रहण करने में और मलमूत्रादि के विसर्जन करने में इन प्रसंगों में जो स्वेच्छा से प्रवृत्ति करता है और बोलने में जो स्वेच्छाचारी है, ऐसा मेरा शत्रु भी एकाकी न होवे, फिर मुनि की तो बात ही क्या है? अर्थात् आहार, विहार, नीहार, उठना, बैठना, सोना और किसी वस्तु का उठाना या धरना, इन सभी कार्यों में जो आगम के विरुद्ध मनमानी प्रवृत्ति करता है, ऐसा कोई भी शत्रु ही क्यों न हो, वह अकेला ही न रहे, मुनि की तो बात ही क्या है। उन्हें तो हमेशा गुरुओं के संघ में ही रहना चाहिए और फिर भी यदि ऐसा मुनि अकेला विहार करता है तो क्या होता है? सो बताते हैं-

गुरुपरिवादो सुदवुच्छेदो तित्थस्स मइलणा जडदा।
भिंभलकुसीलपासत्थदा य उस्सारकप्पम्हि।। 151।। (मूलाचार)

गुरुपरिवादो-गुरोः परिवादः परिभवः केनायं निःशीलो लुञ्चितः इति लोकवचनं। सुदवुच्छेदो-श्रुतस्य व्युच्छेदो विनाशः स तथाभूतस्तं दृष्ट्वा अन्योऽपि भवति अन्योऽपि कश्चिदपि न गुरुगृहं सेवते ततः श्रुतविनाशः।

स्वेच्छाचार की प्रवृत्ति में गुरु की निंदा, श्रुत का विनाश, तीर्थ की मलिनता, मूढ़ता, आकुलता, कुशीलता और पार्श्वस्थता ये दोष आते हैं।

तीर्थस्य शासनस्य। मइलणा-मलिनत्वं 'नमोऽस्तूना' शासने एवंभूताः सर्वेऽपीति मिथ्यादृष्टयो वदन्ति। जडदा-मूर्खत्वं। भिंभल-विव्हलः आकुलः। कुसील-कुशील। पासत्थ- पार्श्वस्थ एतेषां भावः विव्हलकुशीलपार्श्वस्थता उस्सारकप्पम्हि- उत्सारकल्पेत्याख्यकल्पे गणं त्यक्त्वा एकाकिनो

विहरणे इत्यर्थः। मुनिनैकाकिना विहरमाषोण गुरुपरिभवश्रुतव्युच्छेदतीर्थमलिनत्वजडताः कृता भवन्ति तथा विह्वलत्वकुशीलत्वपार्श्वस्थत्वानि कृतानीति।। 151।।

आचार्यवृत्ति उत्सार कल्प में गण को छोड़कर एकाकी विहार करने पर उस मुनि के गुरु का तिरस्कार होता है अर्थात् 'इस शीलशून्य मुनि को किसने मूड़ दिया है', ऐसा लोग कहने लगते हैं। श्रुत की परम्परा का विच्छेद हो जाता है अर्थात् ऐसे एकाकी अनर्गल साधु को देखकर अन्य मुनि भी ऐसे हो जाते हैं, पुनः कुछ अन्य मुनि भी देखादेखी अपने गुरुगृह अर्थात् गुरु के संघ में नहीं रहते हैं, तब श्रुत-शास्त्रों के अर्थ को ग्रहण न करने से श्रुत का नाश हो जाता है। तीर्थ का अर्थ 'शासन' है? जिनेन्द्रदेव के शासन को नमोस्तु शासन कहते हैं अर्थात् इसी दिगम्बर जैन सम्प्रदाय में मुनियों को 'नमोस्तु' शब्द से नमस्कार किया जाता है। इस 'नमोऽस्तु शासन- जैन शासन में सभी मुनि ऐसे ही (स्वच्छंद) होते हैं' ऐसा मिथ्यादृष्टि से लोग कहने लगते हैं तथा उस मुनि में स्वयं मूर्खता, विह्वलता, कुशीलता और पार्श्वस्थ रूप दुर्गुण प्रवेश कर जाते हैं।

'णिरीह-वित्तीहवे जदा साहू।' ऐसे पुष्पदन्त-भूतवली स्वामी को त्रिकाल नमोऽस्तु। हे ज्ञानी! धन्य हो उन योगियों को, जिनके सामने देवी खड़ी हो, तब भी क्या बोले? हे देवियो! आपसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो अपने गुरु की आज्ञा का पालन किया है। आप जाइये। अब मुनिराज अपने गुरु के पास पहुँचे। कहते हैं- भो स्वामी! नमोऽस्तु। क्षमा करना प्रभो! मैंने आपकी आज्ञा के बिना मंत्र में एक अक्षर बढ़ा दिया था। दूसरे मुनिराज कहते हैं- हे नाथ! मैंने एक अक्षर कम कर दिया था। दो देवियाँ आयी थीं। आचार्यश्री ने पूछा, 'आपने क्या किया?' मैंने यही कहा कि मैंने गुरु की आज्ञा का पालन किया है। मुझे आपसे कुछ भी नहीं चाहिए। गुरु ने जैसे ही सुना, उन दोनों योगियों को वक्षस्थल से लगा लिया। बेटे! तुम विद्या सीखने के पात्र हो, क्योंकि आप निस्पृह हो। ज्ञानी! कुछ ही दिन में उन्हें शुभ मुहूर्त में विद्याध्ययन शुरू कराया गया। सबसे सुन्दर दिन होता है चंद्रवार। अपने बेटे को प्रथम दिन स्कूल चंद्रवार को ही भेजना। सिद्धों की पूजा कराकर सबसे पहले पाटी में लिखवाना 'ॐ नमः सिद्धं', 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः', 'श्री गणेशाय नमः'। आपको मालूम होना चाहिए।

नमो वृषभसेनादि गौतमान्त- गणेशिने। (कातन्त्र)

वृषभसेन से लेकर गौतम पर्यंत चौदह सौ बावन गणधर हैं, गण के ईश हैं। ऐसे गणधर को ही गणेश कहा है। ऐसे 'श्री गणेशाय नमः' उन गणेश को नमस्कार है।

शुभ मुहूर्त में दोनों योगियों को जैन सिद्धान्त, महावीर की वाणी पढ़ाना प्रारंभ किया।

आषाढ़ के महीने में शुक्ल पंचमी को इनकी विद्या पूर्ण हो गई, परंतु धन्य हो धरसेन स्वामी को, उन्होंने कहा, बेटे! अब तुम जाओ। क्योंकि उनकी आयु कम थी। यदि सेवा में लग जायेंगे तो श्रुत-आराधना नहीं कर पायेंगे। यह सोचकर दोनों महाराजों का विहार करा दिया। उन्होंने अंकलेश्वर में जाकर चातुर्मास किया। चातुर्मास करके एक अंकलेश्वर में रह गये, दूसरे दक्षिण की ओर तमिल देश में चले गये। पुष्पदन्त मुनि कुछ दिन तक जिनपालित को साथ में लिए थे। उनको दीक्षा देकर 'सत् प्ररूपणा' ग्रंथ लिखकर भूतबली स्वामी के पास भेज दिया। उन्होंने देखा कि मेरे गुरुभाई ने इतना महान ग्रंथ लिखा है, यह सोचकर आवश्क मानकर शेष ग्रंथों को भूतबली स्वामी ने पूर्ण किया। ये सिद्धान्त छह खंडों में विभक्त किया, जिसका नाम 'षट्खण्डागम' है।

वीरसेन स्वामी ने 'धवला टीका' लिखी। जिसे सर्वज्ञ के ज्ञान पर संशय हो, उन्हें धवला टीका देख लेना चाहिए। कितनी अगाध टीका है। एक समय था जब मूड़बिद्री में टिकट खरीद करके इन ग्रंथों के दर्शन झरोखे से किया करते थे, आज तुम्हारा अहोभाग्य है। पं. टोडरमलजी बनारसीदास को तो इन षट्खण्डागम ग्रंथों के दर्शन तक नहीं हुए।

सेठ लक्ष्मीचन्द भेलसावाले धन्य हैं जिनको गजरथ चलाने के भाव थे। विदिशा में इन्होंने गजरथ न चलाकर षट्खण्डागम ग्रंथ प्रकाशित कराया, आज सबके हाथों में 'धवला' जयवन्त हो रहा है। ये उस सेठ की देन है जिसने गजरथ टाल दिये, लेकिन जिनवाणी का उद्धार कराया। आज श्रुतपंचमी के दिन इतना ही नियम ले लेना। आचार्यों की लिखी टीकाओं को हमारे दातारों ने दान देकर प्रकाशित किया है। भैया! ध्यान रखना, यदि स्वाध्याय करते रहे तो श्रुत की रक्षा होगी। प्रकाशित भी कराओ, रक्षा भी करो और आराधना भी करो। यही श्रुत की आराधना है। हे श्रुतदेवी! जय हो। ज्ञानी! फिर बाद में शान्तिसागर महाराज ने ताम्र पर षट्खण्डागम उत्कीर्ण कराये हैं।

श्रावको! यदि पैसा बढ़ जाए तो जिनवाणी पत्थर पर उत्कीर्ण कराओ, ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराओ। जब तक ये रहेंगे, तब तक नमोऽस्तु शासन जयवंत रहेगा। ऐसे भी काम होने चाहिये जिससे श्रुतपरंपरा अक्षुण्ण चले। पता नहीं कौन-सी पर्याय में वे श्रुत तुम्हारे लिए कल्याणकारी बने।

येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा, विषाद-निद्रा-भय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरु प्रपञ्चस् तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।

ज्ञानियो! आपने वीतरागी जिनवाणी की आराधना की। यहाँ आचार्य अमितगति स्वामी

कह रहे हैं कि उस वीतराग देव की पुनः वन्दना कर लो, कैसे? वीतरागी देव की वंदना करता हूँ। किसकी शरण में जाता हूँ? मैं सभी देवों की शरण में नहीं जाता हूँ। तो किस देव की शरण में? जैसे अग्नि के माध्यम से, कितना भी विशाल वृक्ष हो, क्षण मात्र में क्षत/भस्म हो जाता है, ध्वस्त हो जाता है, उसी प्रकार जिन्होंने काम, मान, मूर्च्छा, विषाद, निद्रा, भय, शोकादि इन सबको नष्ट कर दिया है, यानी अट्ठारह दोषों से रहित हो चुके हैं, ऐसे देव की शरण में जाता हूँ। अन्य किसी देव की शरण में मैं नहीं जाता हूँ।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान महावीर की जय।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
समता रहित
समता सहित
शांत
निराकुल
नित्य
निरंजन
चैतन्य
शिवधाम
जहाँ नहीं है
कषाय क्लेश को
किंचित भी
स्थान
वही है
मेरा
ध्रुव/स्थाई
स्थान

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
समत्व की
साधना का
है साधन
श्रमणत्व
समत्व का
फल है
अक्षातीत
परमानंद
शिवत्व की
प्राप्ति
चाहिए है
परम निर्वाण
तो
करो साधना
समत्व की।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

येन क्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा विषादनिद्रा-भय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस्, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये।।21।।

अन्वयार्थः (अनलेन) अग्नि के द्वारा (तरु) वृक्षों का समूह (क्षतः इव) जैसे क्षय/भस्म कर दिया जाता है, उसी प्रकार (येन) जिनके द्वारा (मन्मथ-मान-मूर्च्छा) काम, मान, मूर्च्छा, (विषाद-निद्रा, भय-शोक-चिन्ता) विषाद, निद्रा, भय, शोक, चिन्ता आदि समस्त दोष (क्षता) क्षय कर दिये गये हैं। (तं आप्तं देवम्) उन आप्तदेव की मैं (शरणं प्रपद्ये) शरण को प्राप्त होता हूँ।

सामायिक देशना

जो लोग हर बात पर तुरन्त निर्णय माँगते हैं, इन लोगों से इतने दूर रहना जैसे अग्नि और अजगर से दूर रहते हैं। शीघ्र निर्णय माँगने वाले विवेकविहीन लोग होते हैं। आप अपनी बात कह दो और सामनेवाले को सोचने का मौका दो। शीघ्र निर्णय कभी भी देना मत। समय बदलता है। प्रातः की वेला के परिणाम मध्याह्न में नहीं रह जाते, मध्याह्न के परिणाम संध्या में नहीं देखे जाते। आप निर्णय कैसे दे सकते हैं? निर्णय विवेकपूर्वक देना। जो शीघ्र निर्णय दे देते हैं, वे शीघ्र पश्चात्ताप को प्राप्त होते हैं। समय दो। कर्म करने के उपरांत वह उदय में नहीं आता है, वह भी समय माँगता है। आबाधा काल कर्म के पकने का समय है। किसान खेत में बीज बोता है तो उसी दिन फसल नहीं काट पाता है, उसे समय देना पड़ता है।

आप यहाँ आते हो, कुछ नया-नया नहीं। जो हमारा पुराना आगम है, उसे सुनकर जाओ, घर पर चिन्तन करो। एक बालक कह रहा था 'मैं तो प्रवचन सुनने जाता हूँ।' ऐसे ही कभी माँ पिता कहें, अभी तू घर में रह, तो कहना कि तुम रहो घर में, मैं तो जाता हूँ, महाराज बनकर आऊँगा, फिर सिद्ध बनकर सिद्धालय में मिलूंगा। जो यहाँ विराजे हैं, उनको अशुभ जीव मत कहना। इस समय ये श्रुत सुन रहे हैं, अतः अशुभ तो हो ही नहीं सकते। परिणामों की विशुद्धि चल रही है। कोई किसी को कष्ट नहीं देता। जो घृत जला रहा था, वैद्य ने उसी घृत से औषधि बनाकर जलन शान्त की। जो घी जला रहा था, वही औषधि बनकर आ गया। जो पारसनाथ कमठ को जला रहे थे, वही पारसनाथ कमठ के लिए औषधि बन गये। ज्ञानी! जिसने उपसर्ग किया, वही चरणों में लोट करके सम्यक्त्व को प्राप्त हो गया। एक क्षण पहले कमठ जल रहा था। किससे? तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी से। मत जलो इस पर्याय में किसी से। जिनसे तुम जल रहे हो और जो जलाते दिख रहे हैं, वही औषधि का काम करेंगे। और-कोई नहीं मिलेगा।

हे कमठ! वही पारसनाथ तेरे सम्यक्त्व के साधन बनेंगे। कमठ को सम्यक्त्व हुआ कि नहीं? कहाँ पर हुआ? तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी के चरणों में। उन जीवों से पूछो जिसने अपने देवर के पैर को ही भख लिया हो। सुकुमाल, सुकौशल महाराज से पूछो, जिनका पैर भखा, जिनका पैर खाया, उन्हीं के चरणों में दोनों प्राणियों ने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया। जिनसे दिल से जल रहे थे, उन्हीं से चमकना प्रारंभ हो गए। विधि सम्यक् है तो अग्नि पकाती है और विधि सम्यक् नहीं है तो अग्नि जलाती है। विधि सम्यक् है तो पुण्यानुबंधी पुण्य काम करता है। भैया! तत्त्वोपदेश सुन रहे हो तो पुण्यानुबंधी पुण्य चल रहा है। पुण्य का बंध किया था, सो आज खोटे काल में भी जिनवाणी सुनने को मिल रही है और पुण्य कर रहे हैं, सो भविष्य में अच्छा फल ही मिलेगा। पुण्यानुबंधी पुण्य का फल है- तत्त्व का उपदेश करना और श्रोताओं का आना। ये पापानुबंधी पाप को निहारो। उस रावण से पूछो, हे लंकेश! तूने ऐसे पुण्य का बंध किया, पापानुबंधी पुण्य, कि पुण्य को पाप करके खोटे कामों में लगा दिया। ये पापानुबंधी पुण्य का फल था जो तुझे नरक में जाना पड़ गया। पुण्य के द्रव्य को जो पापों में लगा रहा है और जिसका पुण्य का फल पापों की ओर जा रहा है, ज्ञानी! पापानुबंधी पुण्य था, पाप के अनुबंध में पुण्य कर लिया। पुण्य के काम से बड़े-बड़े तीर्थों में जाना, वहाँ जाकर धर्मशालाओं को देखना, कमरों को निहारना, जब उसमें आपको अटैच मिल जाये और बढ़िया पंखे/कूलर चलते मिल जायें, उनके नाम जरूर लिख लेना। देखो, इस जीव को पुण्य का फल सम्पत्ति मिली, वह पुण्यानुबंधी पुण्य नहीं था, वह पापानुबंधी पुण्य था। धर्मतीर्थ में आकर भी इसका पैसा लगा है तो संडास में लगा है। धर्मतीर्थ में भी पैसा लगा तो पंखों में लगा, कोटि-कोटि जीव मर रहे हैं। संभल कर रहना। शब्दवर्गणायें तुझे मिल गईं, बोलने की सामर्थ्य मिल गई और तूने दूसरे की निन्दा में शब्दों का प्रयोग किया तो तेरा पापानुबंधी पुण्य का उदय था। पापकार्य पुण्यफल में किया था, सो आज तेरी शब्दवर्गणायें दूसरे की अवहेलना में जा रही हैं। यह विषय आपको समझना हो तो 'श्लोकवार्तिक' में देख लेना। पापानुबंधी पुण्य, पुण्यानुबंधी पाप, पुण्यानुबंधी पाप। सारी-की-सारी व्याख्यायें आचार्यभगवन्त विद्यानन्द स्वामी ने की हैं। ये विद्यानन्द स्वामी वे हैं जिन्होंने 'अष्टसहस्री' ग्रंथ लिखा है। स्वयं ग्रंथकर्ता ने लिखा है कि यह 'अष्टसहस्री' तो कष्ट सहस्री हो गई।

भैया! कोई तेरे गाल में चाँटा भी मार जाये, तो यही कहना कि इसका दोष नहीं है, इसमें कषाय का संयोग है। जिस दिन कषाय उतर जायेगी, यही जीव घर में मुझे भोजन करायेगा। यदि आपको विश्वास नहीं है तो मैं आपको बताये देता हूँ, मुमुक्षु! जिस पिता ने बेटे का पालन किया, जिस पिता ने गोदी में खिलाया, जिस माँ ने तेरा पालन किया, उन्होंने तेरा पालन नहीं

किया। इन माता-पिता के पास एक वस्तु थी 'मोह', 'स्वार्थ', उसने तेरा पालन किया है। दूसरे के बच्चे यदि रोने लग जायें तो बाहर ले जाओ, कान फोड़े डाल रहा है। और स्वयं का बेटा कान क्या पीठ ही तोड़े दे रहा है, तब भी कुछ नहीं कह रहा है। भैया! माता-पिता ने तुझे नहीं पाला। माता-पिता के अन्दर एक ततैया बैठी थी, जिसका नाम है राग। उसने तेरा पालन किया है। राग की महिमा है, उसको धन्यवाद दो। राग न होता तो तेरा पालन नहीं हो सकता था। पिता कहता- मेरे लल! तुम मुझे छोड़कर मुनि बनने जा रहे हो। मेरे से पूछो कि मैंने कैसे पालन किया है? अहो जनक! सुनो। तनक भी तुमने हमें नहीं पाला। आपने राग को जन्माया और राग को पाला है। यदि राग न चल पावे तो भगवानात्मा त्रैकालिक स्वतंत्र है।

कोई किसी को सताता नहीं है। कोई किसी को परेशान नहीं करता है। जैसे अग्नि की सोपाधिक दशा है, तवा रोटी पका देता है। ऐसे ही ज्ञानी! कषाय की सोपाधिक दशा से सारा संसार झुलस रहा है। कषाय की गर्मी उतर जायेगी तो 'सत्वेषु मैत्रीं गुणिषुप्रमोदं' सब एक सूत्र गायेंगे। कषाय के अंश हटते ही हर जीव के अंदर शब्द गूँजता है- 'संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्य तपोधनानां। देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवान जिनेन्द्रः' सारे विश्व में शान्ति हो जाये, सारे राष्ट्र में शान्ति हो जाये, इसी का नाम जिनशासन है। हमारा शासन ये चाहता ही नहीं है कि कोई दुःखी हो जाये। सारा विश्व सुखमय हो जाये, यही जिनशासन का सूत्र है। यही तो जैनधर्म है। सारे विश्व के लोग कषाय के दम पर पंथों को चलाते हैं। जिनशासन कहता है, ज्ञानी! तुम सब शान्त हो जाओ। यही हमारा धर्म का प्रचार है।

चार लोग बैठे बतिया रहे थे- भैया! हमने इतना कमा लिया, इतना और कमाना है। दूसरा कहता है 'इतना तो मैंने दस वर्ष पहले ही कमा लिया था, अब मेरा काम चल रहा है।' तीसरा शान्त बैठा था। उसने जीवन में कुछ कमाया ही नहीं था। अब वह ज्ञानी धीरे से कहता है- इन दोनों ने जो कमाकर रखा है, इन दोनों की चाबियाँ कहाँ हैं? आप तो दोनों अपनी चाबियाँ मुझे बता दो, बस, मेरा काम हो गया। आप दोनों की चाबियाँ मेरे हाथ में आ जायेंगी तो तुमने जो कमाया है, वह कमा-कमाया मुझे मिल जायेगा। कोई कहता है कि मैंने धर्म का ऐसे प्रचार किया, कोई कहता है कि मैंने अपने धर्म के लिए इतने लोगों को बदल दिया। कोई कहता कि मैंने इतने लोगों को ऊपर कर दिया। जिनशासन कहेगा भैया! तुमने जो किया, सो ठीक है। तुम सब शान्ति से जीवित हो कि नहीं? हाँ, जी रहा हूँ। बस, हमारा धर्म पल गया कि तुम सब शान्ति से जिओ। कोई किसी को सताओ मत, यही जैनधर्म है। और सताना प्रारंभ कर दिया, कष्ट देना प्रारंभ कर दिया, तो जैनशासन कहेगा कि धर्म बाह्य-क्रिया मात्र में चल रहा है, धर्म

आत्मा से निकल चुका है।

तू मित्र की खोज करेगा कि शत्रु की? मित्र की। हे ज्ञानी! ये मित्र की खोज करेगा, तात्पर्य यह कि इसे मित्र नहीं दिखते। खोज उसकी की जाती है, जो वस्तु कम होती है। यानी इसको मित्र नहीं दिख रहे, इसलिए खोज करेगा। सारी जगह इसको शत्रु-ही-शत्रु दिखते हैं। जब तीर्थंकर भगवंत का जन्म होता है, तब भिखारी की खोज करना पड़ती है। धनिकों की खोज नहीं करना पड़ती। ज्ञानी! तात्पर्य क्या हुआ? इतने रत्नों की वर्षा होती है कि नगरी में कोई भिखारी नहीं मिलता है। तुम मित्रों की खोज मत करना, अब शत्रु की खोज करना, क्योंकि अब तुम्हारा कोई शत्रु बचा ही नहीं है, हमारी आँख में कोई शत्रु दिखाई देता ही नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव न मित्र की खोज करता है, न शत्रु की खोज करता है क्योंकि उसको तो दोनों में सामान्य भाव दिखाई देता है। वह प्राणिमात्र में भगवान-आत्मा को देखता है। जिस दिन तुमको श्वान में भी भगवान दिखने लगेगा, सारे जगत के विद्वानों से कह देना, सुनो ज्ञानियों! इंसान में ही नहीं श्वान में भी भगवान दिखेगा, यही तेरा सम्यग्दृष्टिपना है। पर्याय की प्रत्यासत्ति से श्वान है, लेकिन जीवतत्त्व की दृष्टि से वह भी भगवान् है। धन्य हो जिनवाणी! आपने श्वान में भी भगवान को दिखा दिया। धिक्कार हो उन प्राणियों को, जिनको भगवान की मुद्रा में भी भगवान् नहीं दिखते। ये निर्ग्रन्थ तपोधन जिस गली में से निकल जायें, किसी का पीछे सिर मुड़े तब कहना, ज्ञानी! तूने कुन्दकुन्द को नहीं पहचाना। कुन्दकुन्द ने तो एकेन्द्रिय निगोदिया में भी भगवान् को देखा है और तुम निर्ग्रन्थ में भगवान् नहीं देख पा रहे। तेरी आँख कैसी हैं? अब क्या करें? महाराज! मोह का ऐसा पर्दा पड़ा हुआ है। भूत लग जाये तो तुम्हारा प्रतिष्ठाचार्य उतार देगा, देर नहीं लगेगी। भूताविष्ट को जल्दी ठीक किया जा सकता है, लेकिन जिसको मोह लगा है, उसका मोह उतारना अत्यंत कठिन है। अहो मोहाविष्टो! ये मोह के भूत लगे हैं। इनका मोह उतारना अत्यंत कठिन है। मदिरा की बाटल पीनेवाले का मद तो शीघ्र उतर जाता है, लेकिन मोह की मदिरा पीनेवाले का मद भव-भव में लगा रहता है। पूछो इन ज्ञानियों से। शरीर ने भी साथ छोड़ दिया, इन्द्रियों की लिप्सा भी कम हो गई, सहज ही सेवन की शक्ति नहीं बची शरीर में, तब भी ये बुजुर्ग क्यों नहीं घर छोड़ पाते? तब भी कह रहे 'महाराज! जितनी जल्दी जाऊँगा, दूसरा घर में बैठा है मेरी इंतजारी में, मैं उसको सँभाल लूँगा'। हे ज्ञानी! जितने घर तूने देह के संबंधों के सँभाले हैं, वे सब नष्ट हुए और होते रहेंगे। ऐसा भवन संभाल ले, जिस भवन से तुझे कोई भगानेवाला न हो। उसका नाम आत्मभवन है।

भोगों के कितने ही भवन खड़े कर लेना। छोटे बेटे को भी बनवा देना, बड़े बेटे को भी बनवा देना। वे बेटे भवनों से तुझे भी भगा सकते हैं। निज भवन में तू बैठ जायेगा, वहाँ कोई

तुझे भगाने नहीं आयेगा। ज्ञानी !ऐसे भवन में बैठ जा, जिससे किसी बेटे के घर में न जाना पड़े, निज के घर में रहने की आदत पड़ जाये। मोह में लीन है जीव। जैनदर्शन तुम्हारी इस बात को नहीं स्वीकारता कि 'महाराज! जरूरत है। मोह नहीं है, वात्सल्य है।' वात्सल्य बेटे में नहीं होता। वात्सल्य दो धर्म-धर्मात्मा के प्रति होता है। बेटे में तो मोह ही होता है।

यदि किसी पशु के फँसाने के लिए कोई जाल फैलाता है, उसका जाल तो दिखाई देता है। उसका जाल तो लोहे का या रस्सी का हो सकता है, जो आँखों से दिखता है। पर जिस जाल में तेरी युवावस्था को छीना गया है और जिसको तू प्रेम कह रहा था, वहाँ मायाचारी का पानी टपका था। उसमें तू फिसल कर गिर गया और चारित्र के हाथ-पैर तोड़कर आ गया और कह रहा प्रेम। वह प्रेम नहीं था, वह तो छल था। नारी के पास कोई आकर्षण शक्ति है तो वह है आँख के आँसू।आपने समझ रखा है कि ये अबला है, ये कमजोर होती है। अबला का अर्थ समझा करो, क्या है? जो बलवान को अबल कर दे, उसका नाम अबला। तुम कितने भी शूरवीर बने रहे, रणाङ्गन में सैनिकों को जीतकर आ जाते हो, सैनिकों की भुजाओं को नष्ट करके आ गये, लेकिन अबला की भुजाओं में फँस करके अपने बल को खो बैठे हो। ज्ञानी! तू ही तो अबल है, वह तो सबल है। क्या विचित्र संसार की महिमा है?

आचार्यभगवान् लिख रहे हैं कि हे मुनीश्वर, हे श्रावक! तत्त्व का उपदेश तो प्राणिमात्र के लिए है। अग्नि का संयोग जलाता है। अग्नि का संयोग जिस-जिस को होगा, वह जलेगा, चाहे बालक हाथ डाले तो वह जलेगा, युवा डाले तो जलेगा, भोगी डाले तो जलेगा, योगी डाले तो चलेगा। इन कषायों में हाथ जो-जो डालेगा, वह सब जलेगा। मनुष्यजीवन में प्रबल मानकषाय है। नारायण प्रतिनारायण को क्या एक दूसरे की पड़ी है। नारायण अपना राज्य कर रहा है, प्रतिनारायण अपना राज्य कर रहा है। तब भी मानकषाय की लीला देखो- आपके पास हाथी हैं, वह मुझे भेजिये। नारायण प्रतिनारायण के युद्ध ऐसे प्रसंगों पर हुए। अपना हाथी मुझे भेजिये नहीं तो युद्ध कीजिये। एक नारायण का प्रतिनारायण से युद्ध हुआ। नारायण के यहाँ एक नृत्यांगना थी, वह विश्वप्रसिद्ध नृत्यकारिणी थी। उसको राज्य में लाने के लिए प्रतिनारायण कहता है- अपनी नृत्यांगना मुझे सौंप दो, नहीं तो युद्ध करो। बिना प्रयोजन के युद्ध। आचार्य रविषेण स्वामी 'पद्मपुराण' में लिखते हैं।

'यं वीक्ष्य जायते कोपो दृष्टकारण वर्जितः।'

जिस व्यक्ति को हमने कभी देखा नहीं, जिस व्यक्ति को मैं जानता नहीं हूँ और बिना किसी कारण के आपको देखकर वह कुपित होने लग जाये, तब भी आप क्रोध मत करना।

क्यों महाराज? बिना कारण के यदि क्रोध कर रहा है तो वह पूर्वभव का बैरी मेरे सामने खड़ा है। और ऐसा भी होता है कि किसी के प्रति कभी देखा नहीं, परखा नहीं, अचानक कोई व्यक्ति दिख जाये, सहज उसके प्रति प्रेम उमड़ता है। भैया! विश्वास रखो, ये पूर्व-भव का आपका संबंधी आ गया है। मनुष्यों में ही नहीं, तिर्यञ्चों में भी। कुछ ऐसे ही तिर्यञ्च हैं जो आपके पास आकरके वात्सल्य दिखाते हैं।

एक व्यक्ति गाय का दूध लगाने जाता है, वह लात मारकर भगा देती है और दूसरा व्यक्ति जाये तो उसकी पीठ को सूंघती है, जीभ फेरती है और दूध लगा लेने देती है। यह सब क्या है? तिर्यञ्चों में भी संबंध देखने को मिलते हैं। ज्ञानी! इसलिए जब तक संसार में रह रहे हो, आज से अपनी शैली को बदल देना। घर में जीवन जीने की शैली बदल देना। और बेटे की माँ को पत्नी कम देखना, उसे जीवद्रव्य ज्यादा देखना। उसको अशुभ कहने में पाप समझना। माँ! अपने बेटे को भी डाँटने में पाप मानना। वह आपका पुत्र बाद में है, जीवद्रव्य पहले है। किसी के प्रति अशुभ मत विचार करो। और जितने अशुभ विचार आते हैं, उसमें मुख्य जो-जो हैं- वह मानकषाय है। ये ही भड़कती है, सो सब काम बिगड़ जाता है। आचार्यमहाराज कह रहे हैं-

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ।।22।।

अत्यंत करुणाबुद्धि से आचार्यभगवान् लिख रहे हैं, 'हे योगीश्वर। तुम मुनि बने हो, त्यागी बने हो।' जितने त्यागी हों, सँभलकर सुनना। जो बनने के भाव किये हो, यह भी सुनना ध्यान से। आसन की महिमा विचित्र है। भैया! किसी व्यक्ति से कह देना कि दो कि.मी. दूर मंदिर है, वहाँ का आज अभिषेक नहीं हुआ, कुए से पानी भरकर ले जाओ और अभिषेक कर आओ, पैदल जाना बेटा। वह लाख बहाने बनायेगा। तीनलोक के नाथ के अभिषेक के लिए खड़ा हो जा, तो वह घर-घर में नंगे पैर, हाथ जोड़े-जोड़े पापियों के घर में, कषाइयों के घर में, जिनके यहाँ जीव कटे पड़े हुए हैं, उनके द्वारे तक हाथ जोड़ने पहुँच जायेगा। तीर्थंकर के अभिषेक के लिए बहाने बना रहा था। एक कुर्सी के राग में कम्बल बाँट रहा है, पैसे बाँट रहा है। वहाँ तुझे परेशानी नजर नहीं आ रही है, क्योंकि अध्यक्ष जो बनना है। हे ज्ञानी! यह पद की लोलुपता तुझे स्वपद से विहीन कर देगी। हे ज्ञानी! न आसन, न पाषाण, न तृण, न तृणपुंज, न पृथ्वी। कौन तीर्थ, कौन भूमि? भैया! राजा भोज से पूछ लो, वह शयनागार में पड़ा-पड़ा क्या कर रहा था? उसको नींद नहीं आ रही थी। वह कवि था संस्कृत का। सोच रहा था कि मेरे पास रमणियाँ, देवियाँ, स्त्रियाँ हैं, वैभव है, हाथी हैं, घोड़े हैं। उसी समय एक चोर चोरी

करने पहुँच गया। राजा भोज तो जग रहा था। चोर सोच रहा था कि वे कब सोयें और मैं चोरी करूँ। इतने में प्रातःकाल के मंगलिक बाजे बजने लग गये। अब चोर सोचता है कि मेरी मृत्यु तो निश्चित है, क्योंकि अब मैं पकड़ा जाऊँगा। क्यों न राजा का श्लोक पूरा कर दिया जाये। जो होना होगा सो देखा जायेगा। अब जब ओखली में सिर डाला ही है, तो मूसलों से क्या डरना? वह धीरे से कहता है नीचे से, नेत्र बंद होने पर कुछ भी नहीं है।

जैसे ही यह चरण भोज के कानों में पड़ा, वह बोला- यह आवाज कहाँ से आ रही है? बाहर आओ, कौन है? महाराज! अभयदान दो तो बाहर आऊँ? मतलब? मतलब यह है कि मैं चोर हूँ। अब छिपाने से क्या लाभ? उसने कहा कि मैं चोर हूँ, मैं आपके यहाँ चोरी करने आया था, लेकिन आपको नींद नहीं आ रही थी, आप रात भर से चिल्ला रहे कि इतने घोड़े, इतने हाथी, इतनी रानियाँ। लेकिन स्वामी! बात ऐसी है कि आँख खुली है, तब तक है। ज्यों ही आँख बन्द हुई, फिर तुम्हारा कुछ नहीं है। अब जो करना हो सो कर लो। राजा भोज ने कहा, भैया! तनक पास में आओ। तू आज से मेरा गुरु है। तू चोर नहीं है, चोर किसी कारण से बना होगा। तूने मेरी आँख खोल दी। सबकुछ तब तक दिख रहा, जब तक आँख खुली है। आँख जिस दिन बन्द हो जायेगी, अर्थी पर कुछ भी साथ नहीं जायेगा। जितने तूने भवन बनाये हैं,उसका एक कोना भी तुझे जलाने को नहीं मिलेगा। कफन भी आयेगा, तो तेरा रखा हुआ काम नहीं आयेगा। वह भी नया खरीदकर आयेगा। तेरा धन तो तेरे कफन के काम भी नहीं आना है। धिक्कार हो।

कैसे चिल्ला रहे हो कि मेरे क्षेत्र, मेरी भूमि, मेरा नगर? हे ज्ञानी! आगम पढ़ो, अध्यात्म पढ़ो, किसके लिए तुम लड़ रहे हो? एक प्रदेश भी तेरे साथ नहीं जायेगा और विश्व में ऐसा कौन-सा प्रदेश है जहाँ तूने जन्म-मरण न किया हो? पंचपरावर्तन में तूने प्रदेश-प्रदेश में जन्म-मरण किया है। अब तो इसको मिटाओ। जन्म-मरण को मिटाने के लिए ही साधु बना जाता है। सिद्धों की भक्ति करते हुए भावना भाना, हे नाथ! मैं आपसे और कुछ नहीं चाहता हूँ, ऐसा आशीष आपका हो कि अब मैं किसी माँ के गर्भ में न आऊँ, जन्म-मरण से रहित होकर सिद्ध-अवस्था को पाऊँ। इतनी करुणा मेरे अन्दर आ जाये कि अब मेरे वियोग में संसार की किसी माँ/नारी को रोना न पड़े। मेरे जन्म-मरण का अभाव हो जाए। यह पृथ्वी, यह तृणासन,यह ज्ञानरूप समाधि का साधन नहीं है। जिसने कषाय को शान्त कर दिया है, ऐसी आत्मा ही ध्यान का आसन है। भैया! सुनो! जिस चटाई पर तू बैठेगा, उस पर चर्म का शरीर रखा जायेगा। यह समाधि का आसन नहीं है। अरे पागल! ईंट-चूने का ध्यानकेन्द्र बनाकर ध्यान लग जायेगा क्या? हे योगीश्वर! निज स्वभाव में लीन हो जाओ, यही ध्यानकेन्द्र है।

कषाय का अभाव करके ध्यान में लीन हो जाओ, यही ध्यानकेन्द्र है। चित्त को एकाग्र करके पंचपरमेष्ठी के ध्यान में लीन हो जाओ, यही ध्यान है। आत्मा का आत्मा में लीन हो जाना ही ध्यान है।

मेरा-तेरा, तेरा-मेरा का भाव छोड़ दो, तभी ध्यान सम्भव है। सुख-दुःख में, शत्रु-मित्र में, काँच-कंचन में, उपसर्ग में, लाभ-अलाभ में जब तक समताभाव नहीं है, तब तक ध्यान संभव नहीं है। बगैर समताभाव के एवं संयम ग्रहण किये बिना ध्यान संभव नहीं है।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर की जय।

---xxx---

भो प्रज्ञ!
जगत में
जगत को
जानने से
क्या प्रयोजन?
जानना है तो
उसे ही जानो
जो
जगत की
जान रहा है।
वह कौन है?
वह मैं हूँ।
मैं को
जान लिया तो
सबको
जान लिया।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

भो प्रज्ञ!
जीवन में
जीते-जीते
कर लो
तैयारी
निज
सम्यक्
संन्यासमरण की।
यदि
नहीं की तैयारी
निज
मरण-महोत्सव की
तो फिर
करना पड़ेगा
पुनः जन्म
पुनः मरण।

- आचार्य विशुद्धसागर
(स्वानुभूति)

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ।।22।।

अन्वयार्थ- (विधानतः) विधानरूप से समाधि का साधन (न संस्तरोऽश्मा) न आसन है, न पाषाण है, (न तृणम्) न तृण-पुंज है (न मेदिनी) न पृथ्वी है और (विनिर्मितः फलकः) न बनाया गया काष्ठ का फलक (चौकीपाट) ही है (यतः) क्योंकि (सुधीभिः) बुद्धिमन्तों के द्वारा (निस्ताक्ष-कषाय विद्विषः) इन्द्रियों और विषय-कषायरूपी शत्रुओं से रहित (सुनिर्मलः) निर्मल (आत्मा एव) आत्मा ही (मतः) ध्यान का आसन माना गया है।

सामायिक देशना

आचार्य अमितगति स्वामी जीव के विषय में व्याख्यान कर रहे हैं। निजी गुणों को जीव ने जानने का प्रयास ही नहीं किया। काषायिक धर्म को आत्मा का शुद्ध धर्म मान लेना, यह महान भूल है। अविकारी आत्मा के ध्रुवधाम स्वभाव को न समझकर विकारी भाव से अपनी पहचान करवाना, इससे बड़ी जगत में क्या भूल होगी? समझना। जो मेरी पहचान है, उसको तो भूल गया और विकारों से अपनी पहचान करवा रहा है। उसमें एक-दो जीव नहीं, पृथ्वी पर जितने रागी-द्वेषी जीव हैं, सारे-के-सारे जीवों की गिनती उन्हीं जीवों में आ रही है। जो मेरी पहचान है, उसे पहचाना ही नहीं। जो मेरी पहचान न हुई, न होगी, उसकी पहचान के लिए पूरी पर्याय नष्ट हो रही है।

किसकी पहचान चल रही है? में ज्ञानी हूँ, कुमार हूँ। हे मुमुक्षु! तेरा नाम शाश्वत नहीं है। जो तू है, उसका ये नाम नहीं है। ये नाम वर्तमान की पर्याय का है। त्रैकालिक परमार्थ तत्त्व को भूलकर वर्तमान की पर्याय में इतना फूल गया है। जो जनक-जननी ने नाम रख दिया था, उस नाम के राग में इतना मस्त हो गया कि कोटि-कोटि द्रव्य का क्षय तो कर रहा है मात्र पर्याय के नाम के लिए। कोटि-कोटि जीवों की हिंसा कर रहा है, मात्र पर्याय के नाम के लिए और कोटि-कोटि क्षणों को नष्ट कर रहा है, मात्र पर्याय के नाम के लिए। नाम किसका दिया जा रहा है, उसके बारे में तुझे पूर्ण जानकारी है। बिरला जीव होगा जिसे जानकारी न हो।

इस पर्याय से मरण भी करूँगा, इस भाव का बोध किसको नहीं है? भैया! न हो तो अभी सुन लो। जब मैं जन्मा हूँ, तो मरण भी करूँगा। जिस शरीर में मैं रह रहा हूँ, 50-60-70-80-100 तक मान लो, इसके बाद तो जाना ही पड़ेगा। परंतु उस सौ वर्ष के राग के पीछे कोटि-

कोटि भवों की तपस्या को तूने स्वाहा किया है। मंदिर का पटिया भी टूट जायेगा तो नया मंदिर बन जायेगा। हे ज्ञानी! भरतेश से पूछ लेना, उसको वृषभाचल पर्वत पर नाम लिखाने को स्थान नहीं मिला था। प्रथम चक्रवर्ती, प्रथम तीर्थंकर का पुत्र, प्रथम कामदेव का ज्येष्ठ भ्राता और भारतभूमि का, इस युग का प्रथम चक्रवर्ती जो वृषभाचल पर्वत पर अपना नाम उत्कीर्ण कराने गया था, सेनापति खड़ा हो गया। भरतेश कहते हैं, सेनापति! विलम्ब किस बात का?

स्वामी! क्षमा करो! वृषभाचल पर इतना स्थान नहीं है जहाँ आपका नाम लिखा जा सके। एक क्षण को चक्रवर्त्ती ने शान्त होकर मान के घूँट को पी लिया, लेकिन पुनः मान ने धक्का मार दिया। क्या मेरे पूर्व भी चक्रवर्ती हुए हैं?

नाथ! एक दो नहीं, कोटि-कोटि। ऐसा कोई स्थान नहीं बचा जहाँ आपका नाम लिखा जा सके। हे मान! तूने पुमान को अमान कर दिया। कौन गुरु, कौन शिष्य, कौन पूज्य? ये तभी तक दिखता है, जब तक मान नहीं सताता। जिस क्षण मान सताता है, पूज्यों को भी धक्का देकर अपनी पूजा के लिए खड़ा हो जाता है। ज्ञानी! यह ध्रुव सत्य समझना। तीर्थंकर अरहन्त की प्रतिमा विराजमान हो। यदि किसी ज्ञानी का नाम बुलाया जाये कि इनका सम्मान किया जाना है, तो ये यहाँ भूल जायेगा कि तीनलोक के नाथ विराजे हैं, इन महान सम्माननीय के चरणों में इस पुद्गल पिण्ड का क्या सम्मान? उनको ही भूल जाता है। भगवान् और गुरु के सामने माला डलवाने में कभी नहीं डरता है। सम्मान अकेले में भी तो हो सकता था। नहीं, नहीं, भैया! पहले महाराज को बुला लो, उनके सामने अच्छा लगेगा। हे रागी! जिनने मान छोड़ा, मालायें छोड़ीं, उनके चरणों में भी तू निर्मल भाव नहीं कर पाया। वहाँ पर भी माला ही पहनने पहुँच गया। जिनके तन पर धागा तक नहीं है, उनके पादमूल में खड़े होकर तू शाल ओढ़ना चाहता है। ज्ञानी! वह शाल उतारने की बात करते हैं, तू शाल ओढ़े उनके चरणों में खड़ा है। हे मान! तुझे धिक्कार हो।

जिस भूतल पर खड़े होकर निर्वस्त्र होने का परिणाम आना चाहिए था, जिस भूतल पर खड़े होकर माला फेरने का परिणाम होना चाहिए था, उस भूतल पर खड़े होकर तेरे माला पहनने के परिणाम हो रहे हैं यानी अभी तेरी संसार की माला दीर्घ है। पंचपरमेष्ठी के पादमूल में खड़े होकर अपने सम्मान के भाव आ रहे हैं, तुझे वह पूज्य नहीं दिख रहे हैं। तुझे पुद्गल-पिण्ड की पूजा दिख रही है। भैया! स्व के भावों से कहना कि जिनवाणी और जिनदेव से दूर ले चलो मुझे, फिर इस पुद्गल में माला डाल देना। पर मुझे मालूम है, मालायें आज पड़ रही हैं, एक दिन और-भी पड़ेंगी। इस मल पर माला भी पड़ेगी। फिर ये माला भी मल हो जाती

है। जिसके कण्ठ में माला एक बार डाली जाती है, उस कण्ठ की माला दूसरे को पहनाना चाहे तो वह स्वीकार नहीं करता है।

भवन्ति प्राप्य यत् सङ्गमसुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सन्ततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा।।18।। (इष्टोपदेश)

जिसके संसर्ग को प्राप्त होते ही पवित्र-से-पवित्र द्रव्य भी अपवित्र हो जाता है, ये मल का पिण्ड तो शरीर है। रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र इसके अलावा इसके अन्दर सुन्दर क्या है? मूत्र, पीव। चौबीस सेर तो मल भरा है, इसके अन्दर विष्ठा है। इसको क्या सजा रहे हो? क्या दिखा रहे हो? हे ज्ञानी! यह मल की चमक नहीं, पुण्य की चमक है। उस पुण्य की चमक को मल पर मत डाल दो। क्या मिला? सम्मान चल रहा है, जबकि आये थे भगवान् के पादमूल में भव से तिरने के लिए। बड़े प्रेम से कह रहा था कि भवपार हो जाऊँ। ज्ञानी! अध्यक्ष आया, उसने गले में माला डाली, तो प्रसन्न हो गया। यह माला किसमें डाली गई है? भव में, कि भवातीत में? चिन्तन को गहराई में ले जाइये। वर्तमान की दशा भव नहीं है क्या? वर्तमान का शरीर भी एक भव ही तो है। तू भव का ही सम्मान करा रहा है, भवाभिनन्दी! हे भव का अभिनन्दन चाहने वाले! जगत भव का अभिनन्दन करे, परंतु तू भवातीत होना चाहता है तो भगवान् का अभिनन्दन करो। इस भव का अभिनंदन मत करो।

अष्टमी का दिन है, पर्युषण पर्व चल रहा है। हरी (सब्जी) मत खाओ, क्योंकि ऐसा करने से जीवों की हिंसा होगी। परंतु भैया! मेरी आँखों में कुछ दिख रहा है। इधर कहता है कि आज अष्टमी है, हरी खाने का त्याग है। हे अज्ञानी! उन पुष्पों में कोटि-कोटि जीव मर रहे हैं, उन फूलों की माला पहनने से कौन-सा पेट भरता है? भैयाजी कहते हैं, महाराज! मैं फूलों की माला नहीं पहनता, मैं तो प्लास्टिक की माला पहनता हूँ। हे ज्ञानी! मेरा एक प्रश्न है, जब पाषाण के परमात्मा की वंदना करने से निर्बन्ध हो सकते हो, तो पुष्पों के नाम पर प्लास्टिक की माला पहनोगे, तब भी कर्म का ही बंध होगा, क्योंकि आपने संकल्प पुष्पमाला का ही किया है। सुनो, ज्ञानी! जब पाषाण के परमात्मा की वंदना करके मैं निर्बन्धता को प्राप्त होता हूँ, क्योंकि मैंने स्थापना-निक्षेप से संकल्प किया है कि ये परमात्मा हैं, ऐसे-ही प्लास्टिक की माला में भी उद्देश्य यही है कि ये पुष्पमाला है, गजरा ही है, हार ही है। जो मान से हार गया, वह हार पहने। जो मान से जीत गया वह माला फेंक देगा।

भैया! तेरे साथ घोर छल किया जा रहा है। विचारो, कि मैंने बहुत पाप किया है। जब से आँख खोली, होश सम्हाला, तब से पैसा-पैसा। पैसे के राग में यह भी नहीं देखा कि कितने

नष्ट हो गए और कितने नष्ट हो रहे हैं? जैनकुल में जन्म लिए ऐसे भी पापी लोग मिल जायेंगे जो महुए का व्यापार कर रहे हैं। महुए के व्यापारियों! नरकों में मालूम चलेगा कि कैसे करना पड़ता है। इतना ही नहीं, यह मानकषाय, पैसा होना चाहिए, पैसे के राग में तूने भट्‌टे भी खोल दिए, कोटि-कोटि जीवों की हिंसा हो रही थी। पैसे के राग में तू कीटनाशक दवाइयाँ भी बेचने खड़ा हो गया। खाद की दुकान किए बैठा है, सारे-के-सारे पावडर बेच रहा है। हे ज्ञानी! तू जैनकुल में जन्मा है, लेकिन तेरा कर्म म्लेच्छ का है। इस पर्याय को नष्ट मत करो। जब अहिंसा के काम करने से पैसा मिल सकता है, इतना पुण्य तेज है, तो ज्ञानी! अहिंसा का काम करेगा तो अपने आप पैसा आयेगा। भैया! विधान भी कराना किसी का तो उससे पूछ लेना कि तेरा उद्‌देश्य क्या है? किसी की दुकान का उद्‌घाटन हो, भैयाजी पहुँच जायें, भैया! पूछ लेना कि खोल क्या रहे हो आप? नहीं तो ध्यान रखना, आपने उसकी अनुमोदना की है।

किसी के फेरे पड़वाये जाकर, तो जो नवकोटि जीवों की हिंसा होगी उसकी अनुमोदना का फल तुझे मिलना-ही-मिलना है। जो है, सो है। वह तो मिलना है। वह मान के लिए धन कमा रहा है और वह कह रहा है कि मैंने पैसे के लिए घोराति-घोर पाप किये हैं। यहाँ तक कि माँ के साथ भी छल किया है, पिता के साथ भी छल किया है। मानश्री के लिए क्या कहता है? मेरे सगे दो भाई थे। उनके साथ भी मैंने पिता को घुमा दिया और अपने नाम पर पूरी जायदाद कर ली। हे अभागे! कौरवों से पूछना- 'मेरा सो मेरा, तेरा सो मेरा', जिसके ऐसे भाव आयें, उससे बड़े प्रेम से कह देना कि यह कौरववंशी लोग अभी भी जीवित हैं। सभी की सम्पत्ति हरण करने के जिनके परिणाम चल रहे हों, उनसे कह देना, मेरे भैया! महाभारत का कितना ही युद्ध चला हो, लेकिन कौरववंशी अभी जीवित हैं, अभी गये नहीं हैं। बुरा लगे तो छोड़ देना भैया की सम्पत्ति हड़पना। जिनके पीछे भैया को भी भैया नहीं कह पा रहा है, कुछ वर्ष पहले तो बोलचाल थी, अब बोलचाल बंद हो गई। क्यों? हे ज्ञानी! मत बोलो। ये धन के राग में एकेन्द्रिय वनस्पति बना खड़ा होगा, फिर बोलने को चाहेगा तब भी नहीं बोल पायेगा। ये श्री और स्त्री के राग में परस्पर में विसंवाद मत करना। बोलना मत छोड़ देना, क्योंकि बोलना छोड़ दिया तो भव-भव में मूक बन जाओगे।

दान का मतलब आपने पढ़ा होगा। 'दान देय मन हरख विशैषै' जिसको देने के बाद मन में हर्ष आता है, उसका नाम दान है। एक बार मैंने तेली को तेल निकालते देखा। कोल्हू/स्पेलर से नहीं। छोटे-मोटे जो तेल निकालते, वे हाथ से भी निकाल लेते हैं। उन्होंने पहले पीस लिया। पानी जरा-सा। उसको मसला, कपड़े में रखा, तो उससे तेल निकलना प्रारंभ हो जाता है। मिक्सी से रस निकालते तो देखा। हाथ से भी तो रस निकालते? अनार का रस क्या हाथ में

रखते ही निकल आता है? नहीं। मसलना पड़ता है। दया भी नहीं आती। हे माँ! जब तू अनार से रस निकाल रही होगी और द्रव्यदृष्टि चली जायेगी, तो हाथ खुल जायेगा तेरा, क्योंकि ये पूर्व के तेरे लाल हैं, पिता हैं, वे ही जीव वनस्पति बने हुए हैं, आज रागवश संस्कार काम में आया। कभी उन्होंने तेरा धन निचोड़ा होगा, आज तूने उनके शरीर को ही निचोड़ कर पी लिया। जैसे उस अनार का रस निकालता है, जैसे तेल निचोड़ रहे थे, भैया! ऐसे किसी के परिणामों को निचोड़ करके दान लेने मत जाना। उसके भावों की हिंसा मत करना। समाज का श्रावक है, उसका भी सम्मान है, इज्जत है। दस लोगों के बीच खड़ा कर दिया, 'भैया! बोलो।' नहीं है उसकी ताकत। भैया! आपने तो उसकी पूरी उतार दी। जिसने ऐसा किया,उसने घोर हिंसा की। 'दान देय मन हरष विशेषै।' जैसे यहाँ श्रावक आते हैं, स्वतः बोलकर चले गये, ठीक है, भैया!लेकिन किसी को पकड़ कर खड़ा मत कर देना। आप तो जीवों को बचाते हो, पानी छानकर पीते हो, तो दूसरे के परिणामों को क्यों चूसते हो? दान और धर्म की व्याख्यायें सुनो, सत्यता को समझो। सामनेवाले की सामर्थ्य को देखो। सामर्थ्य को देखे बिना उससे दान 'निचोड़' रहे हो यानी उसके परिणामों को कलुषित कर रहे हो। उसका नाम दान नहीं है। अपनी श्रद्धा से, आस्था से और मुस्करा कर देता है और देने के बाद भी चेहरे पर दमक होती है, इसका नाम 'दान' है। पूछो ज्ञानी से। घर में मुनिराज पधार जायें तब आहार देने के बाद उस दाता के चेहरे को देखना, कैसे भाल चमकते हैं उसके? जबकि लोक में कहा जाता है कि नहाने के बाल, खाने के गाल अलग दिखते हैं। बिना खाये भी गालों में चमक आती है तो मात्र दिगम्बर मुनि को आहार देने के बाद आती है और जिस घर में आहार न हो और वह व्यक्ति भोजन भी करके आ जायेगा, फिर भी उसका चेहरा उतरा मिलता है। 'काये भैया! का हो गओ?' भैया! खाली गओ।

हे ज्ञानी! तुझे जगत में कोई धर्मात्मा नहीं दिखा। इतने सारे धर्मात्मा थे, मन्दिर के पुजारी थे, त्यागी-व्रती थे, उनको ही ले जाता। खाली कभी नहीं जाता। भवाभिनन्दी नहीं बनना है। दिगम्बर जैन अम्नायी योगेन्दुदेव ने एक ग्रंथ लिखा है, 'योगसार' प्राभृत। यह पूरा 'समयसार' के ऊपर लिखा गया है। उन्होंने सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है- हे भवाभिनन्दनीयो! भव का अभिनन्दन छोड़ो। लोकाचार में जीते-जीते लोकोत्तराचार का तो नाश ही कर दिया। निर्ग्रन्थ मार्ग, श्रमण मार्ग है, मोक्षमार्ग। ये लोकाचार का, तिलकधारियों का मार्ग नहीं है। रत्नत्रय के तिलक का मार्ग है, ये लोकोत्तराचार का मार्ग है।

त्रिलोक-चूड़ामणि भगवान् महावीर जयवन्त हों। बेचारा बोल रहा था- भैया! मैंने कमाने में घोर-घोर पाप किये। मैंने धन कमाने में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा की है। जो कर्म मेरे

करने लायक नहीं था, उसको भी करके आ गया। ज्ञानी! मैं तो नापित भी बन गया। घर के द्वार पर जहाँ लिखा होना चाहिए था 'तीर्थंकर भगवान् जयवन्त हों, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो;' वहाँ लिखा था 'ब्यूटी पार्लर।' पूर्व में तूने इतना घोर पुण्यकिया था कि तुझे सुकुल जैनकुल मिला, तीर्थंकर अरहन्त का शासन मिला और ऐसे कुल में भी आकरके नाई का काम कर रहा है। ज्ञानी! तेरे पाप का तीव्र उदय आ गया है। पैसा कमाने के लिए, छोटे जीवों के द्वारा जो करने योग्य कार्य थे, वह भी कर लिए। ज्ञानी! राग ही कर पाओगे, राग-द्वेष ही कर पाओगे। आप कमा-कमाकर रख भी दोगे, तो रागी-भोगी आकर भोगेंगे। ज्ञानी! जो जीव ऐसे काम कर रहे हों, वे निर्ग्रन्थ योगी के हाथ पर ग्रास रखने की भावना न भायें। इन बेचारों ने सबकुछ छोड़ा है, कम-से-कम इनको ही शुद्ध रहने दो और बहुत अच्छा हो कि आप भी शुद्ध हो जाओ। ज्ञानी! अपना दूसरा काम कर लेना, लेकिन बहुहिंसक और जैनकुल को लज्जित करने वाले काम मत करना।

वह कहता है- 'भैया! मैंने घोर पाप करके पैसा कमाया है। मेरे भाव हैं कि इस पाप से कैसे छूटूँ?' मेरे भैया! तेरा पुण्य तेज है। तू जहाँ भी हाथ लगायेगा, वहीं मिलेगा। अतः इन पाप के कामों में हाथ मत डालना, क्योंकि पैसा ही तो कमाना है। आजीविका के लिए ही तो कमाना है। आजीविका तो तुम्हारे बुजुर्गों ने भी की थी। वे ही कह कर गए हैं कि ऐसा काम मत करना जिससे तेरे घर में दिगम्बर मुनि का पड़गाहन बन्द हो जाये। ज्ञानी! अब प्रतिज्ञा ले लो कि ऐसा कोई काम नहीं करूँगा जिससे मुनि का पड़गाहन बन्द हो जाये। वही कुल 'कुल' होता है जिसमें निर्ग्रन्थ मुनि बनते हैं और उनके चरण पड़ते हैं। वही कुल उच्चकुल होता है। जिस कुल में निर्ग्रन्थ मुनि बनने की क्षमता न हो, जिस कुल में मुनियों के आहार होने की क्षमता न हो, उस कुल का नाम नीचकुल है। देखो भैया! पुराने समय में दिगम्बर मुनि के दर्शन आसानी से नहीं होते थे। आज तुम्हारा सौभाग्य है कि जन्म लेते ही निर्ग्रन्थ मुनियों के दर्शन आसानी से हो जाते हैं।

'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'

आत्मा का स्वभाव परभावों अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च सङ्घमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम् ।। 23।।

अन्वयार्थः (भद्र!) हे भद्र! (यतः) क्योंकि (न संस्तरः) न आसन (न लोकपूजा) न लोकपूजा और (न च सङ्घमेलनम्) न संघ-सम्मेलन, (समाधि-साधनम्) समाधि के साधन हैं। (ततः) इसलिए (सर्वामपि) सर्व ही (बाह्य वासनाम्) बाहरी वासनाओं को (विमुच्य) छोड़कर (अनिशम्) निरन्तर (अध्यात्मरतः) अध्यात्म में रत (भव) रहो।

सामायिक देशना

आचार्य अमितगति स्वामी ऐसी अमोघ भावना को भाते हुए संकेत कर रहे हैं कि विश्व में कोई गहनतम साधना है, उसका नाम है 'सत्त्वेषु मैत्रीं।' कठिन-से-कठिन साधना है, उसका नाम है 'सत्त्वेषु मैत्रीं।' प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव का आ जाना अत्यंत कठिन साधना है। और निर्वाण का मार्ग तभी प्रारंभ होता है, जब 'सत्त्वेषु मैत्रीं' सूत्र ग्रन्थों से हृदय के अन्दर प्रवेश कर जाता है। 'सत्त्वेषु मैत्रीं' पाठ और तेरी निज की ध्रुव आत्मा, इन दोनों में अभेद दृष्टि प्रारंभ हो जाती है, यहीं से मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है। तीर्थंकरप्रकृति का बंध करने वाला जीव सम्पूर्ण अहंकार का अभाव कर देता है। कितना सहज मार्ग है, हम व्यर्थ में परेशान होते हैं। हे कृषक! तू भूमि में बीज डाल दे। तू मात्र इतना ही करता है। अंकुरण होना, पौधे का बढ़ना और पौधे में बालों का आना, बालों में दानों का आना, इसमें तू कुछ भी नहीं कर रहा। समझना गहरे से। हे कृषक! तू इतना बस कर लेना कि उर्वरा भूमि में बीज डाल देना। अंकुरण सहज चलेगा। पौधे की वृद्धि होगी, बाल भी आयेगी, बाल में दाना भी आयेगा, कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। उसका उत्पाद, व्यय, धौव्य का परिणमन सहज स्वतः चल रहा है। जब समय आयेगा तब फल स्वतः मिलेगा। बस, सम्यग्दृष्टि जीव इतना विवेक अपने अन्तस् में जागृत कर ले कि मुझे कुछ भी नहीं करना है, मात्र इतना काम कर लेना कि निज हृदय की भूमि में धर्म का बीज डाल देना। बाकी आपको कुछ भी नहीं करना है। सब सहज/अपने आप प्राप्त हो जाता है।

किसी से मित्रता करने की भी आवश्यकता नहीं होगी। किसी से शत्रुता करने की भी आवश्यकता नहीं होगी। जब अंतरंग में अंकुरण होगा, उस समय किसी अन्य की अपेक्षा नहीं होगी। धर्म इतना तटस्थ है, धर्म इतना सत्य है, इतना विशिष्ट है कि वह किसी अन्य धर्म की अपेक्षा रखता ही नहीं है। जब आप अपने में होते हो, उस काल में आपको जनक-जननी नहीं दिखते, मित्र-शत्रु नहीं दिखते। जब आप अपने में होते हो, तब तन्मय होकर णमोकार की

माला भी फरते हो। उस समय तुम किसी को नहीं देखते हो, अपने में होते हो। जो अपने में होता है, विश्वास रखना, वही धर्म है। अपने से हटकर जहाँ प्रवेश किया, वही अधर्म है। हम सबके पास चिन्ता भी नहीं है। जन्म से जीव में चिन्ता नहीं है। जब तू परद्रव्य से मिश्रित कभी होता नहीं है, अन्य कभी अनन्य होते नहीं हैं और जब उनका विकल्प खड़ा होता है, तब चिन्तायें प्रवेश कर जाती हैं। जैसा तू पहले था, ये चिन्तन लाया ही नहीं था कि ये मेरे हो जायेंगे, वैसे तुम खाली हो जाओ। चिन्ता नाम की कोई वस्तु तेरे चित्त में होती ही नहीं है। दुःखी वे हों, जो अभाव में सद्भाव को देखें। दुःखी वे हों, जो सद्भाव में अभाव को देखें। महाराज! आप पूरी परिभाषा बदल रहे हो क्या? नहीं, परिभाषायें नहीं बदल रहे हैं, वस्तुस्वभाव में प्रवेश करा रहे हैं। चिन्तायें नाम की कोई वस्तु तुम्हारे घर में है ही नहीं।

चिन्तायें कहीं भी नहीं हैं। तनाव (टेंशन) नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। यदि तनाव नाम की वस्तु होती, तो यहाँ पर मुस्कराते क्यों मिलते आप? यहाँ जो भी आता है, अपरिचित भी आता है तो वह भी क्षण भर को मुस्करा लेता है। स्वामिन्! यही एक ऐसा स्थान है जहाँ आनन्द की एक श्वास ले पाता हूँ। भैया! देश में श्रमणों का होना, तीर्थों का होना, मंदिरों का होना, त्यागियों का होना अत्यंत अनिवार्य है। कोटि-कोटि द्रव्य की रक्षा होती है इन तत्त्वों के होने से। विश्व में जितना तनाव अन्य देशों में है, भारत में उतना नहीं है।

कारण क्या है? मानसिकता तब बिगड़ती है, जब व्यक्ति को निज वस्तु में परत्व दिखे और परवस्तु में निजत्व दिखे। बस, यही मानसिकता विवाद लाती है। ऋण में ऋण का तार लगा हो, धन में धन का तार लगा हो, तो विद्युत प्रवाह प्रकाश देता है, कोई तनाव नहीं होता। एक क्षण को ऋण का धन में और धन का ऋण में तार लगा देना, फिर देखो क्या होता है? बिजली चली जाती है।

जब तुमको इतना विवेक है ही, फिर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी? सुनो, ज्ञानी! लाइट तभी खराब होती है, बल्ब फ्यूज तभी होता है, जब कहीं का वायर कहीं जुड़ जाये। हे मुमुक्षु! पुण्य से तेरे पास चैतन्य घन ज्ञायकस्वभाव रूप चिद्-ज्योति आत्मा का ज्ञानप्रकाश उस ज्ञान की ज्योति को आपने विषय और राग में जोड़ दिया है, इससे तुम तनाव में हो। उस ज्ञान को निज ज्ञेय-ज्ञायक-भाव में लगा दो, तब लगेगा कि जगत के सारे-के-सारे प्राणी शांतमय जीवन जीते हैं, किसी के पास कोई तनाव नहीं है। जब योगी के पास आते हो, तब एक क्षण को आपको शान्ति का वेदन होता है। यथार्थ मानिये, कई दिनों के तनाव से मुक्त हो गए और जब आप घर पहुँचेंगे, तो कितने दिनों तक उस अनुभूति को लेते रहेंगे। कितने उपचार से आप

बच गए। वैद्यों के पास नहीं जाना पड़ेगा। मंदिर में जितनी प्राचीन प्रतिमा के मुखमंडल को निहारोगे, उनमें बीजाक्षरों की जो पुण्यवर्णणायें, तरंगें भरी हुई हैं, वे तेरे हृदय के अन्दर प्रवेश करके तेरी विशुद्धि को जन्म देती हैं। आज के वैज्ञानिकों ने इतना खोज कर लिया है कि किस व्यक्ति के अन्दर कितनी तरंगें भरी हुई हैं? कहाँ तक प्रभाव छोड़ रही हैं ? तीर्थंकर भगवंतों के आभामंडल, वे तरंगें, वर्गणायें इतनी विशाल होती थीं कि जब भगवान ऋषभदेव का समक्सशरण था, ज्ञानी! वह बारह योजन प्रमाण था और एक योजन चार कोस का। इतनी दूरी तक भगवान का समवसरण लगा हुआ था। सारे स्थान पर सुभिक्ष, आनन्द की लहरें दौड़ रही थीं।

एक पुण्यात्मा जीव जिस भूमि पर प्रवेश कर जाये, ज्ञानी! विश्वास रखना, उस क्षेत्र का वातावरण बदल जाता है। इसलिए जब मन द्वेलित होने लग जाये, कोई उपाय न सूझे आपको, तो जगत में कहीं नहीं भटकना। मित्र के घर भी मत जाना। संकट के दिन आयें तो मित्र के घर मत जाना। भैया! वह खुशामद की भाषा एक दो दिन तो बोल देगा, लेकिन उसके मन में पाप आ चुका है कि अब मुझे सहयोग करना पड़ेगा। मित्र की मित्रता तुझे पहले अमृतरूप स्रवित होती थी, अब उसके परिणाम विषरूप स्रवित होने लग गये। भैया! अशुभ के दिनों में किसी के घर मत जाना। ये जगत् बने-बने का है, बिगड़े में कोई किसी का होता नहीं। हर व्यक्ति सिर पर हाथ रखेगा, कोई हाथ मिलायेगा, कोई गले में हाथ लटकायेगा। ये सब तभी तक है, जब तक तेरे पास पुण्य की श्री विराजमान है। जब दिन बदलते हैं, विश्वास रखना, संध्या की बेला आने पर चिड़िया भी घोंसले में छिप जाती है। उगते सूर्य को देखकर चहकती थीं, वे चिड़ियाँ भी अस्त होते सूर्य को देखना पसंद नहीं करती। जब सूर्य उदित हो रहा था, तब घोंसले की चिड़िया भी चींचीं करती बाहर निकल आयी। बन्द कमल खिल गए, सूर्यमुखी फूल भी मुस्कराने लग गया और साधुगण भी पाठ करने लग गये। मंदिर में अभिषेक-पूजन होने लग गया। जब पुण्य का सूर्य उदित होता है, तो सभी जगह मंगलाचरण तेरे नाम पर होते हैं। जब सूर्य अस्त होते दिखाई देता है, तो मंदिर के पट भी बंद हो जाते हैं। अशुभ के दिन चलें तो मित्र के घर मत जाना। ज्ञानी! पिता भी बेटे को देख लेता है कि अब बेटे के पास सामग्री नहीं तो कहता है कि 'मैं कितना सहयोग करूँगा तुम्हारा?' हे माँ! हे तात! ये भी आपका भ्रम था कि मैं अभी तक आपका सहयोग कर रहा था। ध्रुव सत्य यूँ है कि मेरा पुण्य जब तक मेरा सहयोग कर रहा था, तब तक दुनियाँ मेरे साथ थी। पुण्य का ह्रास हुआ, तो जनक-जननी भी पीछे मुड़ गये। उसके मित्र क्या करेंगे?

ध्यान रखना 'न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं' ये सिंहासन, ये संस्तर, ये धन-सम्पत्ति, वैभव (श्रावक की दृष्टि से स्त्री, पुत्र, मित्र आदि सचित्त परिग्रह हैं। मकान, दुकान ये अचित्त परिग्रह हैं। सोने आदि के आभूषण से युक्त स्त्री, पुत्र आदि ये मिश्र परिग्रह हैं। साधु की दृष्टि से पिच्छि-कमण्डलु, ये अचित्त परिग्रह हैं। इनसे युक्त शिष्य-शिष्यायें, ये मिश्र परिग्रह हैं।) यदि इनमें भी ममत्व दृष्टि है, तो ये बंध के ही कारण हैं। ये संघ का मिलना, मेरा कितना बड़ा संघ है, ऐसा विकल्प यदि मन में आ रहा है तो ये समाधि भंग होने का साधन है। यह समाधि का साधन नहीं है। भैया! सुनो। आप तो श्रावक हो, कर्म किसी को नहीं छोड़ता। जब दीक्षा हो रही थी, तब लाखों की भीड़ थी। जब चर्या को निकले, तब कोई चौका लगानेवाला नहीं मिला। क्या हो गया कि कोई 'नमोऽस्तु' कहने वाला नहीं मिला? यह सामान्य मुनि की बात नहीं है। तीर्थंकर को निहार लो। गर्भ में आये तो रत्नों की वर्षा, जन्मे तो महोत्सव, दीक्षा हुई तो लोकांतिक देव पालकी लेकर आ गए। दीक्षा-अभिषेक करने पहुँच गये सौधर्म इन्द्र। लेकिन हे स्वामी! ये कैसी कर्म की विचित्रता है कि जब आप अंजुलि लगाकर निकल पड़े, तो कोई आपको नमोऽस्तु करनेवाला नहीं मिला। छः माह निकल गये, और छः माह निकल गये ध्यान करते-करते बिना पुण्य के योग बने। श्रावको! किसी के घर मत जाना अपनी पीड़ा सुनाने। बिल्कुल मत जाना। ये जगत है, ये हँसता है कुटिल मुस्कराहट।

समय कहता है कि सावधान रहो। दुनियाँ देखे या न देखे, लेकिन मैं सबको देखता हूँ। काल कह रहा है कि जब तुम निगोद में थे, तब मैंने तुमको देखा था। जब तुम तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में थे, तब भी देखा। ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यंत सभी तीर्थंकरों के काल में भी तुम्हें देखा। तुम उपदेश करो, ये भी मैं देख रहा हूँ। आगे तुम्हारा क्या परिणमन होगा, इसे दुनियाँ देखे या न देखे, परंतु मैं सब देख रहा हूँ। वह कौन है? समय है। समय चल रहा है, अपनी धारा पर चल रहा है। किसी को छेड़ता नहीं है, परंतु किसी को छोड़ता नहीं है। उसका नाम 'काल' है।

ज्ञानी! मैंने अपनी आँखों से देखा है। बूढ़ी माँ सादा पानी नहीं पिलाती थी। घर में कुछ न हो तो कम-से-कम गुड़ हाथ में लिए रहती थी। मेरे द्वार पर सूखा पानी पियेगा? कहीं लग गया मेरे द्वार पर, तो मैं ऐसा काम नहीं देख सकती हूँ। पहले तुम गुड़ खाओ। हे गुणी माँ!तू तो दसों आदमी को चुल्लू भर पानी पिला पाई है, परंतु मेरी भगवती माँ जिनवाणी कोटि-कोटि जीवों को अमृत का पान कराने वाली है। ऐसी माँ के आँचल का अमृतपान करो। हे जननी! तू पान करा रही थी आँचल का, तब माँ जिनवाणी कह रही थी मेरे लालो! मेरे द्वार

पर आकर तुम खाली मत चले जाना। भैया! तुम्हें यदि किंचित् भी प्रज्ञा प्राप्त है, तब किसी भी क्षेत्र में विचरण करना, तो जहाँ भी तुम्हें भव्यजीव मिल जायें, उनको चुल्लू भर जिनवाणी का पान जरूर करा देना। क्योंकि ये जो कंठ में पिलानेवाला पानी है, मात्र वर्तमान की पर्याय की रक्षा करनेवाला है, लेकिन माँ जिनवाणी का दुग्धपान कोटि-कोटि भवों के लिए तेरे को अमृत प्रदान करता है। जन्म, जरा, मृत्यु के द्वार से तुमको दूर कर देता है।

संकट के दिनों में किसी के द्वार पर मत जाना। सुना भी दोगे तो वह करेगा क्या? कुछ हँस सकते हैं, कुछ चेहरा बना सकते हैं, कुछ रोकर दिखा सकते हैं। डॉक्टर! तू दवा दे सकता है, लेकिन पापकर्म को हटाने की सामर्थ्य न तेरे में है, न साधु में है। बँटा नहीं सकते हो। शान्तचित्त भी होगा तो निज के पुरुषार्थ से ही होगा। परद्रव्य निमित्त बन सकता है, परंतु उपादान तो तेरा ही होगा। ऋषभदेव से पूछो, स्वामी! क्या हो गया? वे कहाँ हैं तुम्हारे सौधर्म इन्द्र, जो रत्नों की वर्षा कर रहे थे वे कुबेर धनपति? यदि पंचमकाल का कोई श्रावक होता तो कम-से-कम वह किसी व्यक्ति को लाकरके चर्या करा देता यदि सामर्थ्य नहीं थी। अहो-अहो आश्चर्य! सौधर्म इन्द्र हो, धनकुबेर हो, तब भी कुछ भी नहीं बन सका। धीरे से कह देना ज्ञानी! क्या बनता? विधि कह रही थी कि विधि नहीं है तो विधि नहीं है। विधि यानी भाग्य। आज हे महामुनिराज ऋषभ देव! मन में विकल्प मत लाना। (कर्म कह रहा था ऋषभ देव से।) मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहता हूँ, परंतु विधि के नियोग को मैं बदल नहीं सकता हूँ। मैं बहुत ईमानदार हूँ। क्या करूँ? आप मुझे जैसे बुलाना चाहते हो, वैसे ही तो आता हूँ। आपने इतना शुभ किया, तो मैं जन्म से क्या, गर्भ से ही रत्न बरसाता रहा। परंतु क्या करूँ? तुमने राज्यावस्था में ऐसा कर्म कर डाला कि मुसिका लगवा दिये, सो तुमको मुसिका लग गया। मेरा कोई दोष नहीं है।

ध्रुव सत्य है कि परमार्थ से कोई किसी का कुछ करता नहीं है। अज्ञानता है कि दूसरा ही दिखता है। मद चढ़ा है मोह का। दूसरा ही दिखता है, जबकि दूसरा होता नहीं है। संसार में दु:ख नाम की कोई वस्तु होती नहीं है। मैं गरीब हूँ, मैं अमीर हूँ, किस बात पर? तू सुन्दर-सुन्दर कपड़ा पहने, सो अमीर है। कोई फटे कपड़े पहने, सो गरीब है। भैया! सुन। परवस्तु पास में रख ली, सो अमीर हो गया और परवस्तु हर गई, सो गरीब हो गया। ज्ञानी! न तू अमीर है, न तू गरीब है। तू तो जो है, सो है। क्या है? जो है, सो है। सजे कपड़े पहने, सो अमीर है और फटे कपड़े पहने, सो गरीब है। अरे!कपड़े ही उतार दो तो न राजा, न महाराजा, तू महाराज है। ओ ज्ञानी!यह ध्रुव सत्य है कि वे अज्ञानीजीव हैं जो पुद्गल के टुकड़ों में अमीरी-

गरीबी देखते हैं। धन से धनी मत बनो, धर्म से धनी बनो। जिनके हृदय में धर्म का वास नहीं है, वे ही तो गरीब हैं बेचारे। जहाँ धन अन्दर विराजा है, वे दरिद्री हैं और जिनके अन्दर धर्म विराजा है वे ही त्रिलोकपति हैं। जब से यहाँ आये हो, कितने कष्ट में हो? देशना-परिसर में प्रवेश किया, तब से आप लोग कष्ट में हो क्या? नहीं हो ना? एक घंटे आने पर इतना आनन्द आता है, तो ज्ञानी! जब चौबीस घंटे को आ जायेगा, तो कितना आनन्द आयेगा? परंतु इतना ध्यान रखना, ये इकतरफा रास्ता है- आये सो आये, बन गये तो बन गये, फिर मिटने का काम नहीं है। हँसी-खेल में मुनि तो बना जाता है, लेकिन मुनि बनकर हँसी-खेल नहीं होता। यहाँ बड़े सोच-समझकर आना। जितनी पूजा होती है, उतनी दुनियाँ में कहीं नहीं होती और यहाँ से लौटकर जाओगे तो इतनी पूजा, इतनी पूजा होगी कि सब भूल जाओगे। ज्ञानी! साधना के मार्ग पर आना तो साध्य की सिद्धि के लिए आना, परंतु पीछे मत देखना। आप यहाँ कष्टों से घबरा जाओगे। यदि कर्म का विचित्र उदय चल रहा है, तो जहाँ भी जाओगे वह वहाँ भी आयेंगे। बहुत अच्छा है यदि मोक्षमार्ग में कष्ट सहन कर लोगे तो शिवालय चले जाओगे। यदि संसार में रहकर कष्ट सहोगे रो-रो करके, तो नरक की ओर चले जाओगे। अब दोनों मार्ग आपको बता दिए। 'जं रुच्चइ तं कुज्जा।' ये कुन्दकुन्द स्वामी के शब्द हैं। मुझे लगता है कि जब पिता पुत्र को समझाता है तब वह नहीं मानता। गुरु शिष्य को समझाता है तब भी नहीं मानता, तो अन्त में बेचारा क्या करे? धीरे-से कहना, भैया! तुमको जैसा रुचे, वैसा करो। शुभ करोगे तो स्वर्ग जाओगे, अशुभ करोगे तो नरक जाओगे और कहीं शुभ-अशुभ दोनों से हट जाओगे तो सिद्ध बन जाओगे। 'जं रुच्चइ, तं कुज्जा।'

हजारों लोग इस प्रवचन-परिसर में बिल्कुल शान्त बैठे हैं। तब लगता है कि हे जिनेश्वर! आपकी देशना में शक्ति अवश्य है। तनावमुक्त होकर उठना आज। दुःख कहाँ हैं? अभाव में सद्भाव दिख रहा है, तू सद्भाव में अभाव चाहता है, इसलिए दुःखी है। काँटे का सद्भाव पैर में है। उसके अभाव की इच्छा कर रहा, इसलिए दुःखी हो रहा है। धन का अभाव घर में है, उसके सद्भाव की इच्छा कर रहा, इसलिए दुःखी है। वस्तु को वस्तुस्वरूप से देखो। जितना जीव दुःखी होता नहीं है, उतना आप लोग दुःखी कर देते हो। गरीब आदमी जैसा सुखिया तो कोई नहीं होता है। आनन्द का जीवन जीता है। लेकिन आप लोग उसे दुःखी कर देते हो। किसी देवी का पति अवसान को प्राप्त हो गया, अब बेचारी कितना रोये? सो हुआ ये कि दो क्षण शान्ति से बैठकर सुख की अनुभूति ले रही थी। उसी बीच ज्ञानी पहुँचे खकारकर। अब बेचारी को फिर रोना पड़ेगा। दो मिनिट शान्त हुई, फिर पहुँच गया कोई, फिर रोना पड़ेगा। कैसी है यह नारीपर्याय! यानी हर प्रकार की रस्म उसे पूरी करनी पड़ती है। रोना भी एक रस्म बन

गई। नहीं रोये तो तुम पूरे शहर में हल्ला कर दोगे कि वह तो चाह रही होगी कि चला जाये, सो स्वतंत्र हो जाये। काये से? वा बिल्कुल रोई नहीं रई थी। ओ हो!यानी असाता के उदय को भी समाज के कारण उसको रोना पड़ता है। जबकि ध्रुव सत्य ये था कि जिसकी आयु पूर्ण हो चुकी है, उसे रोक कौन सकता है? रो ही पाओगे, रोक तो नहीं पाओगे। बेटों से कह देना, हम जाने लग जायें तो अपशुगन मत करना। सम्मेदशिखर की वन्दना को जायें तो कलश लेकर खड़े हो जाते हो, श्रीफल भेंट करते हो कि मेरा पति सिद्धभूमि की वन्दना करने जा रहा है। यात्रा को जा रहा, तार्थ यात्रा को। अपने बेटों से कह देना, मेरे पुत्रो! अंतिम यात्रा के समय पर मुनिरूपी कलश दिखा देना, रत्नत्रय कलश दिखा देना, लेकिन मेरी अंतिम बेला के समय आँसू टपकाकर अशुभ मत कर देना। अंतिम बेला में यदि तुम मेरे वियोग को न सहन कर पाओ तो जब मैं चला जाऊँ तो मुर्दे के सामने रोते रहना, पर मेरे सामने बिल्कुल मत होना।

ज्ञानी! क्यों रोते हो? चैतन्य का मरण होता नहीं। जिसके लिए तुम रो रहे हो, शरीर के लिए, तो उसे वह लेकर जाता नहीं। ज्ञानी! कह देना बेटे से, लाल से, कि मेरी ध्रुव अखंड आत्मा की मृत्यु होती नहीं। मेरे लिए रोओ तो मैं मरता नहीं हूँ और शरीर के लिए रोओ तो मैं साथ में लेकर जाऊँगा नहीं। अब बताओ, बेटा! क्यों रोयेगा तू? सीधी-सीधी बात है कि तेरे से राग की पुष्टि हो रही थी, वह होना बन्द हो रहा है, इसलिए रो रहा है। इसलिए इस तनाव में मत पड़ जाना कि मेरे बाद मेरे घर में क्या होगा? तेरे पिताजी के बाद तूने क्या किया था? वही तेरे साथ होगा। इतना मालूम नहीं है क्या? आप मेरे सामने मुस्करा रहे हो, पिता का वियोग आपको कष्ट नहीं दे रहा? हे महाराज! ध्रुव सत्य है कि जब अपने जाते हैं, तब दूसरे अपने हो जाते हैं। यह लीला आज की नहीं, अनादि से चली आ रही है। भोगों की अनुभूति ऐसा आनंद देती है कि जगत के वियोग व संयोग में कुछ फर्क नहीं पड़ता। ज्ञानी! तू तो ध्यान में लीन हो जा। भैया! सबके बीच में तो रहना, परंतु सबको अपना मत मान लेना। सबके दिन एक-से नहीं होते। रोओ मत। 'सबके दिन एक-से नहीं होते।' एक ये ज्ञानी मुमुक्षु घर के सब सुख छोड़कर इते को भग रहे। 'जीवन के किसी भी पल में वैराग्य उमड़ सकता है' इतना बड़ा आदमी होकर भी सब छोड़ने जा रहा है। अरे! चक्रवर्ती से बड़ा नहीं है। टेंशन-तनाव मत करो। इन्द्रियभोगों में सुख होता, देश में, राष्ट्र में, समाज में सुख होता, तो तीर्थंकर क्यों त्यागते?

'जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे?' इसका तात्पर्य यह है कि परवस्तु में सुख नहीं है। निज वस्तु में सुख है।

ज्ञानी! संकट के दिनों में परघर मत जाना, निज घर चले जाना। वहीं सुख है। फिर भी

परिणाम शान्त न हो पायें, निज घर न जा सको, तो जिन घर चले जाना। 'चत्तारि सरणं पवज्जामि'। लेकिन कष्ट के दिनों में मित्र के घर मत जाना। आपको मेरी बातें अव्यावहारिक लग रही होंगी, लेकिन ज्ञानी! परम व्यावहारिक हैं। मुमुक्षु! संकट के दिनों में कोई नहीं पूछता। ज्ञानी! तेरे पास रोज करोड़ों आ रहे हैं, सो पत्नि तुझे स्वर्ग से बड़ा देव मानती है। विश्वास मानिये, जिस दिन तू खाली हाथ घर पहुँचा, एक दिन तो धैर्य से देख लेगी, कुछ नहीं, तीसरे दिन तेरा अनादर प्रारंभ कर देगी, विश्वास रखना। घर की नारी भी तेरा अपमान करेगी। ये भूल जाइये आज से कि मेरे सब कोई हैं। कोई मेरे-तेरे नहीं होते हैं। जिनसे जिनका स्वार्थ बनता है, तब तक मेरे-तेरे होते हैं। (सुनो तनक भैया)

हरे वृक्ष पर तोता बैठा, करता मौज है भारी।

सूखा तरुवर, उड़ गया तोता, छिन में प्रीति बिसारी।।

स्वास्थ का संसार है भैया, छिन में प्रीति बिसारी।

जब तक पुण्य का वृक्ष हरा-भरा है, तब तक सारी दुनियाँ तुम्हारा साथ देगी। पुण्य का वृक्ष सूख गया तो सूखे वृक्ष पर तोता भी नहीं बैठता, वह भी फलदार वृक्ष को देखता है। कोई किसी का नहीं होता। तो क्यों रोता है जगत के पीछे?

आत्मास्वभावं परभाव भिन्नम्।

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यंत भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

---xxx---

सुख का उपाय क्या है ?

अपनी स्वतंत्रता का विश्वास।

कण-कण स्वतंत्र है।

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, **श्री महावीरजी पाटनी**, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर
श्री राजेशजी जैन (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर
श्री संतोषकुमारजी जैन (पटनावाले), सागर
श्री माँगीलालजी रमेशकुमारजी पहाडिया, हैदराबाद
श्री टी.के.वेद, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारयणजी, नागपुर

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन (जैनको, समाजसेवी), इंदौर
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल), इंदौर
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, छत्रपति नगर, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक, (परिवार) छत्रपति नगर, इंदौर
श्री पी.सी. जैन सा., बैंकवाले, इंदौर
श्री प्रमोदकुमारजी जैन (बारदाना),सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू जैन (सिहोरा), सागर
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पं. कमलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशचंदजी, सुखलिया, इंदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाडिया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोंदिया

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री वीरेन्द्रकुमारजी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीडीवाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी जैन, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्री पुष्पाजी निर्मलजी काला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इंदौर...
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो. श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमारजी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरूजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री भागचंदजी पाटनी (सेन्ट परसेन्ट केमिस्ट)
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन,
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमारजी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसादजी जैन
श्री नरेन्द्रकुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पाटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरुपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड़ लाईनस)
श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमारजी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बडकुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईट इंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंदजी बजाज
श्री श्रीपालजी बडकुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

अन्य शहर :
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन
(नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)